श्री नाथ चरित

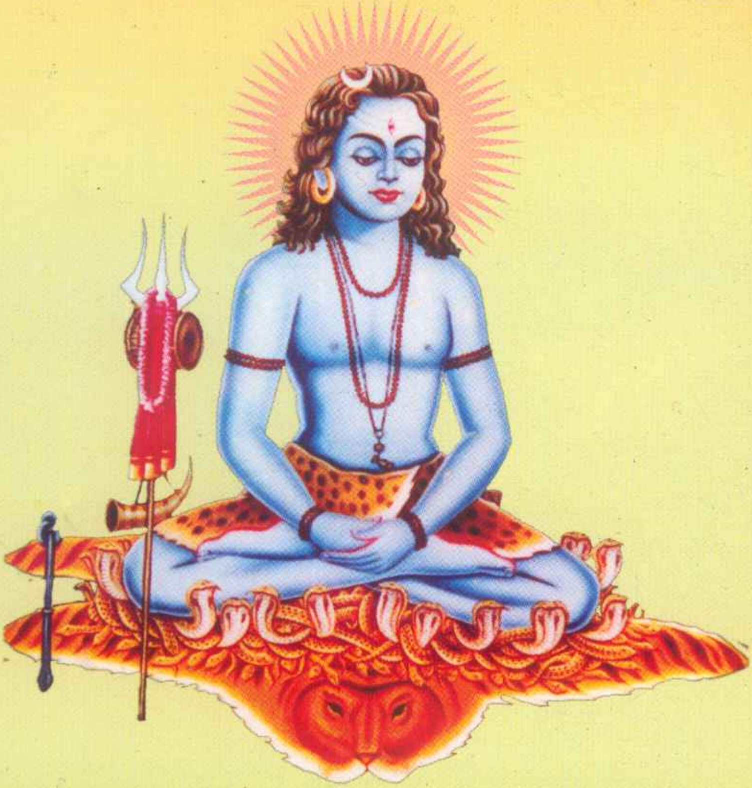

लेखक एवं संशोधक-**श्री वीरनाथ जी (पंथ आई)**

प्रकाशक-

अखिल भारतवर्षीय अवधूत भेष बारह पंथ योगी महासभा

गुरु गोरक्षनाथ मन्दिर अखाड़ा, अपर रोड, हरिद्वार (उत्तरांचल)

फोन : 01334-226583

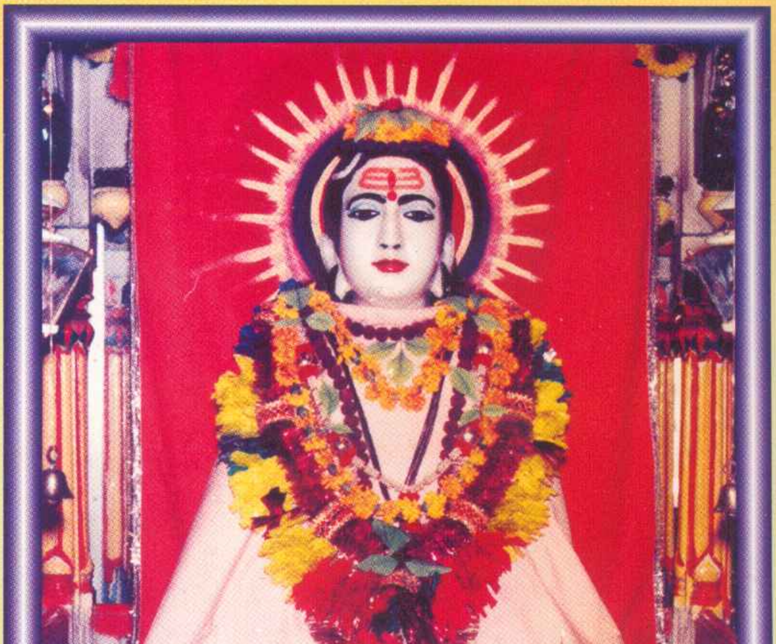

श्री गुरु गोरक्षनाथ जी का दर्शन
(मन्दिर में मुख्य मूर्ति)

श्री नाथ चरित्र

लेखक एवं संशोधक :
श्री योगी वीरनाथ जी (पंथ भाई)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक :
अखिल भारतवर्षीय अवधूत भेष बारह पंथ योगी महासभा
गुरु गोरक्षनाथ मन्दिर अखाड़ा, अपर रोड, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
फोन : 01334-226583

14 जनवरी 2013, मकर संक्रान्ति प्रयागराज महाकुंभ

तृतीय संस्करण–2000 प्रति मूल्य 140/-

इस पुस्तक के किसी भाग एवं अंश की नकल करना गैर कानूनी होगा।

श्री नाथ चरित

लेखक एवं संशोधक :

श्री योगी वीरनाथ जी (पंथ आई)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक :

अखिल भारतवर्षीय अवधूत भेष बारह पंथ योगी महासभा

गुरु गोरक्षनाथ मन्दिर अखाड़ा, अपर रोड, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

फोन : 01334-226583

14 जनवरी 2013, मकर संक्रान्ति प्रयागराज महाकुंभ

तृतीय संस्करण–2000 प्रति मूल्य 140/–

इस पुस्तक के किसी भाग एवं अंश की नकल करना गैर कानूनी होगा।

श्रीनाथचरित पर वक्तव्य

प्रथम पुष्प के प्रथम पृष्ठ में त्रिदेव परामर्श का त्रिदेव के विचार से आशय है।

गुरु शिष्य परम्परा के अनन्तकाल से गुरुमन्त्र की तरह गुप्त रूप से चले आ रहे मौखिक श्रवण का ही अभ्यास प्रवाह जिसे लिपिबद्ध करने का कोई स्पष्ट निर्देश न था। क्योंकि वे परम्परा से मौखिक श्रवण ही को उचित समझते आ रहे थे। समय परिवर्तन होने से केवल वही प्रथा रहे, यह कोई अधिक उचित प्रतीत नहीं रह गयी थी। अतः कई एक नाथ साधुओं का तथा नाथ सम्प्रदाय आचार्यों के श्रद्धालु भक्तों का यह विचाराग्रह हुआ कि आचार्यों का प्राकट्य और जीवन लीला रूपी यश सर्वजन साधारण की दृष्टि और बुद्धि में उपस्थित होना परमावश्यक है क्योंकि जिसको जानकर शक्तिशाली सदाचारी कल्याणभागी बनने का सभी का हक है। इस विचार को लेकर मैंने पूर्वजों द्वारा गुप्त रखी परम्परा को जितनी मेरे को ज्ञात हो पाई वह सर्वजन साधारण की दृग्दर्शन की उपस्थिति में रखी है। इसमें परम सदाशिव भगवान आदिनाथ से महाज्ञानागार नाथ सम्प्रदाय का उद्‌गम हुआ। जो प्रत्येक मनुष्य पर करुणार्द्रित हुए आदिनाथ जी ने महाज्ञान व महायोग विद्या के प्रचार प्रसारार्थ नाथ मार्ग अर्थात् नाथ सम्प्रदाय नामक एक विश्वविद्यापीठ का प्रारम्भ बहुत पूर्व काल में किया जिसका प्रचार प्रसार अनवच्छिन्न रूप से चला आ रहा है।

भूमिका

जीव कल्याणार्थ पूर्व हुए त्रिदेव परामर्श पर त्रिदेव का प्रयत्नशील होना, इस निश्चित हुए सन्दर्भानुसार उस महायोग ज्ञान के प्रचार का भार भगवान विष्णु जी ने स्वयं को मत्स्येन्द्रनाथ रूप में होकर भक्त की भक्ति द्वारा तथा आदिनाथ जी के निर्देशानुसार प्रादुर्भूत होकर सम्भाला साथ ही साथ भगवान आदिनाथ जी से प्रार्थना की कि हे प्रभो! इस भारी भार के वहनार्थ आप श्रीमान की सहकारिता परमावश्यक होनी चाहिये तब यह कार्य सम्यक् सिद्ध होगा। तब आदिनाथ शिव ने भी तथास्तु कर दिया कि किसी न किसी प्रकार से मैं आपका सहयोग दूँगा, तब आदिनाथ के शिष्यों में प्रमुख सिद्धनाथ ने यह कार्य भार सम्भाला ज्वालेन्द्रनाथ भी आदिनाथ के शिष्य थे। इसके उपरान्त परमशिव आदिनाथ जी ने मत्स्येन्द्रनाथ जी को जो वचन दिया उसे पूरा करने के लिये स्वयं को श्री गोरक्षनाथ रूप में परिवर्तित कर मत्स्येन्द्रनाथ जी को गुरु धारण किया और महायोगविद्या के प्रचारार्थ पूरी सहकारिता का प्रदर्शन किया तथा सोए हुए महायोगज्ञान को जाग्रित कर विश्व में जाज्वल्यमान किया और इसमें सदोदित प्रचण्डमार्तण्ड रूपी इनके यश का आंशिक निरूपण है एवं मत्स्येन्द्रनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ तथा गुरु गोरक्षनाथ जी और इनके कुछ एक शिष्यों के चरित्र वर्णन किये

लेखक :

श्री सूर्यनाथ जी के शिष्य
वीरनाथ जी (आई पन्थी)

गये हैं। नौ नाथों के स्वरूप सहित बारह पन्थों का वर्णन चौरासी सिद्धों के नाम से दिये गये हैं। श्रद्धालु भक्तजनों के कल्याण पथ बोधार्थक ग्रन्थों के परिचयार्थ श्री गोरक्षनाथ जी के ग्रन्थों की सूक्तियां दी गयी हैं जिन योग क्रियाओं के क्रियान्वित करने से निर्धारित समय—२ पर फल देने वाली हैं। उन सूक्तियों का उद्गम अनन्त श्री—श्री गोरक्षनाथ कृत सिद्धसिद्धान्त पद्धति, सिद्धान्तसंग्रह गोरक्षपद्धति आदि ग्रन्थों से है। उक्त सूक्तियों में जिन सज्जनों की रूचि होवे उक्त ग्रन्थों से लाभ उठावें। गुरु शिष्य परम्परा मर्यादा को मर्यादित रखते हुए परम सदाशिव ने स्वयोग माया द्वारा सर्व आवश्यक रचना रचकर नामरूपान्तर कर उसमें विराजमान हो गये। कल्पद्रुम तन्त्र नारदपुराण स्कन्दपुराण गर्गमुनि द्वारा रचित गोरक्ष सहस्त्रनाम गोरक्षगीता दत्तगोरक्ष सम्वाद दत्तगोरक्ष निकटवास करने आदि से प्रमाणित लेख दिये गये हैं। उमाशंकर सम्वाद स्कन्दपुराण से उद्धृत है। पश्चात्य ऐतिहासिक विद्वान ब्रिग्स ने गुरु गोरक्षनाथ जी की सक्रियाचरित्रात्मक लीला को चारों ही युगों में विराजमान यथार्थ ही कहा है जो कि "गोरक्षनाथ एण्ड दी कनफटा योगीज" के पृ० १८६ के प्रकरण में है। राजस्थान के पुण्यात्मा जोधपुराधिराज मानसिंह कृत श्री नाथतीर्थावली आदि विविध ग्रन्थों से श्रीनाथ सम्प्रदाय के मठतीर्थों की सत्ययुगादि से जिनकी प्रसिद्धता सिद्ध है उनके संस्थाप्य संस्थापक भाव से भी इन मठतीर्थों के संस्थापकों की चारों युगों में विद्यमानता सिद्ध होती है। इटली के विद्वान

एल० पी० टैंसिटरी का कथन है कि गोरक्षनाथ जी नाथ सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता हैं और नाथ सम्प्रदाय शैवसम्प्रदाय ही है। सिद्ध विचारनाथ, सिद्ध भर्तृहरिनाथ हैं। सिद्ध बालनाथ (लक्ष्मणनाथ) सिद्ध बालकनाथ (सिद्ध डीवटनाथ) हैं इत्यादि और भी कुछ एक सिद्धों के संक्षिप्त चरित्र दिये हैं। सिंगल द्वीप में राजा सत्यवान के मृत शरीर में श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी का प्रवेश करना परशुनाथ लंकेशनाथ का वर्णन इनके द्वारा अनेक मन्त्र तन्त्रों की रचनादि की गयी है। अन्त में श्रद्धालुओं के लाभार्थ संक्षिप्त प्राणायामादि की विधि अजपा गायत्री की संकल्प मूलाधारादि चक्र तथा उनके देवतादि का वर्णन अन्य भी कई लघु विषय हैं।

इस ग्रन्थ की पूर्ति सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री श्रीमान् योगी आनन्दनाथ जी की श्रद्धा से हुई और श्री पुजारी पारसनाथ जी ने भी पुस्तकादिकों को उपलब्धि की सहकारिता प्रदान कराई, हरियाणा के मण्डल सोनीपत स्थित ग्राम रोड़का मुहाना के श्री श्री अनन्त श्री विभूषित योगीश्वर श्री सूर्यनाथ जी के शिष्य पञ्चनददेशोद्भव मण्डलामृतसर के ग्राम किरलगढ़ स्थित दुर्गा मन्दिर स्थानाध्यक्ष आई पन्थी योगी वीरनाथ द्वारा श्री नाथचरित पूर्ण हुआ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में हरियाणा प्रदेश के जिला रोहतक के ग्राम अस्थल बोहर महामठाधीश्वर श्री अनन्त श्री विभूषित श्री महन्त चान्दनाथ जी महाराज की उदारधी को हेतुता है।

—❊—

विषय–सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
उपक्रम	१
मंगलाचरण	

प्रथम पुष्प

त्रिदेव परामर्श (त्रिदेवविचार)	१–१
विशेष ज्ञातव्य	३
महाशक्ति भवानी का अभिमान तथा रोषादि	३–७

अथ द्वितीय पुष्प

भारत खण्ड में कश्मीर	८
श्रीनगर में सारस्वत गोत्रीय ब्राह्मण सुभद्र	९–१०
कल्याण योजनारम्भ	१०–११
सुभद्र और कल्याणी को स्वप्न आना	१२–१३
शिशु का जन्म और जलाशय में विसरजन करना	१३–१४
सत्ययुग में नारद जी का कैलाश में जाना	१६–१७
उमा को सोच और रोष	१७–१८
उक्त बालक को फेंकने जाना	१९–२०
महायोगेश्वर की कायसम्पत्	२१
महामत्स्य का ग्रसकर पश्चाताप	२४
भवानी को अमर कथा सुनाना और महामत्स्य ग्रसित	
शिशु को पेट और झील से निकालना	२४–२८
महायोगेश्वर आदिनाथ द्वारा नाथ मार्ग की विशेषता कहना	२९–३०
शंकर भवानी का मत्स्येन्द्र पर स्वत्वादि दिखाना	३०–४१
बालक दिव्य कैलाश पर मुद्राओं से समालंकृत	४२–४६
मत्स्येन्द्रनाथ ने सप्तशृंग गिरि पर तप करना और इन्द्र ने रम्भा आदि को भेज तप भंग करने का प्रयास करना	४७–४९

अथ तृतीय पुष्प

गोरक्षनाथ जी का आविर्भाव होने में चतुर्विध कारण ४९–६०

आदिनाथ ने ब्रह्माण्ड भ्रमण कराते हुए भवानी को
वहीं ले जाना जहाँ स्वयंमेव गोरक्ष रूप से विराजमान थे ६०–७१

गोरक्षशब्द निर्वचन ७२–७६

नाथ शब्दार्थ ७७–८१

श्री गोरक्षपाथ का लोकालोक पर मत्स्येन्द्रनाथ जी से
दीक्षा लेने जाना ८२–८३

गोरक्षनाथ आदि महासिद्धों की सदैव विद्यमानता
और योगविद्या की महत्ता ८४–९४

अथ चतुर्थ पुष्प

श्री गोरक्षनाथ जी की सर्वदैव विद्यमानता ९४–१०२

श्री नाथ तीर्थावली के अनुसार १०३–१४३

गर्गर्षि का गोरक्षनाथ के सन्दर्भ में कृष्ण को बताना १४४–१४६

कलियुग में गोरक्षनाथ जी का महोज्जवल यश पूर्ण
भक्त को पुन: सर्वागीण करना १४६–१५८

प्राणसांकली पर विचार १५८–१५९

मरौ वे योगी मरौ १६०

अथ पंचम पुष्प

चारों युगों में मत्स्येन्द्रनाथ जी १६२

मत्स्येन्द्रनाथ जी का कामरूप देश में आना और
सत्यवान को वचन देना १६६

मत्स्येन्द्रनाथ का कामरूप से प्रस्थान १७३

मत्स्येन्द्रनाथ का साबरी मन्त्रों की रचना कर कैलाश पर जाना
और भव भवानी से कहकर तत्तम् मन्त्रों के देवता आदियों को वहीं
बुलाकर उस उस के मन्त्र आदि के चेतनार्थ उस,उसके
देवता आदि की स्वीकृतियें लेना व उनको वचन बद्ध करना १७७

मत्स्येन्द्रनाथ ने परकाय प्रवेशार्थ स्वशिष्यों से विमर्श १८०
सिद्धराज का राजशरीर में प्रवेश बाद में गोरक्षनाथ जी
ने गुरु से राज शरीर का त्याग करना १८२
गोरक्षनाथ द्वारा गुरु का राजशरीर त्याग करवा दोनों
का वहां से प्रस्थान २०३
शंकर दिग्विजय अनुसार २०४

अथ षष्ठम पुष्प

महाज्ञान और नाथ सम्प्रदाय के बारह पन्थ २०८
भर्तृहरि के वैराग्य होने के चार कारण २१५
दीक्षित भर्तृहरि को उपदेशामृत मंगल २४८
बारह पन्थों के प्रवर्तक तथा मुख्य स्थान २७०
बारह पन्थ व नाथ सम्प्रदाय तथा द्वादश पन्थों की सार्थकता २७१
नाथयोग अपने उद्भव काल में २७७

अथ सप्तम पुष्प

नव नाथों के नाम और स्वरूप सहित ध्यान २८०
नाथ सम्प्रदाय के प्राचीन चौरासी सिद्धों की गुरु शिष्य प्रणाली एवं नाम २८२
पूर्व नष्ट हुए पन्थो का विवाद, आदिनाथ से महायोग ज्ञान २८९
महाज्ञान एवं इसकी विशेषता आदि २९१
हठयोग के आसन प्राणरोधादि षडंग २९३
महायोगेश्वर ज्वालेन्द्रनाथ २९३
अवधूत लक्षण २९५
योगीराज भर्तृहरि जी २९८
योगी सिद्धचर्पपट नाथ जी ३०५
प्राचीन कथानक ३११
भगवान परम सदाशिव ३१४
ध्यानयोगोपनिषद् में, योगयुक्तों की संध्या ३१५
कैलाश भ्रमणार्थ सर्व योगि सिद्धों के सम्राट का जाना ३१७

भवानी का बालक तपस्वी को वर देना ३२१
बालक तपस्वी को स्वप्ने में सूचित होना आदि ३२५
सिद्ध हाजी रत्ननाथ जी ३३१
जम्मु रियासत के गाम सिवांखा में सिद्ध का आना ३३८
सिद्ध द्वारा ग्राम वग का परिवर्तन ३४१

अथ अष्टम पुष्प

श्री गोरक्षनाथ जी का जाति जन्म ३४८
आदिनाथ जी ३५५
भक्तजनों का प्रश्न ३५७
अज्ञात काल निर्णय पर विचार ३६१
सिद्धों की अन्य नवजात कथा ३६५
अपने लेख पर लेखक का वक्तव्य ३७०

अथ नवम पुष्प

अजपा गायत्री जपादि विधि ३७२
अजपासंकल्पविधि ३७४
चक्रादि दर्शन ३७९
नाड़ियों आदि का वर्णन ३८१
योगअभ्यास में शुभाशुभ का ग्रहण त्याग ३८२
व्यक्ति पञ्चक ३८३
प्राणायाम विधि ३८५
समरस स्वरूप ३८८
शिक्षा कृपा त्रिधा ३९०
गुरु द्वारा योग साधन का समयानुसार फल सिद्ध ३९१
गुरुओं की वंश परम्परा
पञ्चावस्थायें सप्त भूमिकायें गुरु कीदृश भवितव्य ३९३
अवधूत का वेश और चिह्नमुद्राओं की निरूपण ३९६
सिद्धमत (नाथमत) का आश्रय ३९७

❋ नाथ निरञ्जन की आरती ❋

नाथ निरंजन आरती साजै।

गुरु के सबदूं झालरी बाजै।।टेक।।

अनहद नाद गगन में गाजै।

परम ज्योति तहां आप विराजै।।१।।

दीपक ज्योति अखंडत बाती।

परम ज्योति जगे दिन राति।।२।।

सकल भुवन उजियारा होई।

देव निरंजन और न कोई।।३।।

अनन्त कला जाकै पार न पावै।

शंख मृदंग धुनि बेनि बजावै।।४।।

स्वाति बूंद ले कलश बदाऊँ।

निरति सुरति ले पहुप चढ़ाऊँ।।५।।

निज तत नावं अमूरति मूरति।

सब देवां सिरि उदबुदि सूरति।।६।।

आदिनाथ नाती मच्छेन्द्रनाथ पूता।

आरती करें गोरख अवधूता।।७।।

(गोरख बानी पद ६३)

❋

बहुपूर्व समय में लोक कल्याणार्थ हुआ त्रिदेव विमर्श

॥ ॐ ॥

※ श्रीनाथपरमात्मने नमः ※

अथ श्रीनाथचरित

किन्तत्त्वं किन्न वा तत्त्वं न जानामि परेश्वर।
यत्तत्त्वमस्ति तत्तत्त्वं दर्शन त्वं महेश्वर?॥१॥

※ अथ प्रथम पुष्प ※

महाप्रलयान्तपाद में जब जीवों के कर्मपाकोन्मुख हुए तो वेद जिसको ओ३म् सच्चिदानन्द अकाल पुरुष परमात्मा तथा सर्वभूतान्तरात्मा इत्यादि परम महान नामों से जिसकी स्तुति करते हैं। ईदृशादिग्देश कालाद्यनवच्छिन्न निराद्यन्त ने 'एकोऽहं बहुस्याम्' मैं एक हूं बहुत होऊं, इत्यादि श्रुति वचनानुसार वह सर्वाध्यक्ष जागतिक अवस्था त्रयार्थ प्रथम ब्रह्मदेवरूप से तथा प्रधान त्रिदेवरूप से प्रकट हुआ और अनेक अन्य महान कार्यों के लिये अनेक अन्य महती शक्तियों द्वारा भी प्रादुर्भूत हुआ। तब महेश्वर आदि त्रिदेवों ने जीवों पर अनुकम्पादृष्टि से अवलोकन कर आवागमन चौरासी से मोचनार्थ, मिथः कैलास पर परामर्श किया कि जीवों के कल्याणार्थ कतमोपाय श्रेष्ठतम रहेगा। निश्चित हुआ कि योग ही सर्वश्रेष्ठतम उपाय है। अतएव योगविद्या का अशेषज्ञान होना परमावश्यक है। भवग्रह से अग्रसन होने के लिये यही वरतमोपाय है एवं जड़ चेतन

की पृथक्कता बोधार्थ और मन का स्वकार्य में विलयार्थ अत्युत्तम उपाय है। इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु ने पृथक् भी विमर्श किया कि इस परम कल्याणकारी विद्या के अध्यक्ष महायोगेश्वर महेश्वर ही हैं। वे यथा इस विद्या के अध्यक्ष रक्षक हैं। वैसे ही रुद्ररूप से सर्वभस्मक तथा भक्षक भी हैं और निज योगबल द्वारा शिवकर (कल्याणकर) भी हैं एवं ब्रह्मदेव बोले कि हे महेश्वर! मुझे तो रचना कार्य (प्रवृति) से विराम (फुरशत) नहीं मिलता और यह कार्य भी महान ही है। इसको तो करने योग्य समर्थ आप ही हो सकते हो। अत: सविनय प्रार्थना है कि इस योगविद्या के प्रचार–प्रसार के लिये आप ही सक्षम हो। किन्तु फिर भी मैं यथाशक्ति इसमें समय–२ पर सहयोग दूंगा। इसके बाद विष्णुजी ने भी परम विनयभाव से यही प्रार्थना की कि मैं ब्रह्माण्ड के निरीक्षण समीक्षण पोषण में अविरुद्ध गति से अस्त–व्यस्त रहता हूँ। अत: इस महान कार्य को करने के लिये आप सुशोभित हो सकते हो। क्योंकि संसार से परमोन्मुख होकर यह कार्य करना प्रत्येक के वश का नहीं है। परन्तु यथा आपकी आज्ञा होगी यथाशक्ति मैं भी साथ दूँगा। इसके बाद दोनों देवों की प्रार्थना सुनकर तथा उनकी स्वीकृति जान प्राणिमात्र पर करुणार्द्रित हुए शंकर जी ने (तथास्तु कस्मिङ्काले) किसी समय वैसा हो जावेगा। इसके बाद दोनों देव अपने–अपने धाम को चले गये।

विशेष ज्ञातव्य

जो हेतु दृष्टान्त से निर्मुक्त, मनोबुद्ध्य गोचर महाचिदाकाश, दिग्देश कालातीततत्त्व है उसी के–परमसदाशिव, सदाशिव, आदिनाथ, गोरक्षनाथ, सच्चिदानन्द, परब्रह्म आदि ये पर्याय वाचक हैं एवं आदिनाथ गोरक्षनाथ ये दोनों परम सदाशिव के ही नामरूपान्तर हैं। यथा आदिनाथ जी पृथगपृथगुभयभूत मूलात्मिका निजाशक्ति भवानी सहित शिव हैं। परम सदाशिव का द्वितीय नामरूपान्तर जो गोरक्षनाथ जी हैं वह अविना शक्ति सम्पन्न सर्वशक्तिमान मायातीत मूर्तिमान परम सदाशिव ही गुरु गोरक्षनाथ जी हैं एवं समस्त महायोग विद्या तथा नाथ सम्प्रदाय के प्रारम्भक कुलाकुल शक्तिमान श्री आदिनाथ जी हैं एवं जब–जब महायोगविद्या का ह्रास या अतिह्रास होता है तो तब–तब ही परमसदाशिव और सदाशिव ही गुरु गोरक्षनाथ रूप होकर महायोगविद्या को पुनः समुन्नत करके इसका प्रचार विस्तार कर नर–नारियों का कल्याण करते हैं और प्राणिमात्र पर करुणा दृष्टि की वृष्टि का पात कर हित करना यह उस गोरक्षनाथ कारुणिक का सहज स्वभाव ही है।

❊

महाशक्ति भवानी का अभिमान तथा रोष

जो अकार्य अवस्था में मूलप्रकृत्यात्मिका तथा कार्यावस्था में महत्तत्त्वादि विविध विकृतियों की प्रसविका असीम जगज्जाल बिछाने वाली सर्वनामरूपोपदान कारणिभूता जगदम्बा भवानी ने किसी सेवा कार्य के वाद–विवाद में अभिमान और कोपाविष्ट होकर शंकर से कहा कि, हे सर्वाधिष्ठातः देव महादेव! आप मुझ पर बहुत दबाव तो डालत हो

किन्तु मुझे यह बताओ कि मुझसे बिना आप कुछ कर भी सकते हो अथवा मुझसे अतिरिक्त आपकी कोई शक्ति रूपाकार है। सभी देवाधिदेव यक्ष राक्षस किन्नर नर अन्य छोटे से छोटे महान से महान सभी प्राणिमात्र अपना–अपना घर घाट बना कर रहते हैं। किन्तु आपको सबका दाता बताते हैं फिर भी आपके आहार के लिए अर्क भांग धतूरा पवन आदि ही हैं और पहनने को बागम्बर है। निवासार्थ कठिन कंकरीले पर्वत व हिमाच्छन्न हिमालय का कैलास नामक शिखर है जो सदा ही शीतवात से आकुल रहता है। इसके अतिरिक्त श्मशानों में रहकर श्मशान भस्म का लेप कर ही मस्त रहते हो। यह कहां का दातापन है। यह कंगालता है। यह क्या? दाता लोकों का कोई घर घाट नहीं होता है। क्या वे खानाबदोष (निर्गेही) ही होते हैं? मैं समझती हूँ कि जो ईदृशों को भण्डारी या दाता कहते हैं वे उन्मत (पागल) हैं। यदि दाता हो तो स्वर्गपुरी सत्यलोक वैकुण्ठ आदि वत् कुछ बनाकर रहना चाहिये था। यदि आप कुछ बनाओ तो ठीक है अन्यथा मैं स्वयं स्वसङ्कल्प से बना लूंगी जैसी मेरी इच्छा होगी। यह श्रवण कर शिव ने रोष में न होते हुए भी रोषयुक्त वचन कहा कि मेरे संकल्प के बिना आपके संकल्प की कोई शक्ति नहीं है। जो किसी कार्य को निष्पन्न कर सके। किन्तु ईश्वर का यह वचन सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ कि यथा महाशक्ति दुर्गा भवानी की सभी शक्तियां क्षुब्ध होकर कुपित हो महाप्रलय कालिक प्रलयानल, वडवानल, दावानल महाकालानलें आदि की एक सबकी मूलभूता मूलानल जगदम्बारूप में एकत्रित हो गये हों। शिवा ने कोपयुत होकर स्वशक्ति का ईश्वर को स्मरण कराया कि हे महेश्वर!

भवानी का स्वशक्ति स्मरण कराना

आपका ऐसा कोई रूपाकार नहीं हैं जिस रूपाकार के साथ मैं युग्म (जोड़ा) रूप से नहीं हूँ। अर्थात् पत्नी रूप से हूँ। यदि हे शम्भो! आप ओ३म् हो तो मैं गायत्री हूँ। यदि आप ब्रह्म हो तो मैं माया हूँ। यदि आप ब्रह्मा देवता हो तो मैं सावित्री देवी ब्रह्माणी हूँ। आप शिव हो तो मैं शिवा हूँ आप विष्णु हो तो मैं लक्ष्मी हूँ। आप इन्द्र हो तो मैं इन्द्राणी हूँ। आप पुरुष हो तो मैं प्रकृति देवी हूँ। आप महाकाल हो तो मैं महाकाली कराली हूँ यदि आप नर हो तो मैं नारी हूँ। यदि आप पुलिङ्ग वाचक हो तो मैं स्त्रीलिंग वाचिका हूँ। इत्यादि सर्वत्र यह सत्य है कि जहाँ–जहाँ आप हो वहाँ–वहाँ मैं पृथक्, अपृथक् किसी भी प्रकार से मैं अवश्य साथ हूँ। अतएव हे ईश्वर कृपा करके आप कहिये कि कौन सी शक्ति आपकी है जो कि मेरे से तिरोहित अथवा मेरे से पृथग्भूता है और वह आपका कौन सा रूप है कि जिसकी संगिनी मैं नहीं हूँ एवं उद्वेजित करने वाले वचनों को सुनकर भी अगाध गम्भीर धीर रहे। क्योंकि यह सब कुछ कथन तो स्वशक्ति जगदम्बा से स्वयं करवा रहे थे एवं किसी ने ठीक ही कहा है कि ईश्वर इच्छा बलीयसी इस प्रकार यही प्रतीत होता है जो ईश्वर को भावित (इच्छित) होता है वही होता है। (यथा मन चाही न होत है हर चाही तत्काल बली चाहे था स्वर्ग को भेज दिये पताल) जो तुद भावे साई भली कार हे ईश्वर जो आपको अच्छा प्रतीत होता हो वहीं कार्य–काम अच्छा है। ऊपर कहे शिवा के वचन सुनकर शंकर बोले कि हे जगदम्बे! जो वचन आपने रोषविष्ट होकर प्रकट किये हैं वे वचन कुछ सत्य हैं कहीं कुछ असत्य भी हैं। कौन कहाँ सत्य हैं और कौन कहां

असत्य हैं। यह सब कुछ समय आने पर स्वयं खुल जावेगा। अब तुम बाकी कहे अशन वस्त्र परिधारण (खाना–पहनना) को समझ ये विषय भोग अतृप्तों आसक्तों के लिये हैं जिनके प्राण धारण ही ये भोग हैं। उन्हें परिमित बलापन्न साधारण मनुष्यादियों के लिये ये भोग्य भोग हैं। जो क्षुध ा पिपासा शीतोष्ण वायु वृष्टि झंझावत आदि अनेक दु:ख द्वन्दों से ताड़ित हैं और जो घर की बात कही थी तुमने उसकी आवश्यकता तस्करी शीतोष्ण वायुवृष्टि झंझावत आदि की रोकथाम के लिये ही आवश्यक आवश्यकता होती है उक्त दु:खों से ताड़ितों को ही। हमारे को आपको इनमें से किसी का भी भय या प्रभाव नहीं है क्योंकि प्रत्युत ये सब हमारे से बल पाकर प्रभावित (बलवान हुए) भयानक होते हैं। इन सबका अन्यों की तरह हमारे पर कोई प्रभाव नहीं है। इनका बलाबल हमारे ही आधीन है। अतएव इनसे रक्षार्थ हमारे लिये सुरक्षा व्यर्थ है। अत: सप्त पतालों की अन्तिम सीमा मेरे पाद हैं। (जंघाओं का भाग विराट् का मध्य भाग है अर्थात् भूलोक मेरा मध्य भाग है। अन्तरिक्ष मेरा मूर्धा है) और इस प्रकार भी मेरे इस रूप का वर्णन होता है कि जानु प्रर्यन्तपाद भाग शूद्र वर्ण है एवं जंघा समेत जठर भाग वैश्य वर्ण है। वक्षोपरि भुजान्त पर्यन्त क्षात्र वर्ण है। इससे भी ऊपरी भाग मेरा उत्तमांग (मूर्धा) है वह ब्राह्मण वर्ण है। अब इस उक्त मेरे रूप का धाम (घर) परिधारण (वस्त्र) इतने बड़े और घर भी इतना बड़ा बता कौन बनावेगा और कहां बनावेगा। यदि हमको कहो तो हम इसको व्यर्थ जानकर नहीं बनाते क्योंकि व्यर्थ में तो बुद्धिमान मनुष्य ही प्रवृत्त नहीं होता तो हम कैसे होवेंगे।

—❋—

अब रही बात आपकी

खान पान वस्त्र आदि के लिये तो बतावो जल के लिये जल को क्या आवश्यकता है। आग के लिये आग को क्या जरूरत है। वायु के लिये वायु को, आकाश के लिये आकाश को, पृथ्वी के लिये पृथ्वी को क्या आवश्यकता है। अर्थात् कोई भी नहीं है एवं प्रकारेण यह समस्त नामरूपात्मक ब्रह्माण्ड तो आप मूल प्रकृत्यात्मिका की ही महत्तत्त्वादि विकृतियें परम्परा आपसे अभिन्न है। यह दृश्य जगत्समग्र कार्य कारण रूप से आपका अभेद (तद्रुप) ही है और जो वस्तु अपने आप से भिन्न पृथक् हो उस अनाप्त की प्राप्ति की इच्छा होती है न कि अपने आपकी वह तो सदा ही सबको प्राप्त है। अतएव हे जगदम्बे? आपके लिये भी उक्त खान पान धाम आदि को तुच्छों की चाहना अनादरणीय ही है व्यर्थ होने से। तस्करी की बात सुनों इसके लिये मकान धाम आवश्यक होते हैं तो आपके लिये तो यह भी आवश्यक नहीं है क्योंकि समस्त ब्रह्माण्ड मूल प्रकृत्यात्मिका का ही है। तो तस्कर तस्करी करके आप ब्रह्माण्डरूपा से बाहर कहाँ ले जावेगा जहाँ पर कि आप न होवेंगी यही अखिल ब्रह्माण्डरूपा प्रकृति माया है। यही समस्त ब्रह्माण्ड मूलभूता प्रकृति व माया मुझ परब्रह्म शिव के एक हिस्से में व्यवस्थित रहती है। 'ममैकांशे स्थितो जगत, गीता—मेरे एक हिस्से में जगत स्थित है और ऐसा ही मेरा ज्ञानवेद भी कहता है कि 'पादोऽस्य सर्व भूतानि त्रिपादप्ति स्वयं प्रभा' अर्थ—वेद भगवान कहता है कि उस दिग्देशकालातीततत्त्व भगवान के एक भाग में समस्त भूतवर्ग ब्रह्माण्ड स्थित है। उसके तीन भाग स्वयं प्रकाश (निज प्रकाशरूप) हैं। अत: प्रकृति भवानी से परब्रह्म शिव से भिन्न न कुछ होने से इनके लिये अशन वस्त्र धाम आदि भोग्य भोगों का प्रश्नोद्भव ही नहीं होता। इति प्रथम पुष्प वीरनाथकृत।

❊ अथ द्वितीय पुष्प ❊

भारत खण्ड में कश्मीर नाम का एक देश है जो बड़े–बड़े पर्वतों की निरतिशय सुदृढ़ आवर्तुलाकार भित्तियों (दिवारों) से चतुर्त: (चारों ओर से) आवृत्त (सुरक्षित) या घिरा हुआ है। यहां के नर नारी रूप सौन्दर्य से अमरालय (स्वर्ग) के देवी देवों का भी अतिक्रमण करते आ रहे हैं जब से यह देश भूभाग में बसा है अद्वितीय ही रहा है। इस देश में श्रीनगर नाम का एक नगर है जिसको कश्मीर का हृदय या मस्तिष्क कहना अत्युक्ति न होगी। यह नगर और इसका समीपवर्ती देश निष्कटक कोमल पल्लववृक्षों की पंक्तियों से सुशोभित अनेक सेव बताद (बादाम) आदि फलों के भार से विनम्र और अनेक हींग केशर जीरक देवदारु ध्ूप गुग्गुल आदि अनेक सुगन्धित द्रव्यों को उद्भाव कर (पैदा कर) के सुवासित हो प्रफुल्लित होता आ रहा है। यह श्रीनगर (शोभानगर) की कतिपय मीलों की वर्तुलाकार सीमा का अन्तराल सब देशों के सौन्दर्य को परे कर एक आप ही सौन्दर्य का मूर्तिमान प्रमाणित हो रहा है। यह कश्मीर देश अनेक सिंह गज मृग मृगमद (कस्तूरी मृग) आदि वन्य प्राणियों का आगार अनेक नग नद नदियों का जनक है। यह हिमालय का कहीं स्कन्ध कहीं वक्ष जठर कहीं से जंघादि अवयवों वाला है। इसका जठर अपने में से निर्झरों को बहाकर अपने आप को भी आर्द्रित कर वर्धित कर रहा है। यह देश नगों की सुसघन सुसंघटित मालाओं की भित्ति से आवृत अनेक विविध गुणों से गुम्फित है। इस अति सुन्दर देश दुर्ग का अभ्यन्तर भाग कमल कोमल है और परिधि गिरिवरों की कतारों से विराजमान है। यह देश यवनों के आगमन से और इनकी भारत राज्य

सत्ता से पूर्व केवल ब्राह्मण प्रधान देश था और कोई जाती तो नाममात्र ही थी। वर्त्तमान में यहाँ जितना भी म्लेच्छ मुसल्लवाद है यह भूतपूर्व ब्राह्मणों का ही परिवर्त्तन है यहीं कन्या कुब्ज जैसे महाविद्यालय थे जो अपनी तुलना में केवल आप ही थे। इसका जो महानगर महापुण्य के प्रताप से एवं महा सौन्दर्य के भार से विनम्र श्रीनगर (शोभा नगर) है।

इस श्रीनगर में सारस्वत गोत्रीय ब्राह्मण था

इस ब्राह्मण का नाम सुभद्र था शास्त्रज्ञ और ज्योतिर्वित् था तथा कल्याणी नाम की इसकी धर्मपत्नी थी इनकी उत्तरा अवस्था हो आने पर भी सन्तान से वञ्चित ही थे सन्तान न होने से अत्यन्त उदासीन रहते थे। तब एक दिन कल्याणी ने स्वपति सुभद्र से कहा कि आप भला ज्योतिष की दृष्टि द्वारा देखें विचारें कि कुलोद्धारक हमारे भाग्यों में पुत्र है या नहीं तब डावाँडोल मानसिक स्थिति वाले सुभद्र ने दिन मार्तण्डवार (रविवार) में प्रात: उठकर प्रथम स्नान कर भगवान विष्णु के मन्दिर में जाकर चन्दन पुष्प धूप आदि से पूजन कर भजन करने के पश्चात् भगवान से मानसिक प्रार्थना से याचना की कि हे विष्णो? आज मेरे विचार में ज्योतिष का फलादेश आपकी कृपा से आनन्दकारक आवे। इसके बाद मन में विष्णु का स्मरण करता हुआ घर में पहुँचा तो एकान्त में बैठकर दम्पति मानसिक परमेश्वर का स्मरण करके ज्योतिष को भी प्रणाम कर उद्घाटन किया। दम्पति का ग्रहचाल योगादि राशि का विचार फलादेश निकला कि अद्यतन से ही विष्णु का भजन पूजन नित्य पुत्रादि पर्यन्त दम्पति करते रहें तो निर्बल भाग्य भी सबल होकर फलदायक होगा एवं प्रतिदिन दम्पति प्रात: उठकर पावन हो प्रार्थना करते थे कि हे परमेश्वर? जो आपका कृपारूपी आशीर्वाद से हमें प्रसाद रूप पुत्र हो वह आप स्वयं होयें या आपके सदृ

श सर्व गुण सम्पन्न हो। इधर पूर्व किये गये कैलास पर तीनों देवों के परामर्श का स्मरण कर शंकर भगवान ने फिर विष्णु जी को ध्यान में सम्बोधित कर बुलाया कैलास में तो विष्णु जी उसी समय प्रकट हुए और दोनों महादेव परस्पर संयुक्त हो मिले। तब पास में बैठाकर शंकर जी ने कहा कि जो पूर्व योग ज्ञान प्रचार की मनुष्य कल्याणार्थ योजना बनाई थी आपने क्या निश्चित किया।

कल्याण योजनारम्भ

तब विष्णु जी ने कहा कि मैंने पूर्वकाल सत्ययुग में देवर्षि नारद को मन इन्द्रियां जीतने के कहे हुए अभिमान को निवाणार्थ मायावी नगर को अन्तरिक्ष में रचकर के एक मायावी सुन्दरी के स्वयम्बर में प्रेरित करके भेजा तो वहां उसे पता चला कि जो सबसे सुन्दर होगा उसके गले में उस सुन्दरी ने जयमाला पहनानी है तब नारद जी मेरे पास मेरा रूप मांगने के लिये आये तो मैंने उसको हरि (वानर) का रूप बनाकर उसे वापिस भेज दिया तो बड़ी प्रसन्नता से जाकर सुन्दरी के साथ विवाह की इच्छा वालों की पंक्ति (लाईन) में बैठ गया जब सुन्दरी जयमाला लेकर उसकी ओर घृणा से देखकर के आगे निकल गई तो पुनः उससे आगे जाकर के फिर लाईन में बैठ गया। वह फिर भी उसकी ओर नफरत से देखकर के आगे को निकल गई। तो इस कौतुक को शिव के गण देखकर के हंसे और नारद से बोले कि पहीले तुम अपना मुख तो देखो जो इस सुन्दरी के साथ शादी करना चाहते हो? तब कुपित हुए नारद जी निकटवर्ती किसी जलाशय में अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखा कि मुझसे भगवान ने धोखा किया है। तब क्रोधित नारद ने मुझे शापित किया कि

जैसे स्त्रियों के जाल में आपने मुझे मोहान्धकार में फंसाया है। आप भी अपने अंश के किसी रूपान्तर में होकर कष्ट उठाओगे और स्त्रियों के मोहान्धकार में फंसोगे तथा ज्ञान को भूल जावोगे एवं हे महादेव! पूर्वकाल में मैंने कश्मीर के ऊपरी अन्तरिक्ष में ही यह मायावी श्रीनगर रचा था। उसी का प्रभाव वर्तमान कश्मीर स्थित श्रीनगर है। इस नगर में मेरे भक्त सुभद्र तथा कल्याणी दम्पति पुत्र न होने के कारण भक्ति द्वारा मुझको पुत्रकामरूप से चाह रहे हैं। अत: कल्याणी के गर्भ से यदि आप ठीक समझो तो योग प्रचारार्थ जन्म ले लूँ ? शंकर जी बोले कि हे हरे! जन्म तो आपने अवश्य ही लेना है योग प्रचारार्थ किसी रूप से किन्तु यह प्रकार आपका सबसे अच्छा है इससे कई कार्य सिद्ध हो जावेंगे और शापादि भी नष्ट हो जावेंगे। अत: आप अपनी योग माया द्वारा कल्याणी के गर्भ में वास कर जन्म धारण करो हे शम्भो! नारद, रवि उषा के शापों से जन्म धारण से मेरे ज्ञान और बल का तो हान होगा ही उसके बाद मुझे पुन: आशीर्वाद देकर सबल बनाना तथा महाज्ञान सुनाना तो आप पर ही निर्भर होगा जैसा कि मैं शापित होने से पूर्व अवस्था में था पुन: मुझे वैसा करना ही आपकी कृपा होगी। हे जर्नादन! यह सब कुछ मैं करूँगा इस विषय में मुझे आपकी कृपा से सब चिन्ता और ध्यान रहेगा। विष्णु हे प्रभो! मुझे जाने के लिये आज्ञा हो शिव जाओ मंगल हो? विष्णु जी की किसी आंशिक शक्ति का कल्याणी के गर्भ में वास हुआ। इस प्रकार विष्णु जी का भजन पूजन करते हुए जब एक वर्ष व्यतीत हो गया तो दिवाकर की रात्रि के चतुर्थयाममुख (चौथे पहर के शुरू) में सुभद्र को स्वप्न आया।

सुभद्र को स्वप्न आना

विष्णु भगवान कह रहे है कि हे सुभद्र! आज से चौदहवें दिन की रात्रि के चतुर्थ प्रहर में अरुण समय (उषा समय में) फाल्गुन मास की पूर्णमासी के दिन पूर्ण चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण कुलों का उद्धारक सुपुत्र आपके घर जन्म लेगा वह योगयुक्त तथा जन्मोत्तर काल में बज्रकाय अतिसौम्य होगा। किन्तु उसके जन्म लेने का समय आश्चर्यजनक अत्यन्त भयप्रद आप सबके लिये उपस्थित होगा किन्तु वह बालक अगाध ा जलाशय में विर्सजन करने से ही आप सबकी सुरक्षा का और सम्पूर्ण कुलों का उद्धारक हो सकेगा। ऐसा न करने से आप सबका खातमा करने वाला ही सिद्ध होगा और वह समय आने पर ज्योतिष की दृष्टि से आपकी भावना स्वयमेव हो जावेगी जैसा हमने कहा है तथा यह निराशामयी भावना विर्सजनी लाभप्रद रहेगी। इस प्रकार की गिरा (वाणी) को गिरा कर देव अन्तर्ध्यान (तिरोहित) हो गये। अब स्वप्न के अनन्तर सुभद्र की नींद टूटी।

सुभद्र की नींद टूटने पर

चिन्ता और प्रसन्नता, आशा और निराशा दोनों ने सुभद्र को आक्रान्त कर गमनागमन का चक्र बांध लिया। पुत्र उत्पन्न होगा जानकर चित्तवृत्ति को धैर्य मिलता, जब उसका वियोग होने वाला याद आता है तो महाबलवती निराशा शरीर मन को निर्बल कर शरीर में वेपथु (कंपकंपी) ले आती एवं इस प्रकार से उदासीनता और प्रसन्नता का आवागमन रूपी चक्र सुभद्र के विचारों में अनवच्छिन्न रूप से चल रहा था। जो दशा महार्णव में पोतभंग यात्रियों की होती है। सुभद्र की भी उन्हों की सी हो रही थी। यथा समुद्र को तैर कर पार करना तो असम्भव सा ही है। डूब

मरने में तो कोई सन्देह नहीं है एवं सुभद्र को होने वाले पुत्र के जीवन में और उसके सुख लाभ से अधिक निराशा अनुभव में आ रही थी तथा जायमान पुत्र जो अनेक कुलों का उद्धारक कहा था उसके विषय में तो न्यूनतम (बहुत थोड़ी) संभावना है अर्थात् नाममात्र ही है उक्त वाणी अपनी पत्नी को न बताकर अपने मन में रख ली कि कहीं वह सुनकर शोकाकुल हो गर्भपात न कर देवे। साथ ही अधिक दु:ख का तथा न्यूनतम सुख का अनुभव करके तो फिर भी अधिक दु:खी ही होगी अत: हठ से पुत्रोत्पत्ति पर्यन्त मौन ही साधे रखूं।

कल्याणी को स्वप्न आना

पूर्णमासी के दिन से एक दिन पूर्व का छोड़कर शुक्रवार की रात्रि के चतुर्थ प्रहर के प्रारम्भ में ही कल्याणी को भी उक्त आनुपूर्वी से सुभद्र वाला ही स्वप्न में विष्णु भगवान कर रहे हैं यथा सुभद्र को कहा था जिस स्वप्न को देखकर कल्याणी अबुद्धा कभी प्रबुद्धा अवस्थायें बदलने लगी जब पुत्र होने की याद आती तो कुछ प्रबुद्ध हो जाती थी। बिना अगाध जलाशय के यह हम सबका विनाशक होगा जब यह याद आता तो पुन: अप्रबुद्धा हो जाती है। स्वप्न आने से पूर्व कल्याणी की रूपाकृति ऐसी थी। जैसे सूर्योदय से पूर्व आकाश की अरुणवर्णमयी रूपाकृति होती है। जो अब किञ्चित्प्रकाश युत धूम्रवर्णिका की सी हो गयी थी।

शिशु का जन्म

शनि की रात्रि के चतुर्थ प्रहर में गण्डमूलां नक्षत्र के प्रथम चरण में हुआ दिन दिवाकर वार फाल्गुन मास की पूर्णमासी का था। तब सत्युग के–८००२०२ वर्ष व्यतीत होते हुए ग्यारहवें मास की पूर्णमासी का दिन व्यतीत हो रहा था।

शिशु शरीर का परिवर्तन

शिशु का शरीर जन्म के बाद बज्र के सदृश सुदृढ हो गया था अरुणवर्ण सम रक्तोज्ज्वल शिशु का प्रकाश था। कुछ समय बाद में बालक श्याम वर्णक प्रकाशयुक्त अर्थात् कुछ नीलभा वाला हो गया था और सुभद्र के ज्योतिष की दृष्टि से नक्षत्र काल ग्रहचाल आदि को विचारने पर भयंकर अनिष्टकारक सिद्ध हुआ। अन्य ज्योतिर्विदों ने सुभद्र के निर्देशानुसार किया विचार भी अनिष्ट सिद्ध हुआ इसका उपाय अगाध ा जलाशय में शिशु का विसर्जन ही एक अभयकर समझा गया। यह जलाशय किसी देवभूमि में हो तो वर होगा सबके विचार में शेषनाग झील ही (शेषनाग सरोवर ही) समीपवर्ती बालक प्रक्षेपणार्थ यथेच्छित सिद्ध हुई। सूतक पातक दुःख के समान प्रसूत दुःख से व्याकुला जननी कल्याणी की अनुमति लेने के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे कि (कब प्रबुद्ध होवे तो उसे समाचार देवें। जब वह कुछ लब्ध) संज्ञा हुई तो सब ज्योतिषि का एकमत्य भयंकर अनिष्ट कारक हुआ ही सबने सुनाया था। तब व्याकुला अवस्था में ही कल्याणी बोली कि यथेच्छा पारमेश्वरी वही होगा क्या करें और कहें।

शिशु को जलाशय में फैंकने जाना

प्रतिपदा (एकम) के दिन प्रात:काल में प्रस्थान (फैंकने जाने) का निश्चय हुआ। प्रक्षेपणार्थ—सुभद्र, कुलदीप, रणजीत क्रमशः पिता, चाचा, मामा तीनों की तैयारी—अब बालक को कृत्रिम स्तन द्वारा अस्वमाता का दूध दिया जा रहा था। प्रथम दिन में यत्किञ्चित् प्रबुद्धावस्था में माता का ही दिया था।

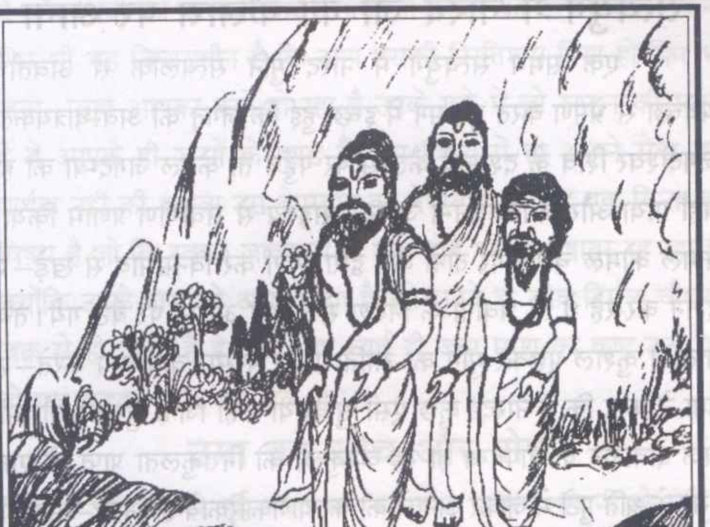

शिशु मत्स्येन्द्रनाथ को पितादि द्वारा
शेषनाग झील में प्रक्षेपण करना

सत्ययुग में नारद जी का कैलास पर आना

एक समय सत्ययुग में नारद मुनि सत्यलोक से अवतीर्थ यथेच्छा से भ्रमण करते हुए मन में इच्छा हुई कि जगत् की अवस्थात्रयकर्ता जगदीश्वर शिव के दर्शनार्थ कैलास पर पहुँचे तो केवल जगदम्बा को ही वहाँ पाया और जगज्जजननी जानकर सहृदय से सर्वांगीण प्रणाम किया। कमल कोमल चरणों पर दोनों करों द्वारा स्पर्श कर विनम्रभाव से खड़े–२ दर्शन कर रहे थे तो भवानी के निर्देश से दर्शित आसन पर बैठ गये। तब माता ने कुशल पूछकर मुनि का आतिथ्य कर परस्पर वार्तालाप करते–२ उमा ने कहा कि हे नारद! कुछ ऐसी सुक्तियां कहो जिन्हें सुनकर चौरासी चक्र दावानल के तापदग्ध हो रहे व्याकुलों को निराकुलता प्राप्त हो एक दूसरे के श्रुति पुटों में जाकर अनेकों की कल्याणकारिकायें हों। नारद–आपकी कृपा से जो मेरे ज्ञान में हैं वे ये हैं कि संसार और संसारिक समस्त कामना भोगों के लोभों से परा विरक्ति और स्वात्मरूप जगदात्मा में परा आसक्ति और परमात्मा स्वात्मा का नि:संदेह अभेद ज्ञान=दोनों का एक ज्ञान और निराद्यन्त परमात्मा में पराभक्ति और महायोग विद्या इन महासुक्तियों में सब सुक्तियां तथा सब कल्याण निहित हैं किन्तु अभ्यास से लभ्य हैं। फिर आप तो सर्वज्ञा सर्वाध्यक्षिणी हो आपसे क्या तिरोहित है। आप मुझे अपना लाडला पुत्र जानकर मुझसे केवल लोक कल्याणार्थ वागविलास कर रही हो। किन्तु इन सब सुक्तियों तथा विद्याओं के ज्ञाता धाता प्रदाता कल्याणमय शिव ही हैं। किन्तु वे स्वेच्छा स्वामी निश्प्रभाव (बेपरवाह) निश्चिन्तक सर्वसमर्थ हैं। जब ध्यान आया तो जो चाहें कर दें यदि नहीं ध्यान किया तो नहीं किया यदि इच्छा हुई तो अभावी को भी भावी कर

दें और भावी को अभावी कर दें यही तो ईश्वर का ईश्वरत्व है। किन्तु फिर भी यह विचाराधीन है कि आप उसकी निरतिशय प्रिया हो फिर भी जन्म–मरण आपका क्यों हो रहा है उनके गले में जो रुण्डन की माला है वे आपके ही जन्मों के मुण्ड हैं। इस विषय में तो आपने सेवा कर प्रार्थना नहीं की अथवा उस बेपरवाह की बेपरवाही है। यह एक चिन्ता का विषय है जो कि स्वच्छ जलाशय के पास होने पर भी तृषातुर रह रहा हो क्योंकि उनके पास जो अमर विद्या है उसे सुनते ही जीव निर्मूल चौरासी चक्र से हो जाता है हे उमे! आप व्यर्थ ही जन्म मरण का कष्ट उठा रही हो एवं कहकर नारद जी चले गये।

उमा को सोच और रोष

ऊपर कही हुई नारद की यह बात सुनकर भवानी के मन में रोषयुक्त विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे साथ मेरे स्वामी को कुछ भी दया व हमदर्दी नहीं है तो फिर मेरा उसमें उसका मेरे में, अपनापन क्या है अर्थात् मेरापन क्या है कुछ भी नहीं सम है। इसके बाद जब शङ्कर जी बाहर से आये तो उमा जी की उत्सुकता पूर्ववत् अपने प्रति न देख करके शङ्कर जी बोले कि हे उमे! क्या पहिले की तरह किसी बैकुण्ठादि पुरियों के ऐश्वर्य को देखकर के तो नहीं कहीं शोक सोच में निमग्न हो रही हो। उमा–हे जगदीश! जो ऐश्वर्य है वह सब प्राकृत है वह मुझ माया का रूप होने से मुझे सर्वथा सब आप्त ही है। कारण यह है कि जो स्वामी सेवक का सज्जन सम्बन्धी के दुःख का अपहरण करने में समर्थ होता हुआ भी उन्हों के दुःखों को नहीं हर्ता प्रत्युत दुःखी सज्जन सम्बन्धी के दुःखों का मनोरंजन (तमाशा) समझता है तो उसका एक दूसरे के साथ क्या नाता

है? और क्या सम्बन्ध है? तथा क्या एक दूसरे से मेरापन है अर्थात् कुछ भी नहीं। किन्तु मेरा दु:ख रूपी जन्म–मरण दु:ख हरण तो दूर रहा प्रत्युत मेरा उपहास कर मनोरंजनार्थ मेरे प्रत्येक जन्मों के शिरों में छेद कर उसकी माला पिरोकर स्वशोभार्थ गले का हार बना रखा है अब मैं केवल यही जानना चाहती हूँ कि हमारा आपस में मेरापन का क्या सम्बन्ध है। शंकर जी बोले–हे उमे? जब तक जिस वस्तु के पाने की श्रद्धा न हो तब तक वह व्यक्ति उसको पाने के योग्य नहीं होता इसलिये आपने कैसे विच्छृंखल वचन कहे हैं। फिर उमा बोली–क्या आपने मेरी आत्मा को दग्ध करने वाला न्याय विशेषकर मेरे ही लिये बना रखा है। ऐसी निर्दयता का दण्ड तो आप महादण्डनीयों पापियों पर भी नहीं करते होंगे कि जैसा आप मुझ अपनी अर्धांगिनी सेविका पर करते आ रहे हो स्वामिन् कहो कि अब भी मुझ निर्दोषिणी के मुख से उक्त वचन न निकलें तो और क्या निकलेगा। मैंने नारद मुनि से श्रवण किया कि आप अमर विद्या के अध्यक्ष हो जो कि जन्म–मृत्यु की विच्छेदिका है। वह विद्या मेरे प्रतिकूल है? औरों के अनुकूल है जिसके मुझे अभी नाम तक का भी परिचय नहीं है। शिवजी–हे जगदम्बे जगदुपादान कारिणि मूर्तिमान??? जब तक जिसको जिस वस्तु के पाने की इच्छा तथा योग्यता नहीं होती यह सबका अनुभव है। प्रत्युत देने वाले का और उस दित्ती वस्तु का दोनों का ही निरादर होता है अत: इच्छित वस्तु जिज्ञासु को ही देना वर होता है। हे जगदम्बे! आपको मेरे पास इस विद्या के होने का पता हो या न हो यह बात दूसरी है। क्योंकि दु:खी ही अपने दु:खहरण का उपाय सोचता है और उपाय का अन्वेषण करता है पुन: अन्वेषण करके उसके पाने की

जिज्ञासा करता है। जिसके जिज्ञासा है वही जिज्ञासु है और अब आपको जिज्ञासा हो गई है। अब तुझे असदृशी महापाप नाशिनी संसारमोचिनी अमर विद्या आपको श्रवण करा दी जावेगी दिग्देशकाल का विचार करके अवकाश देख सुनावेंगे।

उक्त बालक को

प्रतिपदा (एकम) को तीनों ने पिता, चाचा, मामा ने वर वस्त्रों से लपेट कर एक लघु पिटारी में रख उठा लिया चलते–२ चतुर्थी के प्रथम याम में शेषनाग झील के तट पर बालक को रख दिया। तो कई प्रकार के विचार कर–२ के जब सब प्रकार के विचार कुण्ठित हो गये तो परमात्मा से प्रार्थना कर याचना करने लगे कि सर्वशक्ति सम्पन्न सर्वाध्यक्ष परमेश्वर जो हम यह क्रूर कार्य करने लगे हैं। ज्योतिष की दृष्टि के दर्शित भय से भयभीत हुए और दर्शित स्वप्ने के वचनों के अनुसार वशीभूत होकर जो होने वाला है। हे परमेश्वर! इस शिशु पर और हम सब पर भी आप अपनी महती कृपा रखना और आपकी जो आज्ञा हो उसकी हम एक महूर्त पर्यन्त एक मन होकर प्रतीक्षण करेंगे। उसके बाद यथा आपका निर्देश होगा वैसा ही करेंगे अब तीनों हाथ बांध कर मानसिक प्रार्थना कर रहे हैं कि हे प्रभो! हमें बोधित करो? कि अब हम क्या करें तो अर्धमहूर्त में उच्च स्वर से आकाशवाणी हुई कि जैसा प्रबोध आपको ज्योतिष द्वारा तथा स्वप्न में हुआ था यदि अपना कल्याण चाहते हो तो वैसा ही करो और बालक का तो जैसा भी हो इसका तो कल्याण ही कल्याण है किन्तु अपने कल्याण को चाहते हो तो वैसा ही करो जैसा तुम्हारे को पूर्व सूचित हो चुका है। इस वाणी के

मौन होने पर उन तीनों ने एक आवाज से कहा कि ओ३म् जय सच्चिदानन्दाय नमोनम:। तीन बार एवं कह कर सुभद्र ने जब बालक को गोदी में उठाया तो बालक का स्पर्श होने पर पता चला कि कई गुणा पूर्व से कठिन कूटवत् दृढ़ है तथा यावत्कार से अधिक भारी प्रतीत हो रहा था एवं उज्ज्वल शरीर वाला प्रसन्नवदन दीख रहा था। इसके बाद तीनों ने तीन बार मिलकर यह कहा कि ओ३म् परमेश्वर देवाधिदेव?? सबालान् त्राहि अस्मान् पाहि अस्मान् सर्वान् इस पंक्ति का त्रिधा पाठ करके सुभद्र ने महाझील के तट पर आगे खड़े हो। बालक को सीधे हाथों से उठाकर महाझील में प्रक्षेप कर दिया। यह कहकर कि जयतु जयतु जयतु तब सच्चिदानन्द मूर्ते अर्थ पूर्व वाक्य का—हे देवाधि देव! परमेश्वर?? इस बालक सहित, हम=सपरिवार तीनों का त्राण करो? और पालन करो? दूसरे का अर्थ है कि हे सच्चिदानन्द मूर्ते!! आपकी जय हो जय हो जय हो। इस प्रकार बारम्बार कहते हुए प्रत्यावर्तित हो गये और उस बालक को गिरते—२ ही महामत्स्य ने ग्रसन कर लिया। उस मत्स्या ने इतनी शीघ्रता से बालक को ग्रसन किया कि मानों कई वर्षों से यथा क्षुधातुर हो। किन्तु बालक महामत्स्या (संसार) के जठर (उदर) में इस प्रकार आनन्द में था कि यथा शेषनाग शय्या पर बिछे मखमलों के बिछौनों पर लोट रहा हो। यह सब कुछ परमेश्वर हरिहर आप ही अपनी लीला कर आप ही देख रहे थे। अब महामत्स्य को पेट में असह्य वेदना हो रही थी और जिसका भार भी अति भारी प्रतीत हो रहा था। जिसको एक क्षण व्यतीत करना वर्षों का सा व्यतीत हो रहा था। अब उस ग्राह को प्रतीत

हो रहा था कि मैंने क्या ग्रसा है। यह तो प्रत्युत मुझे ही किसी महामत्स्या के ग्रासक ने उल्टा मुझे ही ग्रस लिया है।

महायोगेश्वर की कायसम्पत् और महामत्स्या का ग्रस कर पछताना

योग दर्शन अनुसार कायसम्पत् दीखाते हैं। "स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमाद् भूतजयः। योगद० वि० भू० पाद ३—सूत्र ४४वां। सूत्रार्थ—पाँचों भूतों के स्थूल स्वरूप सूक्ष्म अन्वय, अर्थवत्त्व में संयम करने से भूतों पर जय प्राप्त होती है।

व्याख्या—पृथिवी जल, अनल, अनिल, आकाश यही पाँच महाभूत हैं। इन प्रत्येक भूत की पाँच—२ अवस्थायें होती हैं। १. स्थूल २. स्वरूप ३. सूक्ष्म ४. अन्वय ५. अर्थवत्त्व हैं।

आगे एक—२ का वर्णन करते हैं। (१) स्थूलावस्था इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष एवं अनुभव से इनको जिस रूप में हम देखते हैं तथा शब्द, रूप, रस, गन्ध नाम के पाँचों विषय इनकी स्थूलावस्था है। अथवा अपना—२ विशिष्ट आकार रूप है। (२) स्वरूपावस्था— वसुन्धरा की मूर्ति, जल का गीलापन, अग्नि की उष्णता और प्रकाश, वायु की गति कम्पन। आकाश का अवकाश देना इनकी स्वरूपास्थायें हैं। (३) स्थूल भूतों के कारण जिनको तन्मात्रायें कहते हैं। पृथ्वी की गन्ध, जल की रस, अनल की रूप, वायु की स्पर्श, आकाश शब्द यही इन पाँचों की सूक्ष्मावस्था है। (४) अन्वयरूप— तमः, रजः, सत्त्व, ये तीनों गुण हैं क्रमशः—स्थिति, क्रिया, प्रकाश धर्म से व्याप्त हैं। अर्थवत्त्व अवस्था म ये पाँचों महाभूत मनुष्य के भोग और अपवर्ग के लिये हैं। यही इनकी अर्थवत्त्व अवस्था

है। इस प्रकार पञ्च महाभूतों की अवस्थाओं में संयम करके साक्षात् हो जाने पर योगी पाँचों महाभूतों को जीत लेता है। अर्थात् इन पर पूरा वशीकार कर लेता है यथा गौ स्ववत्स के अनुकूल होती है। उसी प्रकार पाँचों महाभूतों की पाँचों प्रकृतियां योगी के अनुकूल हो जाती हैं। ये ही पञ्चमहाभूतों की अवस्थायें हैं। इनमें संयम से भूतों पर जय प्राप्त होती है पाँचों पर विजय होने पर यह पञ्च महाभूत विजय है।

ततोऽणिमादिप्रादुर्भाव:
कायसम्पद्धर्मानभिघातश्च।।४५।।

(सू० ४५ पाद ३ विभूति)

सूत्रार्थ—भूत जय के बाद अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। भूतों एवं भूत धर्मों से बाधा (रुकावट) नहीं होती है कायसम्पत् प्राप्त होती है।

व्याख्या—पञ्चभूतों का वशीकार होने पर योग की अष्ट–सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। उनके नाम तथा लक्षण ये हैं कि—

(१) अणिमा— अणु के समान अपना आकार बना लेना।
(२) लघीमा— शरीर को अति हलका कर लेना जिससे काँटों कीचड़ पर भी चलने से उनका असर न होना।
(३) महिमा— महान बड़ा शरीराकार कर लेना।
(४) प्राप्ति— स्वेच्छा अनुसार पदार्थ प्राप्त कर लेना यथा पृथ्वी पर पर बैठे–२ सूर्य चन्द्रादि का स्पर्श कर लेना इत्यादिवत्।
(५) प्राकाम्य—बिना रोक टोक पाँच भौतिक सम्बन्धी पदार्थों की इच्छामात्र से पूर्ति हो जाना इत्यादिवत्।

(६) वशित्व–पञ्चभूत और तज्जन्य पदार्थों पर वशीकार हो जाना, यह भूतों के सूक्ष्मरूप में संयम करने से होती है।

(७) ईशित्व–पञ्चभूतों के एवं भौतिक पदार्थों के उत्पन्न तथा विनाश करने की शक्ति हो जाना है।

(८) यत्र कामावसायित्व–योगी को संकल्प के अनुसार ही भूतों के स्वभाव का अवस्थापन हो जाना है।

पञ्चभूत योगी के कार्य इच्छा में बाधा नहीं कर सकते यथा पृथ्वी की कठोर पत्थर शिला में अयस्कूट आदि में भी यदि प्रविष्ट होना चाहे तो हो सकता है और उस पर प्रस्तरों की वृष्टि का भी आघात नहीं हो सकता एवं जल उसको गला नहीं सकता वह्नि जला नहीं सकता, वायु उड़ा नहीं सकता। यह सिद्धियां पञ्चभूतों की पाँचों अवस्थाओं में संयम करने से और संयम का साक्षात्कार करने पर ही होती हैं। कायसम्पद् दर्शन–

रूपलावण्यबलबज्रसंहननत्वानि कायसम्पत्।

(विभूति पा० ३ सू० ४६)

सूत्रार्थ–रूप लावण्य बल तथा बज्र के समान दृढ़ काय की सम्पत् है।

व्याख्या–शरीर की बनावट और चेहरा अति सुन्दर होना रूप है। शरीर में कान्ति लावण्य है। शरीर से बलिष्ठ होना बल है और शरीर बज्रसमदृढ़ होना पुष्ट होना यही काय सम्पत् है एवं गुरु गोरक्षनाथ जी ने कहा है कि–

खाद्यते न च कालेन बाध्यते न च कर्मणा।
साध्यते न च केनापि योगी युक्तः समाधिना।।

अत्र समाधि की जगह कहीं योगियोगविधानत: यह पाठ भी है। इसका अर्थ होगा कि पूर्णयोग विधि को जानने करने में समर्थ योगी उक्त काल कर्म आदि किसी भी प्राणी अस्त्र–शस्त्रों से वशवर्ती व दण्डित नहीं हो सकता। अन्य पाठ में समाधिस्थ योगी को उक्त कालकर्म आदि प्रभावित नहीं कर सकते अर्थात् कायसम्पत् योगी यथेच्छ भाव से रह सकता है।

कायसम्पत् योगी का यथेच्छभाव से रहना

उक्त (महामत्स्या) ने ब्राह्मण बाल को ग्रास तो कर लिया था। किन्तु महादु:खों से व्याकुल हुआ पश्चात्ताप कर रहा है कि मैंने क्या ग्रसा प्रत्युत मुझे ही किसी महामत्स्य के भी महामत्स्य ने ग्रस लिया है। हे भवमोचन! भक्तों के दु:खहारक हर! आशुतोष भगवन्! मुझ दीन भक्ति हीन पर कृपा करो, यद्यपि मैं अयोग्य हूं तो भी आप सरल (भोले) शङ्कर होने के कारण से ही अजानपने से ही मुझ पर कृपा कर दो जिससे मैं इस महा दु:ख से मुक्ति पाऊँ।

भवानी की अत्युत्कट प्रेरणा से अमर कथा सुनाने की तैयारी

जो अनेक देवी देवों महासिद्ध योगियों से अनेक ऋषि महर्षियों से यक्षराक्षस किन्नरनरों से सेवित सरजतनिखिल निध्यालय सर्वदा हिमाच्छन्न सर्व नदीनद निर्झरों का जनक पर्वतराजधिराज बज्रमणि नीलमहेमादिमणियों अनेक महौषधियों के आगार कैलास नामक हिमालय के कटिदेश में भवानी सहित सर्वाध्यक्ष शिव आये और अद्यतन जो अमर नाथ की गुहा नाम से प्रसिद्ध है उसमें उन्होंने प्रवेश किया तथा यथायोग्य

स्थान का निरीक्षण करने लगे और सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करा दोनों हाथों से ताली बजाकर निर्विहंगम कर अन्य प्राणियों से भी स्थान विहीन कर दिया अब भवानी जी ने गुहा में भगवान का ऊनी वस्त्र का आसन लगाकर उसके ऊपर बागम्बर बिछा दिया और अपना आसन पश्चिम की ओर लगाकर पूर्व की ओर मुख कर विराजमान हो गयी भगवान शिव पश्चिम की ओर अभिमुख हो विराजमान हो गये। ॐ जय सच्चिदानन्द स्वात्म शब्द का उच्चारण कर भगवान ने अमरकथा सुनानी प्रारम्भ कर दी तो कुछ समय अमरकथा श्रवण करती हुई भवानी महायोगनिद्रा में लयलीन हो गयी। उधर महामत्स्या ने जिस देवात्मा ब्राह्मण शिशु को ग्रास कर रखा था उस महामत्स्या के पेट में असह्य वेदना हो रही थी इस भयंकर दुःख के वशवर्ती हो एकाग्रचित्त से पुकारा कि भो शम्भो! भो शंकर प्रभो!! मेरी रक्षा करो! मुझे त्राण करो! आपसे भिन्न मुझे इस विपत्ति से मोचक कोई नहीं है। हे महेश्वर! मुझे इस महामत्स्या के ग्रास से मुक्त करो मेरे प्राण मुझे दान दे दो! मैंने यह क्या ग्रसा प्रत्युत इस महाग्रास के महाग्रास ने मुझे ग्रस लिया। हे आशुतोष! मुझे इससे मुक्त करो! तथा देवात्मा ब्राह्मण शिशु की आत्मा की भी खींच थी। इसीलिये मत्स्य को भी भयंकर दुःख हो रहा था, कथा करते हुए भगवान शिव ने जाना कि उमा भी सो गयी है उधर भी अत्यातुरनाद से पुकार रहा है। भवानी को निद्रा से उद्बुद्ध कर (जगाकर) शिव बोले कि हे उमे! तुम सो गयी उधर मेरे भक्त मत्स्यराज तथा ब्राह्मण बालक दोनों ही एक दूसरे से मुक्त होना चाह रहे हैं। जिनमें से ब्राह्मण कुमार को मुक्त करना विशेष मेरा ही कार्य है। तुम भी पूरी कथा सुन नहीं पाई हो अब उक्त दोनों को एक दूसरे से मुक्त करके पुनः शेष कथा का सुनावेंगे। भवानी जी भी शंकर जी

के साथ उक्त झील के तट पर ही आ गयी शंकर जी ने उस दुःखी मत्स्या को प्रेरकर अपनी ओर के तट के साथ ले आये। उधर विष्णु जी से दिये वचन और ब्राह्मण बालक का जन्म तथा महाझील में उसका प्रक्षेप हो चुका है और महामत्स्या ने उस देवरूप शिशु को ग्रस लिया है और वह महामत्स्या भी बारम्बार दुःखातुर हुआ महती प्रार्थनायें कर रहा है यह सब कुछ भगवान आदिनाथ शिव के ध्यान में और इन सबको पूरा करना विचार में था। वह भी समझ रहे थे कि यह अमर कथा भवानी को पुनः सुनानी होगी और अब शंकर जी ने देखा कि जो उस ब्राह्मण बालक के उक्त तीनों सम्बन्धियों की प्रार्थना पर और एक महूर्त पर्यन्त प्रतीक्षण करने पर जो मैंने आकाश वाणी द्वारा जलाशय में फैंकने को कहा था अर्थात् ज्योतिष से तथा स्वप्न में बोधित के अनुसार करने को कहा था वे वैसे ही करके चले गये हैं।

भवानी सहित शंकर जी का शेषनाग झील पर जाना और महामत्स्या से ग्रसित शिशु को पेट और झील से बाहर निकालना

शंकर जी जगदम्बे! शीघ्र तैयार हो जाओ यहां से कुछ दूर शेषनाग नाम की झील है उस पर जाना है। वहां एक मगरमच्छ ने एक ब्राह्मण शिशु को निगल रखा है। उसे उसके पेट तथा झील से बाहर निकालना है जो वह विशेषकर मेरा कार्य है और पुनः आपकी कथा के विषय में वह कार्य करके सोचेंगे। इसके बाद स्वस्व संकल्प से शेषनाग झील के दक्षिण पश्चिमी तट पर जा विराजमान हुए। शिव आदिनाथ ने

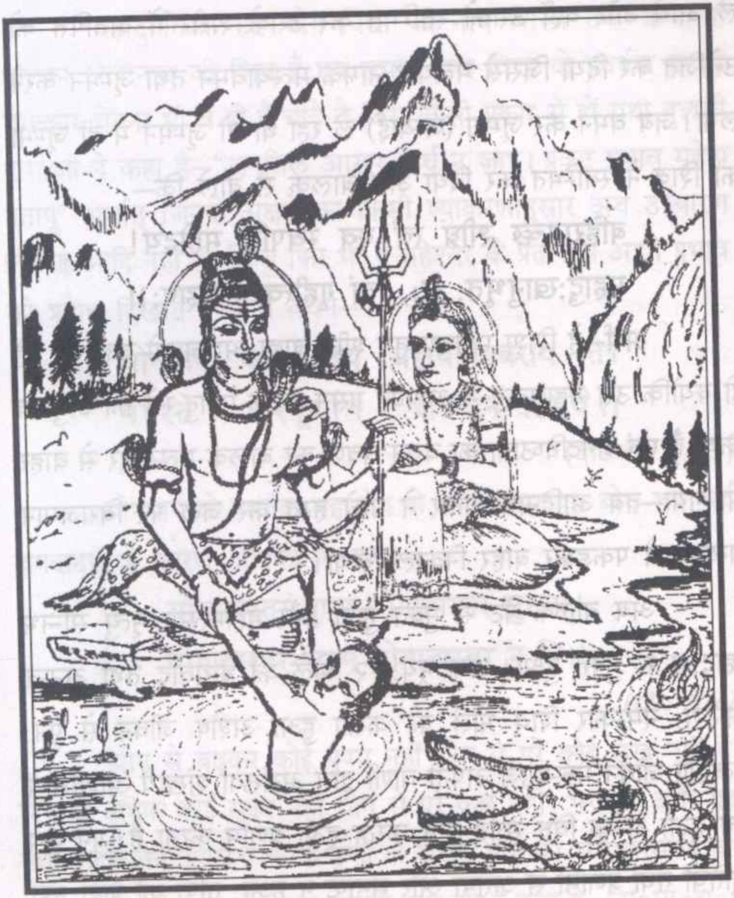

भगवान सदाशिव द्वारा शिशु मत्स्येन्द्रनाथ जी को
मत्स्य मुख और झील से निकालना

अपने संकल्प से प्रेरित करके अपनी ओर के तट के साथ महामत्स्य को ले आये और वहीं उसको स्तम्भित कर उसके शरीर में वातपित्त को उत्तेजित कर दिया जिससे मत्स्येन्द्र नामक मत्स्यावमन तथा जृम्भन करने लगा। जब वमन कर जृम्भा (जम्बाई) ले रहा था तो जृम्भन में ही जृम्भा को शिव ने स्तम्भित कर दिया और बालक से बोले कि–

बहिरागच्छ शीघ्रं त्वं क्व स्वपसि महोदय!
महादुःखानुभूतः सः, त्वां गृहीत्वा महाझषः।।

अर्थ–हे शिशु महोदय तुम शीघ्र बाहर आ जाओ कहाँ सो रहे हो क्योंकि उस महामत्स्य ने आपको ग्रसन करके महादुःखों का अनुभव किया है एवं जगदधिष्ठाता का वचन श्रवण कर बालक मत्स्योदर से बाहर आ गया–तब आदिनाथ शंकर ने नीचे हस्त कर जल पर विराजमान बालक को पकड़कर बाहर निकाल लिया।

अब बालक पेट से मुक्त हुआ और महामत्स्या मृत्यु सन्निभ महादुःख से मुक्त हुआ। अब भूयः–२ भोले को धन्यवाद तथा अनन्त कोटिशः नमस्कार शिव भोले को करता हुआ अशेष जीवन से पुनः लब्धशेष जीवन मत्स्यराज अपनी वाणी द्वारा असंख्या शंखायें आशीसायें देता हुआ अनेक विध स्तुति पाठ करता हुआ प्रणाम करता है। पुनःपुन्य स्तुतियों तथा प्रणामों से अतृप्त और सन्तुष्ट न हुआ, तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहा था। अपने को शंकर जी का कृतज्ञ जान तथा शेष जीवनदाता मानता हुआ पुनः प्रणाम करता हुआ अगाध सलील की ओर निवर्तमान हो गया।

महायोगेश्वर भगवान आदिनाथ शिव

महादुर्गात्मक हठ योग विद्या की नीव शिला तथा प्राणात्मा भगवान आदिनाथ जी शिव हैं एवं समस्त मन्त्र विद्या के प्रवर्तक उनकी चमत्कार चेतना भी वे ही हैं चाहे वे जिस किसी प्रकार से हों यथा तुलसी दास जी ने कहा है—"अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रकट प्रभाव महेश प्रतापू" अर्थात् जिनके अक्षरों का किसी व्याकरणानुसार अर्थ उच्चारण क्रमवार आदि नहीं हैं। किन्तु फिर भी वे महेश्वर के प्रताप से अपने प्रभाव को प्रत्यक्ष दिखाते हैं। उमा वचन—

योगमार्ग कृतं तुभ्यं महायोगेश्वराय ते।
नमस्ते परिपूर्णाय जगदानन्दहेतवे।।

(यो०वी० १—३)

योगमार्ग के प्रवर्तक महायोग के स्वामी अखण्ड बोध रूप सर्व जगदानद के कारण आपको नमस्कार—

योगात्परतरं पुण्यं योगात्परतरं सुखम्।
योगात्परतरं सूक्ष्मं योगात्परतरं न हि।।

(यो० बी०)

योग से बढ़कर कोई पुण्य नहीं योग से परे कोई सुख नहीं है। योग से अधिक कोई सूक्ष्म नहीं योग से परे कुछ नहीं। भगवान आदिनाथ तथा शक्ति की उपासना करके उन्हों के दर्शित मार्ग का सम्यगनुसरण कर साधक स्द्धि हो जाता है। यथा तुलसी दास जी ने कहा है—"रा०मा०च०"

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां
विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।

अर्थात्—मैं (तुलसीदास) श्रद्धा विश्वास रूपी भवानी शंकर को नमस्कार कर्ता हूँ। जिसके बिना समाधिस्थ सिद्ध (महायोगीश्वर) और कुछ नहीं देखते अर्थात् इनको ही देखते हैं।

महायोगविद्या की आत्मा श्री आदिनाथ मत्स्येन्द्रनाथ गुरु गोरक्षनाथ ज्वालेन्द्रनाथ जी तथा इन्हों की शिष्य परम्परा महासिद्ध योगीश्वर हैं।

एवं—

आयुर्वेदिक रसेन्द्र रासायण विद्या योगज्ञान के भी प्राणात्मा पूर्वोक्त आचार्य ही हैं। चाहे वह रस—रसायण ज्ञान किस प्रकार से हो उसका उद्गम स्त्रोत नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धित परम्परा का ही प्रसाद लोकार्थ है। यह प्रसाद अति दीर्घकाल से साध्य असाध्य रोगों द्वारा पीड़ित प्राणियों के रोगों के कर्तनार्थ महान्तक विद्युत आरा है एवं विधिवत् निश्पादन करके सेवन करने वालों के लिये अमृतार्णव है। यह करुगा देन संसार दुःख दावानल में दग्ध हो रहे के मोचनार्थ भगवान अदिनाथ गोरक्षनाथ आदिनाथ सिद्धों की है।

भगवान् आदिनाथ द्वारा भवानी के प्रति नाथमार्ग की विशेषता का वर्णन तथा महाज्ञान का प्रचार

[१]अथ भक्तानुरक्तोऽहं वक्ष्ये योगानुशासनम्।

हे शिवे? स्वभक्तों में आसक्त चित्त हुआ, इनके कल्याण के लिये मैं योगानुशासन को कहता हूँ।

१—शिव संहिता १—२।

[1]बद्धा येन विमुच्यन्ते नाथमार्गमतः परम्।
नाना मार्गेस्तु दुष्प्राप्यं कैवल्यं परमं पदम्।।१।।
सिद्धमार्गण लभ्भते नान्यथा शिवभाषितम्।।

शिव–हे प्रिये! भवताप से सन्तप्त जीव जिस नाथ मार्ग द्वारा मुक्त होते हैं उस परमोत्तम मार्ग को मैं कहता हूँ।

अन्य जो विविध (वाग् जालमात्र) पथ प्रदर्शित किये है उन्हों के द्वारा कैवल्य परम पद दुष्प्राप्य ही है। वह कैवल्य सिद्ध मार्ग से ही अनायास प्राप्त होता है क्योंकि शंकर का कहा कभी व्यर्थ नहीं हुआ।

[2]विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये!

बिना योग के देवताओं को मोक्ष अलभ्य है (उक्त ग्रन्थों में भगवान आदिनाथ जी ने विशेष योग का प्रकाश किया है। अतिरिक्त (शिवस्वरोदयादि) ग्रन्थों में भी योग सम्बन्धित बहुत कुछ कहा है। इनकी विशेष जानकारी के लिये टिप्पणी में दिये ग्रन्थ देखो?

शंकर और भवानी का मत्स्येन्द्ररूप जातशिशु पर स्वत्व दिखाना

शंकर जी–हे शिवे! यथा मेरे और आप में कोई भेदभाव नहीं हैं। हम दोनों भिन्न होते हुए भी वास्तव में अभिन्न ही हैं चन्द्र चन्द्रिका वत् एवं यह शिशु मेरी प्रेरणा होने से मेरी ही कृपा का प्रसाद सुभद्र कल्याणी से जायमान हम दोनों का अति प्रिय है तथा प्रियकर होगा अतएव इससे कोई भेदभाव नहीं करना। अब उमे! आप कहो कि कहा

१–योग बीज ७/८
२–योग बीज ३२

तक आपने अमरकथा रूपी अमृत का श्रवणरूपी पुटों से ठीक प्रकार से पान किया है और जो शेष रह रहा हो उसे मैं आपको अब कहता हूँ। तब उमा—हे करुणामय जगदीश!! यदि यह बालक आपकी कृपा का प्रसाद ही है तो तब आपका और मेरा भी पुत्र ही है। इसलिये इस बालक तथा मेरे पर पूर्ण कृपा कर पुनः अमर विद्या को तथैव अमर कथा को पुनः सांगोपांग पूर्ण रूप से ही कहो। तब परमकारुणिक शिव ने कहा वैसे ही हो जावेगा। पुनः शंकर भगवान ने भवानी मां पुत्र दोनों को अमरनाथ गुहा में ले जाकर पूर्ववत् आसन बिछाकर विराजमान होकर बालक को भवानी ने अपनी गोद में बैठा लिया और शंकर ने दोनों भवानी तथा बालक को श्रवणार्थ अमरविद्या सुनने के लिये सावधान कर दिया । पुनः विधिपूर्वक सुनानी प्रारम्भ कर दी। उमा ने सबालक विधिवत् पूर्णरूप से पुनः श्रवण कर ली और बालक सहित अजरामरता उमा मां ने प्राप्त की। इसके बाद मां उमा ने प्रथम बालक को शंकर चरणार्विन्दों में नमस्कार कराया और आप भी किया तथा पुनः करुणामय शिव ने आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों अमर हो गये हो। अब जो उक्त विघ्न से शेष जो कथा तथा कर्तव्य रह रहा था उसको शंकर आदिनाथ भगवान ने अब सम्यक् पूरा कर दिया।

तं कल्पयामास सुतं शुभांगं
सोत्संग आस्थाय चुचुम्बवक्त्रम्।
सुतो ममायं किल मत्स्यनाथो
विज्ञाततत्त्वोऽखिलसिद्धनाथः।।

नारद पुराण उत्तर भाग ६८/२५

अर्थ–शंकर जी बोले कि हे उमे! इस शिशु को मैंने स्वपुत्र मान लिया है। यह अति सुन्दर अंग प्रत्यंग बालक महाज्ञान के तत्व को सम्यक् जानकर सुन्दर कान्तियुक्त प्रसन्न वदन सिद्धनाथ हो गया है। ऐसा कहकर शंकर जी ने शिशु को उत्संग (क्रोड) में लेकर उसके वक्त्र को अपने वक्त्र से चुम्बन किया तथा प्रसन्न हुए और मत्स्या उदर से मुक्त बालक मत्स्य के निगलने से यथापूर्व था वैसा ही रहा परम स्वच्छ निर्व्रणी सर्वांगोपांग सुडौल पुष्टवपु वाला ही रहा और श्री शंकर जगदम्बा के परम प्रिय भक्त उदारचेता परम सुन्दर था शिवशिवा को षडानन गजाननों से अधिक प्रिय था क्योंकि उनके योगमार्ग महान कायार्थ उस बालक के सहायक होने की आशा थी इसी कारण उक्त दोनों से अधिक प्रिय था। हे जगदम्बे यह भी गजमुण्ड की तरह दो माताओं वाला ही है। अत: द्वैमातुर है क्योंकि इस बालक ने जिस मत्स्या के जठर में इतना काल वास किया है वह स्त्री जाति का था। अत: इसका उक्त नाम भी होगा। इसके द्वैमातुर, मत्स्येन्द्र ये दो नाम तो इसके जन्मसिद्ध हैं। साथ नाथ शब्द जोड़ने से नाथमार्ग में प्रवेश हो जाता है और यज्ञोपवीत डालकर नित्यनाथ यह हमने नामकरण किया है। क्योंकि नाथ सम्प्रदाय में प्रविष्ट होने से नाथ यह नाम अवश्य लगता है। सिद्ध यह नाम इसका जन्म से ही अमरविद्या के श्रवण से सिद्ध है। इसलिये सिद्धनाथ भी इसका मत्स्येन्द्रनाथ वत् नाम् प्रसिद्ध है। हे जगदम्बे! आप भी महासिद्ध पूर्णयोगेश्वर ब्रह्मज्ञानी होने का अनुकम्पा रूपी आशीर्वाद देकर के अनुकम्पित करो! एवं महेश्वर की आज्ञा पाकर भवानी ने आर्शीवाद देना कि–

शुद्धजीवी ब्रह्मज्ञानी प्रलोकानुग्रहकारकः।
पूर्णयोगी महासिद्धो भवताद्भवनन्दन।।१।।

अर्थ–हे भवनन्दन! शुद्ध जीवन जीने वाले हो, ब्रह्मज्ञानी हो प्र=प्रकर्षार्थक है। उत्तम लोगों तथा लोकार्थो की कृपा करने वाले हो। महासिद्ध होवो एवं आर्शीवाद देकर भव भवानी दोनों ने बारी–२ भुजपञ्जरों में लेकर अपने–२ वक्षों में लगा कर आलिंगन तथा चुम्बन कर परमानन्द में मग्न हुए। अब शंकर जी ने सोचा कि गुरुमन्त्र से समयापेक्षित होने से दीक्षित कर देवें। तब शम्भु ने स्वक्रोड में (अपनी गोद) बैठा करके दक्षिण कर्ण में प्रणवादि गुरुमन्त्र सुनाकर फूत्कार किया एवं तीन बार सुनाकर फूत्कार कर आदिनाथ जी बोले कि हे पुत्र मीननाथ! क्या तुमने मंत्र श्रवण किया और जाना भी है! बालक मीननाथ ओ३म् (हां जी) जाना भी है। अब गुरुमन्त्र श्रवण के बाद मत्स्येन्द्रनाथ के शरीर में रूप लावण्य बल बज्रत्व की वृद्धि होने लगी। कुछ वर्षों के बाद जब भव भवानी की छत्रछाया में जब शिशु कुछ बड़ा हुआ तब शिशु अपने को भव भवानी की अशेष कृपा का प्रसाद जानकर दोनों करयुतों से स्तुति करने लगा कि–

अचितश्च चित्करोसि त्वं चैतन्यस्य जढ़ं क्षमः।
वन्दे त्वां सच्चिदानन्दं निराकारं सकारकम्।।१।।
योऽभाव्यः कुरुते भावीं विपरीतं तथैव च।
वन्दे त्वां सत्सदानन्दं भूयो भूयस्परात्परम्।।२।।

अर्थ–हे प्रभु आप जड़ को चैतन्य कर सकते हो और चैतन्य को जड़ कर सकते हो। ईदृश आप निराकार तथा साकार सच्चिदानन्द

स्वरूप शिव की मैं वन्दना करता हूँ। हे परमेश्वर! जो आप अभावी को भावी और भावी को अभावी करने में समर्थ हो ईदृश आप सत्य सदानन्द की मैं वन्दना करता हूँ जो आप पर से पर तत्त्व हो। उक्त दोनों श्लोकों में कहे चारों कार्य बिना ईश्वर और किसी शक्ति के वश के नहीं हैं।

चिदानन्दैकरूपं त्वामोङ्कारं महन्नामकम्।
पाणीबद्ध्वा भवं वन्दे सर्वतो विश्वरूपकम्।।१।।
बुद्धं पूर्णात्परं पूर्णं शिवानन्दैकरूपकम्।
यस्मान्नास्ति परं किञ्चिद्भू तन्न च भविष्यति।।२।।

अर्थ–चिदानन्द ही एकरूप है जिसका सब ओर से विश्व स्वरूप वाले और ओ३म् कार आदि महान नामों वाले तुम भव परमेश्वर को दोनों हाथों को बांधकर मैं मत्स्येन्द्रनाथ प्रणाम करता हूँ और कल्याण आनन्द ही एक (सिरफ) रूप वाले परिपूर्ण प्रभु से परिपूर्ण परमानन्द ही को जाना अर्थात् आप परिपूर्ण शिव से परमसदाशिव सच्चिदानन्द स्वरूप को जाना। जिससे परे (बढ़कर या उसके समान) न हुआ, न है, न होगा। ऐसे सच्चिदानन्द स्वरूप परमशिव को मैं मत्स्येन्द्रनाथ प्रणाम करता हूँ दोनों हाथों से आदेश नमस्कार करता हूँ।

वन्देऽहं मूलभूतोमां सर्वशक्तिस्वरूपिणीम्।
यां विना न शक्तौ ब्रह्मशिवौ कर्तुन्न किञ्चन।।

मैं मत्स्येन्द्रनाथ उस सर्वशक्तियों के स्वरूप वाली तथा सर्व शक्तियों की मूलरूपा जो उमा उसको प्रणाम करता हूँ। जिसके बिना ब्रह्म और शिव भी कुछ करने के लिये समर्थ नहीं हैं। पुन: भूमि पर दण्डवत् होकर भव भवानी को सर्वाङ्ग दण्डवत् किया।

शंकर जी ने बालक नित्यनाथ से उसके भूतपूर्व जन्म का समाचार पूछा

शंकर जी—ने इस विचार से बालक से पूछा कि जो मेरे भक्त बृद्धर्षि रवि उषा ब्राह्मण दम्पति ने इस विष्णु अंशरूपी बालक के कुकृत्य द्वारा शोकसन्ताप से अति क्रुद्ध हो शापित किया था तथा नारद ने जो मोह अज्ञान होने से जो शाप दिया था उन्हों का प्रभाव कुछ हल्का हुआ है या नहीं। इस विचार से श्री शङ्कर जी ने पूछा कि शिशु आपको कुछ भूतपूर्व के एक आध जन्म का स्मरण हो रहा है या नहीं? बालक—ओ३म् (हाँ जी) हो रहा है। शङ्कर—कहो फिर? बालक—आपके भक्त वृद्धर्षि रवि उषा ब्राह्मण दम्पति ने महाप्रलयानल के सदृश कुपित होकर मुझे भस्मात् करने के तुल्य कर दिया था। जिस शाप के स्मरण होते ही मेरे रोमाञ्च हो आते हैं। यह शाप तथा नारद का शाप दोनों ही महाभयङ्कर थे किन्तु ब्राह्मण दम्पति का तो साक्षान्महादावानल ही था यथा कि ब्रह्माण्ड को ही दग्ध कर देने वाला हो एवं प्रतीत होता था।

बालक का भूतपूर्व जन्म का अपना वृत्तान्त बताना

सत्ययुग मध्य के पूर्व काल में यहाँ नृपेन्द्रवीर समस्त आर्यवर्त्त का राजा राज्य करता था। अजेया इसकी राजधानी थी। विमल जया धर्मधुरा धर्मपत्नी थी। ये सब धर्मात्मा और विष्णु भक्त थे। इनकी भक्ति की चाहना विष्णु जी को पुत्रकाम रूप में थी। इसी आशा को बान्धे उक्त राजा रानी ने अनेकों यज्ञ तथा पुत्रेष्टि यज्ञ भी उक्त भावना से किये और विविध भजन जप तप किये तो अनेक वर्षों के बाद विष्णु जी जब

कृपार्द्रित हुए तो उन्होंने विमलजया के गर्भ में वास कर समय आने पर नृपेन्द्रवीर के घर जन्म लिया तो राजा ने बड़ी धूमधाम से उत्सव कराये तथा दानादि ब्राह्मणों तथा यतीमों को दिये और विधि पूर्वक विचार कराकर राजा ने शिशु का अरिंदम नाम रखा। २० वर्ष की आयु में पूर्ण विद्वान प्रवीण हो गया था। बाद में पच्चीस वर्ष पर्यन्त धनुर्विद्या में शाम दाम राजनीति आदि का भी मर्मज्ञ हो गया था। मैं अश्वसवारी धनुर्विद्या तथा मृगया करने में अधिक प्रेम तथा ध्यान देता था। तीस वर्ष की आयु में महाराजा ने मेरी गान्धारराज रणवीर की कन्या ज्योतिर्मती से शादी कर दी।

अरिंदम का मृगया करने जाना

एक दिन मैं मन्त्री आदि प्रधान राजपुरुषों के पुत्र सपाठी छात्रों को साथ लेकर वन में चला गया उसी वन में एक सोम नाम का ब्राह्मण कुमार कुछ अपने साथी लड़कों को साथ लेकर हमारे से पूर्व ही वे लड़के इधर उधर इन्धन खोज रहे थे जो कि हमारे ध्यान में न थे। किन्तु इतने में एक मृग हमारे से पूर्व की ओर दृग्गोचर हुआ और वह भी हमारे को देखकर ओट लेने की ओर यत्नवान था। किन्तु इतने में मैंने उस पर बाण छोड़ दिया किन्तु वह तो शेषप्राण होने के कारण आगे निकल गया और झाड़ की ओट में खड़े सोम लड़के की छाती को चीर करके पार निकल गया तो सोम तत्काल धराशायी हो गया। इतने में उसके साथी लड़कों ने कोलाहल (शोर) मचा दिया और इनमें से कोई उसके वृद्ध माता पिता को सूचित करने चला गया और कई किसी गड्ढे में से जल

लाकर उसके मुख में डाल रहे थे। इतने में जिन्होंने अनेक वर्षों तक शिव की भक्ति करके यह सोम नामक पुत्र प्राप्त किया था। वे शिव भक्त वृद्धर्षि रवि उषा ब्राह्मण दम्पति सूचित होते ही तत्काल वहां पहुँचे जहाँ मृत सोम था। उसे देखकर मारे शोक के दोनों गुम हो गये किन्तु हम सब उसके माता पिता के आने से पूर्व ही सोम के पास जा पहुँचे थे। जब हमने भी देखा तो हमें भी बहुत दु:ख हुआ किन्तु अब कर क्या सकते थे। जब उस वृद्ध तपस्वी दम्पति को ज्ञात संज्ञा हुई तो उन्होंने अपने एकलौते अपने प्राणरूप सोम की याद आई विह्वल हुए पुत्र सोम–२ कर पुकारते हैं किन्तु सोम होये तो बोले। बोले कौन! इतने में जो लड़के सोम के साथी थे उन्हों में से उन्मत्त हुए शोक से उसके माता पिता को किसी ने कहा कि सोम मर गया है। वृद्ध दम्पति अरे कैसे मरा? लड़के तीर से इसने मारा। दम्पति–अरे क्यों रे दुष्ट? ऐसे कहकर।

वृद्धर्षि दम्पति से अरिंदम को शापित होना

अन्धे बहरे की सी दशा में हो महाशोकार्णव (शोक समुद्र) में संमज्जित हो गये अर्थात् डूब गये। पुन: कुछ देर में जब लब्धसंज्ञा हुए तो लड़कों को फिर पूछा तो लड़कों ने अरिंदम की ओर हाथ कर कहा कि इस धनुषधारी ने मारा है। तब अपने मरुत सखा के साथ दावानल इन्दनादि भक्ष्य भोज्य के प्राप्त होने पर यथा बलवान हो धावती है। ठीक वैसे ही उस वृद्ध दम्पति के क्रोधानल को शोकरूपी भक्ष्य भोक्ष्य के उपलब्ध होने पर उनके असहायक रूपी सखा के साथ मुझे लपेट में लेकर शापरूप अनल भस्मसात् करने को मेरे पर टूटा। शिव भक्त वृद्धर्षि रवि उषा ब्राह्मण दम्पति बोले कि अरे निर्दयी दुष्ट! तुमने यथा हम वृद्ध

दम्पति असहायों को महादुःख शोक अज्ञानान्धकार में फैंका है। इसी प्रकार तुम और तेरे माता पिता भी तेरे दूसरे जन्म में तुम एकलौते के वियोग में फंसेगे। जिस प्रकार तुमने हमारे से पुत्र का वियोग कराया है और पुत्र से हमारा कराया है। ठीक इसी प्रकार अग्रिम जन्म के प्रारम्भ में यह कार्य शापरूपी तुम पर लागू हो जावेगा। तुम चाहे कितनी भी महती शक्ति हो किन्तु इस शाप से बिना दण्ड भोगे बरी नहीं होंगे। अवश्य तेरे माता पिता से तेरा और तेरे से तेरे माता पिता का वियोग होकर रहेगा और इसी प्रकार तुम सब मोह अज्ञानान्धकार में फंसोगे।

अरिंदम को शाप भय से शरीर में वेपथु

अब वृद्धर्षि ब्राह्मण दम्पति से अरिंदम ने क्षमा प्रार्थना करना और उनके चरणों पर पड़ कर अपने से न जानकर हुए दोष रूप कार्य की क्षमा याचना करने लगा कि हे ब्राह्मण दम्पति देव! यह जो कुछ भी हुआ है यह विवशता से हुआ मैंने जानकर के नहीं किया। अतः मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। मुझ पर कृपा करो क्योंकि आप विप्रदम्पति क्षमा दान योग्य हो तब दम्पति कुछ विनम्र हुए। विनयभाव दिखाने से तो बोले कि, अरे यह सर्वथा निर्मूल नहीं होगा। यदि तुम शंकर जी का भजन पूजन विधिपूर्वक सप्रेम करोगे तो वही न्यूनता भी लाने में समर्थ हो सकेंगे। अरिंदम ने दम्पति को कहा मैं आपकी कृपा से आज से ही शंकर भक्ति में व्यस्त हो जाता हूँ। तभी से अरिंदम शिव पूजन में सन्नद्ध हो गया तथा प्रतिदिन शिव भगवान से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! यदि मेरा शाप सर्वथा निर्मूल नहीं हो सकता तो इसको न्यूनतम कर दो क्योंकि आप सर्वसमर्थ हो। तब ब्राह्मण दम्पति अपन

अजेया नगर को शोकातुर होते हुए चले गये। बहुत दिन जब शिव भक्ति में व्यतीत हो गये तो एक दिन रात्रि को अरिंदम को स्वप्न आया कि कोई कह रहा था कि मेरे विधान में दण्डनीय के दण्ड का सर्वथा (निर्मूलन) नहीं होगा क्योंकि यह महादण्ड है। किन्तु तुम अकाल मृत्यु से ग्रसित होकर पुनः प्रत्यावर्तित हो जावोगे और वियोग जैसा का तैसा ही रहेगा। तुझसे माता पिता को और माता पिता से तुझको रहेगा क्योंकि महादुःखी वृद्धर्षि रवि उषा दम्पति का शाप है। यह किसी ही अंश में घटेगा न कि सर्वांशों में घटेगा। इसको शाप देने वाले दम्पति भी न्यून नहीं कर सकते। क्योंकि जो बाण निकल गया वह तो निकल ही गया वह पुनः तर्कस में नहीं आवेगा। हे भगवान! यही मेरा भूतपूर्व जन्म का समाचार है।

वर्तमान जन्म शिशु का यही है कि जिसमें मैं वर्तमान हूँ

यद्यपि मैं शिशु हूँ। किन्तु भव–भवानी की कृपा से और आदिनाथ शिव से श्रुत महाज्ञान के प्रभाव से जो शापों के द्वारा विस्मृत ज्ञान पुनः उद्भूत हो गया है। मेरे इस जन्म के माता पिता सुभद्र तथा कल्याणी हैं। इसी जन्म में अति दुःखी वृद्ध ब्राह्मण–ब्राह्मणी के अत्युत्कट शाप का मैं और मेरे माता पिता मृगया बने हैं अर्थात् शिकार बने हैं। हमारे लिये यह भूतपूर्वोक्त शाप ही गण्डमूलां के जन्म का मूल (कारण) बना है। आज हमारे वियोग और विविध दुःख यातनाओं का कारण है। मुझे यदि यह शाप न होता तो मेरा जन्म गण्डमूलां में न होता। यदि गण्डमूलां जन्म न होता तो यह वियोग नहीं होता एवं विविध यातनायें न होती। आपका संयोग ही आपकी कृपा का लाभ है। यह

आपका कृपारूपी संयोग मुझे अकाल मृत्यु के मुख से काल में लाया है। मुझ सहित हमारी अनेकों कुलों का उद्धार करने वाला आपका कृपा रूपी संयोग ही है। यही मेरा वर्तमान जन्म है। इत्थम्–दीर्घकाल परम्परा से निगूढ़ गुरुमन्त्र तुल्य परम्परा से (यथानुश्रुतोपदिष्ट) इतिहास रूप से आ रहा है। जिसको ग्रन्थ रूप में लाना सम्प्रदाय वालों में इतिहास रूप में लाना अनुचित समझा ही चला आ रहा है। अब तक यह उनके प्रतिकूल होकर ही मैं लिख रहा हूँ। अब शिवसंकल्प रूपी यान में बैठकर माता तथा पुत्र दिव्य कैलास में चले गये।

श्री शंकर के संकल्परूपी यान में बैठ दिव्य कैलास में पहुँचे मत्स्येन्द्रनाथ तथा भवानी जी

जिसके दर्शन नरनरेन्द्र किन्नर महेन्द्र यक्षराक्षससुर सिद्धों को तथा योगीश्वरों देवर्षि ऋषियों को भी दुर्लभ है जो सब सुखागार और सर्वसौन्दर्य आपन्न देश कालों का देश कालराज दिव्य कैलास (शिवपुरी) है। जो दिव्य वैकुण्ठादि पुरियों की भी परम मनोहर पुरी शिवपुरी है। इसके बाद षडानन गजानन शिव गणाध्यक्षों वीरभद्र भैरव नदी आदियों के साथ परस्पर अभिवादन करने पर परिचय हुआ। फिर षडानन गजानन दोनों की तथा गणाध्यक्षों की करुणादृष्टियों की वृष्टियों द्वारा आर्द्रित हो समादरित हुआ सबका प्रेमपात्र बना। यथा–

माता च पार्वती देवी पिता देवोमहेश्वर:।
बान्धवा: शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्।।१।।

हम शैवों की माता उमा हैं। पिता शिव हैं। शिव भक्त बन्धुजन हैं अपने देश तथा तीनों भुवनों में, इस उक्ति की बाञ्छापेक्षा से।

बालक दिव्य कैलास में मुद्राओं से संस्कृत होना

यहां दिव्य कैलास में भगवान आदिनाथ शिव ने कर्ण छिन्न करके मुद्राओं से सुसंस्कृत कर दिया मत्स्येन्द्र (मत्स्यराज) के पेट में कुछ समय वास करने से इस बालक का उससे जात (पैदा) होने से इसका नाम मत्स्येन्द्र हुआ और नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से इसका नाम मत्स्येन्द्रनाथ हुआ। क्योंकि इस सम्द्रदाय में नाथ यह उपाधि है। इस प्रकार इस बालक का नाम मत्स्येन्द्रनाथ हुआ। महासिद्धेश्वर के और भी अनेकों ग्रन्थों में इस सिद्धराज के कई नाम हैं और अपभ्रंश नाम भी इसके कई हैं यथा मच्छद्री, मच्छन्द, मच्छन्द्र आदि हैं और उक्त जो आदिनाथ भगवान ने कर्णों में मुद्रा दी हैं। वे हठ योग में दर्शित महामुद्रा आदियों की प्रतीक हैं। मुद्रा और कुण्डल ये दोनों हठयोग में दर्शित कुण्डलिनी शक्ति के प्रतीक हैं तथा इस शक्ति के जागरण करने में भी हो सकता है कि ये सहायक हों, जिसको कुण्डलीनी शक्ति के जागरुक विज्ञ ही जान सकते हैं क्योंकि यहां युक्ति दृष्टान्त की व शुष्कतर्क वाद–विवाद की गति नहीं है। मुद्रा का और भी अर्थ है जो आगे किया जावेगा। सम्यक् प्रकार से देव दम्पति स्वसुत नित्यनाथ का पूरी गौर से पालन पोषण करते हुए सर्व व्याकरणों सहित सांगो पांगवेदों का षड्दर्शनों पाशुपतागमों अन्य विविध सद्ग्रन्थों का अध्ययन सार्थक, बहुत समय तक करवाया और इन सबकी जो जननी महायोगविद्या उसका अष्टांगयोगसहित पूर्ण बोध कराया तथा हठयोग, लययोग, राजयोग,

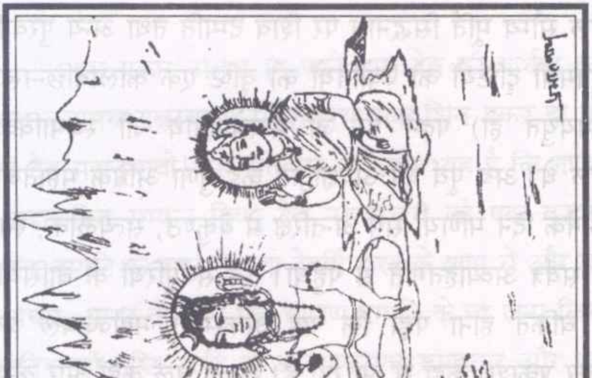

श्री आदिनाथ जी द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ जी को उपदेश

मन्त्रयोग, विज्ञानयोग आदि का अशेषक्रियान्वितों का पूर्ण ज्ञाता होकर महोज्जवल महासिद्ध कायसम्पत् सम्पूर्ण योग युक्त हुआ, शिव शिवा का परमाज्ञा कृपा पात्र हुआ, दिव्य कैलास में वास कर रहा था। एक दिन महोज्जवल सौम्य मूर्ति सिद्धनाथ पर शिव दम्पति तथा अन्य पुरवासियों की करुणामयी दृष्टियों की ज्योतियों की वृष्टि एक कालावछिन्नरूप हो (एक समययुत हो) पढ़ने पर जो मत्स्येन्द्रनाथ जी स्वभाविक ही महोज्जवल थे। अब पूर्व की अपेक्षाकृत कई गुणा अधिक महातेजपुञ्ज प्रकाश अनेक दिन मणियों सम अन्तरिक्ष में बैकुण्ठ, सत्यलोक, स्वर्गादि पुरियों में सर्वत्र अव्याहतगति से पहुँचा। तब सर्वपुरियों के वासियों को आश्चर्य चकित होना पड़ा कि यह अकस्मात् महोज्जवल प्रकाश (महाभयंकर प्रकाश) कहाँ से आ रहा है। इसका मूल कहाँ और कैसा है, कौन है???। यह कौतुक अपूर्व दर्शनीय ही प्रतीत हो रहा था। चलो चलो देखें कि, यह कौन क्या है?? इत्थम् देखने के लिये सब पुरी वासियों के विचार बने अपने–२ विमानों को सुशोभित कर और स्वयं भी सुसज्जित शृङ्गारित हुए। देवदेवांगनाओं के विमानों की पंक्तियां ही द्युलोक में सर्वत्र दृग्गोचार होने लग रही थीं और बहुतों को तो यह प्रकाश एकसा ही प्रतीत हो रहा था और जिसके मूल को अवगत करना ही असम्भव हो रहा था। किन्तु ब्रह्मा, विष्णु इस योजना को समझ गये थे कि हे परमेश्वर? विश्वकल्याणार्थ महायोग विद्या प्रसारार्थ आप ही समर्थ हो। तब ईदृश किसी शक्ति को समुन्नत (बलवान) कर रहे हैं। तब एवं जानकर दोनों देव महादेव को विनम्य मनसा प्रत्यावर्तित हो गये। शेष देवी–देव स्व–स्व अपने–२ विमानों में बैठे–२ प्रार्थना कर रहे हैं कि हे महाप्रकाश के

कारणीभूत परमेश्वर? आप जो भी हो हम सबको अवगत कराओ कि यह किसका प्रकाश है और इतना महान कैसे और क्यों है। यह महाशक्ति सम्पन्न तत्त्व किस कार्य की अध्यक्षता तथा साधनार्थ हो रहा है।

इस प्रकार अज्ञात (न जाने हुए) देव की प्रार्थना करते हुये के समक्ष कृपामय यक्षस्वरूप सर्वशक्त्यात्मक शिव प्रकट हो बोले कि भो देवी देव महानुभावो! इस इतिहास का संक्षेप यह है कि गण्डमूलां नक्षत्र में महाशक्ति सम्पन्न विष्णु देव नररूपधारी को एक वृद्धर्षि रवि उषा ब्राह्मण दम्पति के शाप से तथा देवर्षि नारद के शाप से और महायोगविद्या के प्रचार–प्रसार के लिए एक ब्राह्मण दम्पति के घर जन्म लिया। जिसको ज्योतिष की दृष्टि आदि से अनिष्टकारक समझकर और पूर्व शापों के कारण ऐसा होने से इसको महाहानिकर जान के अगाध जलागार शेषनाग झील में प्रक्षेप कर इसके पितादि चले गये और तत्काल एक महामत्स्यिका राज्ञी ने इसको निगल लिया था। वहाँ इसे मैंने सुरक्षित रखा तथा स्वयं भी समर्थ हैं। वहाँ से बाहर निकालकर मैंने इसे सुदीक्षित शिक्षित कर स्वातिरिक्त (अपने से भिन्न) असदृशी शक्ति सम्पन्न कर दिया। लोककल्याणार्थ महायोग के प्रचार प्रसारार्थ इसमें मैंने कृपादृष्टिपात से अनेक विद्यायें तथा विविध महाशक्तियों का इस विष्णुरूप मत्स्येन्द्रनाथ नाम वाले बालक में संचार किया। जिन्हों के बल तथा तेज से यह महोग्रोज्ज्वल प्रकाशमान हो रहा है यह सब कुछ मेरे द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ में अर्पित बल तेज है वही देव मत्स्येन्द्रनाथ विष्णु जी देदीप्यमान हो रहे हैं। इस महाप्रकाश का प्रसार अन्तरिक्ष में पहुँचने का तात्पर्य यही था कि

आप सबको इस महामहिम महोदय से सम्यक् परिचय हो जावे कि यह महाशक्तिशाली कौन सिद्धेश्वर देव है। यह सब दृश्यमान महाप्रकाश पुञ्ज पुनः इसी मत्स्येन्द्रनाथ देव सिद्धेश्वर में ही विलय हो जाना है यथा सूर्यास्त होने से उसका समस्त किरण पुञ्ज उसी में लय जैसा प्रतीत होता है हे देवि देवो!! सावधान रहना। इस महाबल से अन्य साधारण देवो व देवर्षि ऋषि मुनि महात्माओं की तरह कहीं इससे वाद–विवाद या इसका समीक्षण परीक्षण न करना क्योंकि यदि कहीं कुपित हो गये तो महाभयंकर दावानल वत् यह दग्ध कर देंगे। यह वही शक्तिसम्पन्न हैं जिस शक्ति से हम त्रिदेव ब्रह्माण्ड की अवस्थात्रय करते हैं। इसलिये कहा है कि सावधान! एवं कहकर शिव तिरोहित हो गये और देव देवांगनायें अपने–२ वासस्थानों को चले गये एवं अनेक वर्षों तक शिव सन्निधि से अनेकों विद्याओं को क्रियाविन्त किया। बाद में शंकर जी बोले कि हे प्रियवर मत्स्येन्द्रनाथ सर्वविद्याओं में सिद्ध सिद्धनाथ आप अब अपनी विद्याओं को सफलात्मक करो! यथा कि संसार में विचार कर जिज्ञासु बनाओ और जिज्ञासुओं को शिष्य रूप से अधिकृत कर उन्हीं को विद्या का उपदेश शिक्षण देवो और जो जिज्ञासु नहीं है उसको अपने नाथ, इस नाम के गुणों से प्रभावित करके कहीं आशीष देकर कहीं ऐश्वर्य ताप ताडन आदि से अजिज्ञासुओं को जिज्ञासु निष्पन्न करके शिष्य रूप से पुनः अधिकृत करके नरनारियों का कल्याण करो? महायोग विद्या का तथा नाथसम्प्रदाय का प्रचार–प्रसार करो? ऐसा करने से विद्या सफल होगी एवं लोक कल्याण होगा। जो तुमने अनेक वर्षों से मेरी सन्निधि से अवगमन तथा क्रियान्वित क्रियायें की हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने गुरु भगवान आदिनाथ जी की आज्ञा से मणिप्रदीप्त सप्तश्रृंग गिरिवर के ऊपर जाकर घोर तप तथा योगसाधना का अभ्यास करने के लिये जाना

इसलिये हे सौम्य! किसी भी महान कार्य को सिद्ध करने के लिये तपोबल तथा योगबल का अधिक उपार्जन करना परमावश्यक होता है। अत: तुम एकान्त पवित्र स्थान मणिप्रदीप्त सप्तश्रृंग पर्वतराज पर उक्त बल का संचय करो और इसके बाद महायोगज्ञान का मनुष्य कल्याणार्थ प्रचार–प्रसार करना। मत्स्येन्द्रनाथ जी–हे आदिनाथ गुरो! हमने पूर्व भी आपके चरणार्विन्दों में निवेदन किया था कि यह महान कार्य दुष्कर है मुझ एकाकी के लिए बिना आपकी कृपा और सहायता से होना कठिन है। आदिनाथ जी–हे सौम्य मैंने पूर्व ही यह वचन दिया था कि ऐसा ही होगा और अब भी मैं तुमसे यही कहता हूँ कि मैं अवश्य किसी ना किसी भी रूप द्वारा पूर्ण सहायता करूँगा। किन्तु तुम दर्शितगिरिवर पर जाकर मेरा उक्त निर्देश पूर्ण करो। जब आप तपोबल एवं महायोग का पर्याप्त संचय कर लोगे तो तब प्रचार कार्य में आपको सहायता मिलेगी। इस प्रकार सिद्धनाथ गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करके उक्त बलोपार्जनार्थ स्वसंकल्प बल से उक्त गिरिराज पर जा पहुँचा और प्रथम बारह वर्ष तक घोर तप तपा और बारह वर्ष पर्यन्त योग साधना सिद्ध कर रहे थे तब सतोगुणि सिद्ध योगी–राजाधिराज महाराज मत्स्येन्द्रनाथ जी के तपो–योगबल से शरीर में से दिव्योज्ज्वल धवल वर्ण की शीतकर किरणसमूह नि:सरित

होने लगीं। तब देवराज को सन्देह होने लगा कि मेरे पदार्थ यह घोर तप कर रहे होंगे इसलिये इसका तपोभंग करें। तब इन्द्र ने रम्भा–मेनका नाम वाली दोनों अप्सराओं को कहा कि अपनी–२ पूरी–२ तैयारी करके इस महातपस्वी का अतिशीघ्र जाकर तपोभंग करो। तब दोनों अप्सरायें अपनी–२ पूरी तैयारी के साथ शीतल मन्द सुगन्धादि को लेकर मणिप्रदीप्त गिरिवर पर जा पहुँची। अपने–२ पूरे हाव–भाव से गाने–बजाने करने लगीं। तब महासिद्धराज की दृष्टि इन पर पड़ी।

रम्भा मेनका द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ का तपोभंग करने जाना और प्रार्थना कर बचकर वापिस आना

तब रम्भा मेनका दृष्टिपात ताप से इस प्रकार तिड़–२ करके भूजने लगीं यथा भट्ठी पर रखी कड़ाही में सन्तप्त बालु में अनाज आदि के दाने तिड़–२ करके भूजते हैं। तब मारे दु:ख के तड़फने चिल्लाने लगीं तथा कहने लगीं भो महासिद्धराज! त्राहि–२ भगवन्! आप प्रभो! कृपा कर हमारी रक्षा करें क्योंकि हम तो विवशवर्ती हो करके आईं थीं। अब हम आप ही की शरण में हैं। हमारी अबलाओं की रक्षा करो आप दयालु हो! पुन: मत्स्येन्द्रनाथ जी ने कृपा दृष्टि का पात उन पर किया तो स्वस्थ होकर उनके चरणकमलों पर गिरकर सर्वांगप्रणाम कर गलती की क्षमा मांगने लगीं। यथा दृढ़ लोहे के स्तम्ब पर तेज करवाल=(खड़ग) का वार (प्रहार) मुड़ कर कुण्ठित हो जाता है एवं सुमेरु व हिमालय को उड़ाने के लिये झञ्झावात (तूफान) व्यर्थ हो जाता है। महागजराज को कुपित करने को बब्बूल (कीनाट) के पल्लव (पत्तों) की आघात यथा असमर्थ होती है।

परब्रह्मशिव व (खब्रह्म) की उद्वेगित करने के लिय समस्त चराचरों के उपद्रव व्यर्थ हो जाते हैं एवं रम्भा मेनका के रूप सौन्दर्य चातुर्य के हाव भाव कटाक्ष अस्तविनष्ट हुए देव पुरी को चली गयीं और महासिद्ध ध्रुव की तरह ध्रुव ही रहा। इति द्वितीय पुष्प वीरनाथ द्वारा कृत।

❊ अथ तृतीय पुष्प ❊

ॐ गुरु गोरक्षनाथपरमात्मने नमः

अतिदीर्घकाल से चली आ रही महाप्रलयकाल का जब अन्तकाल आया तो उस महाप्रलयकालाध्यक्ष परमसदाशिव (सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म) में प्रगाढ़ निद्रा तथा मूर्च्छावस्था में पड़े हुए जीवों के कर्मों की जब पाकोन्मुखसन्निधि आई तो उस सर्वाध्यक्ष परम सदाशिव में "एकोऽहं बहुस्याम्" मैं एक बहुत होउँ। ऐसा भाव उसमें उत्पन्न हुआ तब इस भावयुक्त वही परमसदाशिव ही सदाशिव नाम से व्यवहृत हुआ। तब अपनी चिद्रूपा निजादि महाशक्तियों से संयुक्त हो प्रकट हुआ आगे इसी के संकल्प से ब्रह्मादि से लेकर ब्रह्माण्डान्त तक के अनेक साधन तथा साध्य पिण्ड पदार्थ महाशक्तियों की उत्पत्ति हुई। उक्त महाशक्तियों से

युत ही को निगमागम सद्ग्रन्थ आदिनाथ शंकर ब्रह्मा विष्णु आदि नामों से कहते हैं और जब महाशक्ति भवानी को यह गर्व होता है कि मुझ शक्ति बिना शिव एकाकी कुछ भी करने को समर्थ नहीं हैं तथा महायोगविद्या का भी जब–२ ह्रास हो जाता है तो पुन: उसे सम्पूर्णार्थ परमसदाशिव तथा सदाशिव ही मायातीत परम शुद्ध अपने स्वरूप से नामरूपान्तर हुए गुरु गोरक्षनाथ रूप द्वारा महाशक्ति के अभिमान (गर्व) की निवृत्यार्थ तथा निर्बल हुए योग को पुन: सबल करने के लिए इस परमशुद्ध मायातीत को परमसदाशिव ही धारते हैं। वास्तव में गुरु गोरक्षनाथ अवतार होने में चार कारण हैं जो आगे कहे जावेंगे जिनमें से दो कारणों का कुछ आंशिक कहा जा चुका है एवं महायोगविद्या को सजग कर उसी द्वारा देवदनुजनरों किन्नरों के कल्याण करने महासंसार सागर से पार उतारने का जब संकल्प हो तब वे ही परमसदाशिव गोरक्षनाथरूप से मूर्तिमान होकर के उमादि के अहंकार का निवारण करते हैं तथा महायोगज्ञान को पुन: सबल कर प्राणिमात्र का कल्याण करते हैं। ये साक्षात्परमसदाशिव सच्चिदानन्दस्वरूप ही हैं, महायोगविद्या के अध्यक्ष महायोगेश्वर हैं एवं महायोगज्ञान द्वारा जो प्राणियों का कल्याण करते हैं। यही परमाशाश्वती रक्षा है। रक्षा करने वाला होने से उस परम सदाशिव को गोरक्षनाथ कहते हैं। जो उमा भवानी तथा देवनरकिन्नर यक्षराक्षसों से अगम्य हैं वे ही व्यक्त हुए गोरक्षनाथ नाम वाले हैं।

❋

गुरु गोरक्षनाथ के विषय में संदिग्ध देवताओं के पूछने पर शंकर का बताना

महाकल्पद्रूमतन्त्र में देवताओं के पूछने पर कि–हे प्रभो! यह महापराक्रमी तथा अनन्ततेजपुञ्जात्मक रतिपति के सौन्दर्य को अतिक्रमण कर रहे यह कौन देवाधिदेव हैं।

शिव बोले–

अहमेवास्मि गोरक्षो मद्रूपं तन्निबोधत।
योगमार्ग प्रचाराय मया रूपमिदंधृतम्।।

अर्थात हे देवताओं यह अनन्त प्रकाशपुञ्जात्मक गोरक्षनाथ जी हैं वह साक्षात् मैं ही हूँ। यह योगमार्ग के प्रचार द्वारा प्राणियों के कल्याणार्थ मैंने ही यह रूप धारण किया है। उसी महायोगविद्या के पर्याय हैं महायोगज्ञान, सहाविद्या, महाज्ञान अमरविद्या। इस महायोग विद्या के अध्यक्ष भगवान सदाशिव आदिनाथ जी हैं और यही नाथ सम्प्रदाय के भी आदि प्रचारक तथा अध्यक्ष भी हैं। इस सिद्धमार्ग (नाथ सम्प्रदाय) के आदिनाथ मत्स्येन्द्रनाथ, गुरु गोरक्षनाथ ज्वालेन्द्रनाथ आदि क्रमशः आचार्य हैं एवं नवनाथ भी नाथ सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य हैं जिन्हों के नाम आगे कहेंगे। इस महायोगेश्वर आदिनाथ भगवान के महायोगविद्या ज्ञान में और विद्याओं से यह एक महती विशेषता है कि परमेश्वर के ब्रह्माण्ड में महासिद्ध पूर्णयोगी जहां चाहे यथेच्छा भ्रमण कर जहाँ चाहे निवास कर सकता है और ऐहिक पारलौकिक ऐश्वर्य को भोग कर जब चाहे योगयुक्त हुआ स्वात्मा परमात्मा का ऐक्य ज्ञान प्राप्त कर कैवल्य प्राप्त

कर सकता है। उक्त चारों आचार्यों के शिष्य प्राय महासिद्धयोगी महासिद्धनाथ ब्रह्मज्ञानी थे भर्तृनाथ, गोपिचन्द्रनाथ पूर्णभक्तनाथ इनके नाथ मार्ग में क्रमशः ये नाम हैं सिद्धविचारनाथ, सिद्धशृंगेरिपानाथ, सिद्धचौरंगिनाथ हैं। सिद्ध बालकनाथ, सिद्धनिवृत्तिनाथ, महासिद्धनाथ मस्तनाथ जी इत्यादि और भी सैकड़ों महासिद्धराज हैं जो आगे चलकर नवनाथ प्रकरण में बतावेंगे इत्यादि ये सब परमज्योति शिव में मिलकर शिवरूप हो गये हैं।

आदिनाथ–इसका अर्थ यह नहीं समझना कि जिसका शुरू हो तो उसका अन्त भी अवश्यंभावी है। किन्तु इसका अर्थ है कि आदि (प्रथम) किसका प्रथम, सृष्ट्युत्पति का जो प्रथम। उस प्रथम का नाथ (कारण या स्वामी) नाथ का कारण यह अर्थ यद्यपि अप्रसिद्ध है। तथापि पारिभाषिक विवक्षितार्थ सिद्ध या प्रतीत होता है एवं यथा जगन्नाथ यहाँ पर भी उक्त दोनों अर्थ ही झलकते हैं।

परमसदाशिव सदाशिव, सच्चिदानन्दरूप के गोरक्षनाथ रूप में होने के चतुर्विध कारण

ये हैं कि–

प्रथम– त्रिदेवपरामर्श के बाद द्विदेव प्रार्थना।

द्वितीय– आदिनाथ ने स्वशिष्यमत्स्येन्द्रनाथ को सहयोग देना।

तृतीय– जगदम्बा भवानी को शिव द्वारा निरभिमान करना।

चतुर्थ– महायोगविद्या के प्रचार के तथा जीवमात्र के कल्याण के व्यसनी होना–ये चार कारण हैं।

संक्षेप से यहाँ इनका कथन इस प्रकार है।

प्रथम—ब्रह्माण्ड संचालन के कुछ काल बाद दिव्य कैलास में एक समय एकत्रित हुए त्रिदेवों ने अज्ञानरूपी त्रितापदावानल द्वारा दग्ध हो रहे जीवों की विविध दु:खपूर्णतावस्था को देखकर लोकेश महेश अहिशय्येश (ब्रह्मा, शिव, विष्णु) इनको अति दया आई कि कोई ऐसा उपाय हो जिससे ये जीव क्रियान्वित करके इस दैनीया दशा से सदा के लिए मुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त कर त्रिताप से छूट जायें। त्रिदेव ने यह निश्चित किया कि पूर्ण योगविद्या का ज्ञान प्राप्त करके तथा उसके पूर्ण अभ्यास से असम्प्रज्ञात तथा धर्ममेघ समाधि द्वारा शक्ति को प्राप्त करके अतिशीघ्र जीवात्म तथा परमात्मा के अभेदज्ञान से सुसम्पन्न हुआ मनुष्य अनायास परमानन्द (मुक्ति) को प्राप्त कर सकता है। इसके बाद विधिहरि दोनों ने विमर्श किया कि यह कार्य आदिनाथ जी को ही अर्पण करें तब दोनों ने शिवजी से कहा कि हे सर्वसमर्थ प्रभो! इस महान कार्य को करने के लिये आप ही समर्थ तथा योग्य हो और यथाशक्ति हम भी सहकार्य करेंगे। किन्तु अग्रणीय भवान ही होने योग्य हो यह हम दोनों की प्रार्थना कृपा करके स्वीकार करें तब श्री शंकर जी ने उक्त हरिविधि दोनों की प्रार्थना को मान लिया यही प्रथम कारण है परमसदाशिव का गोरक्षनाथ के रूप में होने का।

द्वितीय कारण—आदिनाथ शिव ने अपने शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ को जब पूर्वकाल में अभ्यास पूर्वक पूर्ण महायोगविद्या की शिक्षा—दीक्षा देकर सुयोग्य बनाकर उससे कहा कि संसार में विचरण कर इस सम्पूर्ण कल्याणकारी महायोगविद्या के प्रचार—प्रसार करने की आज्ञा दी। तो

मत्स्येन्द्रनाथ ने दोनों हाथ बान्धकर आदिनाथ जी से प्रार्थना की कि हे गुरो! यह अति सूक्ष्म गहन कार्य है। इसलिये आपकी सहायता कृपाप्रसाद के बिना मुझ एकाकी से पूर्णरूप से पूर्ण होना महायोगविद्या का दुर्लभ है और आपकी कृपारूपी प्रसाद से इसका पूर्ण होना सुलभ हो जावेगा। इसलिए कार्य के पूर्ण होने के लिए मुझे सहायता का योगदान देने की कृपा करना। तब शंकर जी ने कहा हे वत्स! आप विचरण कर जितना हो सके उतना प्रचार करो तथा योग का अभ्यास भी करते रहो। कुछ समय बाद में आकर मैं भी आपकी किसी भी रूप से पूर्ण सहायता करूँगा एवं कह करके तो शिवजी अन्तर्ध्यान हो गये और नित्यनाथ कई हजार वर्षों के तप के बाद योग प्रचार में जुटा तो अनेकों कालनाथादि राजकुमारों को योगी बनाया तथा अनेकों को बिना योगीनाथ बने ही योग दीक्षा दी। कई वर्षों के बाद अपने रूपान्तर के द्वारा दिये सहयोग रूप वचनों को पूर्णार्थ जो योगरूप महाविद्या का व्यसनी आदिनाथ है। उसने गुरु गोरक्षनाथ रूप को धार कर 'मत्स्येन्द्रनाथ जी' को अपना गुरु बनाया। गुरु गोरक्षनाथ जी तो पूर्व ही पूर्ण थे किन्तु यह तो संसार मर्यादारूपी गुरु–शिष्य भावमात्र को दिखाया था। यही गोरक्षनाथ जी के अवतार होने का दूसरा कारण है।

तीसरा कारण भवानी—एक समय शिव की चिद्रूपा परा शक्ति भवानी और शिव में किसी बात पर विवाद छिड़ गया उत्कर्षता अपकर्षता रूपी तो जगदम्बा ने शंकर जी से कहा कि ऐसा आपका किया कोई कार्य नहीं है जो मुझ बिन हुआ हो व आप कर सकते हो। जिस–जिस

रूप में आप हो उसके साथ मैं अवश्यंभावी हूँ यदि आप शिव हो तो मैं शिवा हूँ। यदि आप विष्णु हो तो मैं लक्ष्मी हूँ। यदि आप ब्रह्मा हो तो मैं सावित्री हूँ। यदि आप इन्द्र हो तो मैं इन्द्राणि हूँ। यदि आप काल हो तो मैं काली कराली हूँ। यदि आप ब्रह्म हो तो मैं माया हूँ। यदि आप पुरुष हो तो मैं प्रकृति हूँ। यदि आप नर हो तो मैं नारी हूँ। यदि आप पुलिंग वाचक हो तो मैं स्त्रीलिंग वाचिका हूँ। अर्थात् युग्म रूप से सर्वदा सर्वथा आपके साथ हूँ मुझसे भिन्न आपका कोई रूप कार्य बल शक्ति क्रिया नहीं है फिर आपका कौन सा अंश है जिसमें मैं आपसे कम हूँ। पुनः आप मुझे अपना बड़प्पन क्या दिखाते और दबाव डालते हो। इत्यादि हुए अभिमान को निरसनार्थ यही तीसरा कारण सदाशिव को श्री गोरक्षनाथ रूप में होने के लिये है।

चौथा कारण—जीवों के कल्याणार्थ करुणार्द्र हुए योग विद्या का प्रचार और प्रसार का तो यह उनको एक व्यसन ही है यथा अफीमी को अफीम का शराबी को शराब का व्यसन (अमल=नशा) होता है। वैसे ही करुणार्द्र हृदय हुए जीवों के कल्याणार्थ सदाशिव ही गोरक्षनाथरूप को धार कर जीवों के दु:खों का योग प्रचार—प्रसार द्वारा नाश करना ही नशा है जिसका मनुष्यों को पूर्ण बोध कराकर मोक्ष देना सन्तोष है जिसका वे ही उक्त चारों कारणों के उपस्थित होने पर सच्चिदानन्दस्वरूप सदाशिव ही समस्त मायाजाल से अतीत परम पुनीत गोरक्षनाथ रूप को धारण करते हैं।

—❋—

सच्चिदानन्द स्वरूप सदाशिव ने उक्त कारणों को लक्ष्य कर श्री गोरक्षनाथरूप द्वारा प्रकट होना

सच्चिदानन्दस्वरूप (परमसदाशिव) सदाशिव ने स्वयोग माया संयुक्त संकल्प से अन्तरिक्ष में (कैलास के ही किसी दक्षिण भाग में) अकास्मात् एक नवीन अलौकिक रचना रचकर के उसी में एक अति चित्ताकर्षक वन रच दिया तथा अनेक वन्य चराचर भी रच दिये जो कि यह सब कुछ अलौकिक था और जगदम्बा भवानी के अभिमान निवृत्त्यर्थ एवं अनेक अन्य कार्यों की सिद्ध्यर्थ यह सब कुछ अलौकिक अचिन्त्य ही रचना थी उस वन में अनेक गिरिवर सुन्दर स्वच्छ गुहायें थीं जिन्हों में एक विशालानना वृहदाकारवाली गुहा है जिसका अभ्यन्तर भाग सुवर्णपत्रों से मण्डित मुक्तामानिकों से जड़ित है। इस गुहा में एक उच्चासन जो स्वर्णशिलाओं से निर्मित मुक्तामानिक नीलमों से मण्डित बागम्बर प्रसारित आसन पर अपनी महायोग मायासंयुक्त संकल्प से सदाशिव ने स्वयं का (अपने आपका) नाम रूपान्तर (अन्य नाम रूप) को धार कर प्रकट हो सतयुग के ९५०५०३, नौ लाख पचास हजार पांच सौ तीसरे वर्ष के ग्यारहवें मास की शुक्ल पञ्चमी के प्रात:काल में जो समस्त माया जाल से सर्वदा सर्वथातीत परम पुनीत सदाशिवरूप महासिद्धराजाधिराजाओं के सम्राट श्री गुरु गोरक्षनाथ नामरूप से सुशोभित उक्त आसन पर विराजमान हुए। जिनके प्रभाव से प्राकृत वैर वाले मृग मृगेन्द्र आदि भी सुहृद्भाव वाले हो गये इस भारत भू भाग में सर्वत्र मंगल ही दृष्टिगोचर होने लगे। अन्य गुहों में विराजमान ब्रह्मर्षि मुनीश महासिद्धयोगीश्वर ब्रह्मज्ञानी अनेकों

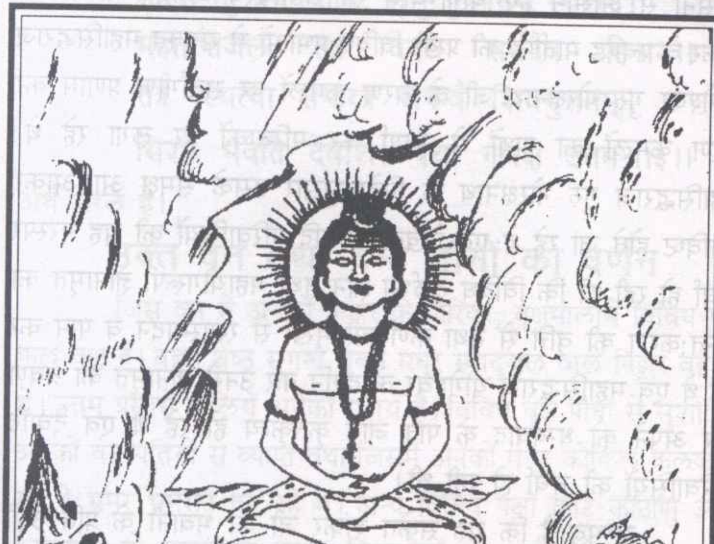

श्री सदाशिव स्वरूप श्री गोरक्षनाथ जी
का प्रादुर्भाव

आसनों से आसीन हुए योगाभ्यास रत समाधिस्थ अवस्था से उत्थित होकर वे प्रचण्ड मार्तण्ड की प्रखर विविध प्रभाओं से संयुक्त महासिद्धराज योगेश्वर गुरु गोरक्षनाथ जी के चरण कमलों पर सर्वांगीण प्रणाम कर चरण कमलों का हाथों से स्पर्श कर मस्तिष्कों पर लगा रहे थे। महासिद्धराज गुरु गोरक्षनाथ के निर्देशानुसार उसके समक्ष आ आकर उपविष्ट होते जा रहे थे एवं देखकर देवादि पुरिवासियों की यह परस्पर चर्चा हो रही थी कि विविध दुर्लभ्य ज्ञान तथा महायोगरूपी ज्ञानामृत का अन्तःकरण की वृत्ति से तथा कर्णरूपी मुखों से रसास्वादन व पान कर रहे थे एवं महासिद्धराज योगेश्वर के दर्शन कर उनसे ज्ञानामृत का श्रवण कर अपने को धन्यवाद के पात्र जान कृतकृत्य हो रहे थे एवं देवादि पुरिवासियों की चर्चा हो रही थी।

सम्भव है कि यह संकेत शंकर जी का भवानी के प्रति उसी स्थान की ओर हो।

[१]तत्स्थान देवदेवेशि न त्यजामिकदाचन।
तत्र गौरीश्वरत्वेन ख्यातोऽहं शिवलोकदः।।
स्नानं करोति यस्तत्र मृतिकांशिरसा वहेत्।
सवै मम प्रियतरो यथा त्वं मम वल्लभा।।
अत्र यद्वै कृतं कर्म तद्वै कोटिगुणं भवेत्।।

इससे दक्षिण की ओर—

[१]तस्माद्दक्षिणतो देवि! गोरक्षाश्रमरक्षकः।
यत्र सिद्धो महादेवि! गोरक्षो वस्तेऽनिशम्।।

१ टि. स्कन्द पुराण केदार खण्ड अ. ४५ पृष्ठ ४६ तथा अ. ४६ पृष्ठ ४७ में।

तल्लिंगंतु प्रवक्ष्यामि, शृणु पुण्यतमं स्थलम्।
महातप्तजलं तत्र वर्तते सर्वदैव हि।।२।।
तत्र स्थित्वा सप्तरत्रं जपन्वै शिवमुत्तमम्।
सिद्धो भवति देवेशि! यथा गोरक्ष उत्तमः।।३।।

अर्थ सरल है।

उक्त वन तथा वन्य दोनों का वर्णन

जिस वन में अनेकों प्रकार के गिरिवर, वृक्षमालायें विविध पुष्प फल वृक्ष हैं। बहुत श्रेष्ठ सुगन्ध युक्त मधुर स्वादुजल वाले निर्झर वह रहे थे। उत्तम प्रस्तरों वालियें अनेकों गुहायें हैं। विविध वृक्ष पौधों से सुशोभित अनेकों वनस्पतियों से व्याप्त तथा जिसमें अनेकों मयूर कोकिल कलकला रहे थे भ्रमर भ्रमरान कर रहे थे। अन्य विविध पक्षी कीट कीटाणु आदि श्यामवेद के महागायन वादन विद्यापीठों के छात्रों की तरह—२ की ध्वनियां निकाल रहे हैं। मानों कि वहां के सब प्राणिवर्ग अपनी—२ स्तुति स्वरों के उत्तराव चढ़ाव से अपनी—२ भाषा में परमात्मा का परमहर्षोल्लास से यश कीर्तन करते हुए प्रतीत हो रहे थे। किन्नरनर गन्धर्व अप्सरायें भी जिसकी शोभा से तथा जिसमें हो रहे कीर्तन वादन को सुनने से तन की सुधी को विसार कर मन की सुधी से ही सुन रहे थे। भूमि गिरिवारि निर्झरों विविध प्राणियों वृक्षों पौधों की आभाओं की एकीभूता प्रभाओं की शोभा जान पड़ता था। मानों कुबेर के उद्यान की शोभा को धूली धूसरित कर दिया है। यह सब कुछ गुरु गोरक्षनाथ जी के बल का ही प्रभाव था यह सदा शिव रूप श्री गोरक्षनाथ जी का रूप अभी तक भवानी से अदृष्ट तथा अनवगत था। इस वन्य प्रदेश की शोभा दूर तक प्रसारित हो रही

थी इस अद्वितीय प्रकाशित हुई शोभा को देखकर अन्तरिक्षस्थ स्वर्गादि लोक निवासी देवादि चकित हो रहे थे। अभी तक ब्रह्मा, विष्णु भी इस महाबल से अज्ञात ही थे।

जो सदैव विद्यमान रहने वाला नित्य पदार्थ है। उसका समय निर्धारित करना तो अज्ञानता ही है। तथापि ज्ञानी को भी लोक व्यवहार में बहुधा अज्ञानता का ही व्यवहार करना, कहना, दिखाना पड़ता है अतएव जो काल का भी काल व केवल करने वाले हैं उसका समय लोक व्यवहारार्थ दिखाया है।

—✻—

आदिनाथ भगवान ने स्वब्रह्माण्ड का भ्रमण कराते हुए भवानी को अतिचित्ताकर्षक वन के समीप ले जाना जहां स्वयमेव गोरक्षनाथ रूप से विराजमान थे

शंकर जी—ब्रह्माण्ड का समीक्षण तथा भ्रमण एवं स्वजनों का कल्याण करते हुए प्रथम विष्णुपुरी को लक्ष्य किया भवानी सहित जब निकट में जा पहुंचे तो उदर से श्री शिव में सर्वदा संसक्तचित्त वाले भगवान विष्णु जी ने उमा शिव के आगमन को पूर्व जान, आगे से स्वागतार्थ बैकुण्ठ के बाहर द्वार पर ही जा मिले और उमेश दोनों को जब देखा तब गूढ़ प्रात:काल समय था। तब श्री विष्णु जी करद्वय को बाँधकर स्तुति करने लगे।

मन्दारमालाकुलितालकायै, कपालमालाङ्कित शेखराय।
दिव्याम्बरायै च दिशाम्बराय
नमः शिवायै च नमः शिवाय।।१।।
सुलोचनायै विषमेक्षणाय, सुधाशनायै च गराशनाय,
नमः शिवायै च नमः शिवाय।।२।।
सर्वार्चितायै सकलार्चिताय, सुधांशुभायै च सुधांशुभाय।
नमः शिवायै च नमः शिवाय।।३।।
कर्पपूरगौरं करुणावतारं, संसारसारं भुजगेन्द्रहारम।
सदा वसन्तं हृदयार्विन्दे, भवं भवानी सहितं नमामि।।४।।

क्रमशः, अर्थ—कल्पवृक्ष से बनी स्रग् को धारण करने वाली को रुंडन की स्रक् धारण करने वाले को दिव्याम्बर धारण करने वाली को और दिशाम्बर धारण करने वाले को मैं विष्णु जी नमस्कार करता हूँ।।१।। अति सुन्दर नेत्रों वाली, विषम दृष्टि वाले और अमृत को पान करने वाली तथा महाविष हलाहल को खाने वाले इन दोनों को मैं विष्णुदेव नमस्कार करता हूँ।।२।। सबसे सुपूजित हुई तथा सकल से सुपूजित हुए। सुधांशु (शुभ्रांशु) अर्थात् चन्द्रदेव की सी आभा वाली तथा चन्द्रदेव की सी आभा वाले इन दोनों को मैं विष्णुदेव नमस्कार करता हूँ।।३।। कपूर के समान परमस्वच्छ गौरवरण है जिसका और करुणा रूप अवतार वाला तथा संसार का सार (कारण) अथवा संसार में केवल प्राप्तव्य तत्त्व को और भुजग राजाओं के व केवल शेषनाग के हार वाले एवं सदा ही हृदयों में निवास करने वाले उमा सहित शिव को नमस्कार करता हूँ।।४।। इत्थम्—भगवान विष्णु ने उमेश दोनों को जगत के जनक जननी जानकर

तथा अपने परम पूजनीय जानकर उनके चरण कमलों में सर्वांगीण प्रणाम किया एवं भव भवानी ने आशीर्वाद कहा पूज्योभव अर्थात् पूजनीय हो, आशीर्वाद दिये और शंकर, विष्णु परस्पर भुजपञ्जरों में लेकर एक दूसरे से स्व–स्व वक्षों से मिले। इसके बाद दोनों को लेकर बैकुण्ठ के भीतर अपने सिंहासन पर विष्णु ने श्री शंकर जी को बैठाया और माँ लक्ष्मी ने अपनी भगिनी जगदम्बा को अपने आसन पर बैठा विधिवत्पूजन करके विविध नैवेद्यों के उमा को भोग लगाकर प्रणाम किया और दोनों महती प्रसन्नता से विराजमान हो कुशल क्षेम की वार्तायें करने लगीं विष्णु जी ने भी उमेश भगवान के चरण कमलों को प्रक्षालन करके धूप दीप अनेक सुगन्धित द्रव्यों से पूजन करके विविध पुष्पों की मालायें दोनों ने दोनों के गले में पहनायीं और बाद में दोनों पर दोनों ने पुष्पों की वर्षा की। विष्णु जी ने विविध रत्नबज्र जड़ित स्वर्ण भाजनों में अनेक फलों को मृद्वी आदि मेवों को श्री शंकर जी के अर्पण किया तथा परम प्रसन्नता से विष्णु जी पर कृपा दृष्टि का पात किया और परस्पर वाणी विलास किये एवं वैनतेय महाज्ञानी वीर बंकनाथ आदि भगवान् विष्णु जी के पार्षदों ने भी पुष्पों की भव भवानी पर वृष्टि कर स्तुति की तथा प्रणाम किये एवं कुछ समय विश्राम के बाद जब बैकुण्ठ से उमेश दोनों ने प्रस्थान किया तो पुन: दोनों देवी देवों ने आपस में आलिंगन किये और दूर तक विष्णु लक्ष्मी विदा करने गये बाद में प्रणाम कर प्रत्यावर्तित हो गये।

अब भवानी शंकर का सत्य लोक को जाना

अब उमा शिव ने सत्यलोक को जाने का लक्ष्य किया। अपनी महायोगमाया बल के संकल्प मात्र से ब्रह्मपुरी के समीप चले गये तो तब

ब्रह्मदेव भी उमेश दोनों के आने को दिव्य ज्ञान से पूर्व ही समझ गये और सावित्री को साथ लेकर उमाशंकर के सत्कार स्वागतार्थ आगे से पूर्व ही जा मिले परस्पर आलिंगन प्रणाम किये एवं सावित्री भवानी ने भी मिलकर एक दूसरी को भुजों में लेकर वक्षस्थलों से मिली। ब्रह्मपुरी में ले जाकर सावित्री ने भवानी को अपने सिंहासन पर बैठाया और ब्रह्मदेव ने महेश को अपने सिंहासन पर बैठाकर उनके चरणकमलों का प्रक्षालन किया एवं सावित्री ने भवानी के चरण कमलों का प्रक्षालन किया और दोनों देवी देवों ने दोनों देवी देवों के सुन्दर सुगन्धित द्रव्यों से पूजन किये और मुक्ताबज्र जड़ित स्वर्ण पात्रों में विविध फल मेवों के भोग लगाये। पुष्पमालायें पहनायीं तथा अनेक महर्षियों सहित प्रणामें कीं तथा दोनों देव ब्रह्माण्ड के संदर्भ में समीक्षण विमर्शण कर रहे थे तो महेश ने पूर्व हुए त्रिदेव परामर्श का लोकेश को स्मरण कराया। तो विधिदेव ने कहा कि हे महादेव! आप से प्रवर्तित जो योग मार्ग अर्थात् सिद्धनाथमार्ग में मेरी कोई न कोई शाखा या पन्थ अवश्य ही होगा। इसके उपरान्त उमा शंकर ने विधिलोक से प्रस्थान करके।

उमा शंकर ने ब्रह्मलोक से अमरपुरी को लक्ष्य किया

उमा शंकर ने विधिलोक से अमरपुरी को जाने का लक्ष्य बनाया। जो महायोगमाया के संकल्प से स्वर्ग पुरी के निकट जा पहुँचे। तब देवराज पुरन्दर ने जगज्जनक जननी का आना जानकर गुरुपत्नी बृहस्पति सहित तथा वसु पक्ष प्रधान देवी देवों सहित अग्रत: स्वागतार्थ अनेकों पुष्प पुष्पमालायें लेकर गये तथा श्यामवेद के गायक गन्धर्वों को

वीणादि वादनों सहित गौरी शंकर का यश कीर्तन करते हुए देवी देवों सहित देवेन्द्र देवपुरी के बाहर कुछ दूरी पर जा मिले अपने समाज सहित एवं प्रधान देवी देवों ने भवानी शंकर के गलों में मालायें पहनाकर बाद में देवराज ने सब देवी देवताओं के करों में पुष्प लेकर अपने समेत महादेव–महादेवी के ऊपर पुष्पों की वर्षा की बाद में स्वर्ग के देवराज प्रसाद में अपने सिंहासन पर बैठाकर भवको देवराज ने और भवानी को इन्द्राणी अपनी शय्या पर बैठाकर दोनों देवी देवों ने दोनों देवी देवों के पादपद्मों को प्रक्षालन करके विविध सुगन्धों से धूपित किये बाद में सुवर्ण मुक्ता मानिक मण्डित भाजनों में अनेकविध फल नैवेद्य निवेदित किये भव भवानी के लिए एवं एक निशा सुरपुर में वास करके पुन: यहाँ से प्रस्थान करके।

उमा सहित शंकर का वहाँ पहुँचना जहाँ स्वयमेव गुरु गोरक्षनाथ रूप से अति चित्ताकर्षक वन में विराजमान थे

अब अतिचित्ताकर्षक वन प्रदेश के निकट आ पहुँचे। यहां शंकर जी–स्वच्छ स्थल देखकर के वन की सीमा से बाहर ही बैठ गये। अनेक आभाओं से मिश्रित सौन्दर्य को देखकर उपविष्ट हुए शंकर से भवानी बोली कि हे जगत्पते! अनेकविध सौन्दर्य संयुक्त विविध प्रकाश समुदायों से सुसज्जित एवं सौन्दर्यापन्न निर्वेर गोगजेन्द्रादि विविध प्राणियों से परिपूर्ण अब तक ऐसा देश मैंने कहीं नहीं देखा कि जो प्राकृत समस्त सौन्दर्य के गुणों तथा शोभाओं को अतिक्रान्त करके अप्राकृत गुण प्राणिवर्ग के स्वभाव तथा शोभायुत होकर प्रभासमान हो रहा है यही मुझे आश्चर्य है कि जो मुझ

प्रकृति के समस्त कार्यों का अतिक्रमण कर किसी विचित्र अप्राकृत स्वरूप के रूप से विराजमान हो रहा है। हे सदाशिव महेश्वर! यह कौन देश है! किस शिल्पी परमेश्वर का रचा है। जो यह संसार में असदृश और एक ही है। शंकर जी–हे जगदम्बे! यह अतिचित्ताकर्षक नाम वाला देश है। भगवान गोरक्षनाथ जी का यह देश है। उनके महायोगबल स्वभाविक के प्रभाव से यह वन देश प्रभावित तथा सर्वप्रिय हो रहा है।

भवानी–हे प्रभो! उस महामहिम महाबलशाली के दर्शन करने चाहिये तथा उसे दर्शन देने चाहिये। शंकर जी–वे दर्शन देने तथा लेने की कोई भी परवाह (भावना) नहीं रखते हैं और जहां पर जाने वालों की प्रवाह (प्रभाव) न हो, आदर नहीं हो, वहां जाने वालों का जाना व्यर्थ तथा निरादर जनक होता है। भवानी जी–हे प्रभो! एक बार जाकर देखना तो चाहिये बिना किसी के पास गये उसके अच्छे बुरे स्वभाव का क्या पता चलता है। शंकर जी–यदि श्रीमती जी ने जाना है तो बड़ी प्रसन्नता से जाओ दर्शन दो और उनके करो जब तक आप प्रत्यावर्ति नहीं होती हो तब तक मैं आपका प्रतीक्षण यहीं करूंगा।

माता भवानी का शंकर की आज्ञा पाकर महासिद्धराज गोरक्षनाथ जी के दर्शन करने जाना

माता उमा तो पहिले ही जाना चाहती थी किन्तु अब भगवान आदिनाथ जी की आज्ञा मिलने पर और भी अच्छा हो गया था उसके लिये अब बहुत हर्षोल्लास से गोरक्षनाथाश्रम में पहुँची। वहाँ सर्व वस्तु, व्यक्ति प्राणियों को अदृष्ट पूर्व ही देख रही थी। जब अपार बलशोभार्णव महासिद्धराजधिराज महायोगेश्वर परमेश्वर गुरु गोरक्षनाथ जी को देखा तब

वह उन्मनी अवस्था विशेष में व्यवस्थित थे। गोरक्षनाथ जी को उन्मनी अवस्था से प्रत्यावर्तित (लौटाने के लिये) विविध प्रकार के बलवान प्रयत्न किये। किन्तु तीव्राग्नि में घृतहुति डालने के सदृश यथा घृतहुति का नामोनिशान नहीं रहता। ठीक वही हाल महासिद्ध योगेश्वर के तेज के समक्ष माता उमा के किये प्रयत्नों का हुआ। अब हत गौरव तथा हतोत्साह हुई जगदम्बा जब वापिस शिव की ओर लौटी तो अपने मन में ही विचार करती हैं कि बिना शंकर के अन्य कोई ऐसी शक्ति का होना असंभव है। यह उसकी ही माया है वह चाहे किसी रूप से हो एवं विचार करती हुई श्री शिव के पास आ गयी। तो शिवजी ने पूछा बताओ वह कैसा परमेश्वर है! और आपका उसने कैसा सत्कार किया! उमा–हे प्रभो! मैंने जो कुछ भी वहां देखा वह आश्चर्यमय अचम्भा ही देखा तथा अदृष्ट पूर्व ही देखा। शंकर जी बोले कि अच्छा तो अब बताओ जो आप श्रीमती ने पूर्व कहा था कि यदि आप शिव हो तो मैं शिवा हूँ। यदि आप ब्रह्मा विष्णु हो तो मैं सावित्री–लक्ष्मी हूँ। यदि आप ब्रह्म हो तो मैं माया हूँ। यदि आप ओ३म् हो तो मैं गायत्री हूँ। यदि आप नर हो तो मैं नारी हूँ। यदि आप पुलिंग वाचक हो तो मैं स्त्रीलिंग वाचिका हूँ। अब आप श्रीमती जी बताओ? इस माया जालातीत सकार तत्त्व के साथ आप किस रूप से हो? तब उमा अपने रूप को व्याप्य जानकर निरुत्तर हुई मौन रह गयी। कुछ देर सोचकर कि हे परमेश्वर! आपकी सीमा या महिमा आप ही जानते हो अन्य नहीं। क्योंकि राई (राजिका) महागिरि सम यह मेरी बराबरी (तुल्यता) असिद्धा हुई एवं कहकर पुन: पुन्य प्रणाम करने लगी। इतोऽनन्तर दोनों शिवपुर को चले गये। वहाँ जब आराम पूर्वक सुमना शिव को देखा है तो उचित समय जानकर भवानी ने शिव से कहा हे

परमेश्वर! आपका जो यह गोरक्षनाथ रूप है यह आपने कब से धारण कर रखा है और किसलिये अपनी असीम शक्ति को आपने निःसीम में ही परिवर्तन किया। कौन सा ऐसा असम्भव कार्य था जिसे सम्भव करने के उद्देश्य से ऐसा किया! शिव—हे उमे! यह रूप मेरा परम पुरातन परम पुनीत महाबलिष्ठ सर्वशक्ति सम्पन्न सर्व विद्याओं का अपारार्णव है तथा यह सदा ही रहता है। जब इसको योगप्रचारार्थ इच्छा होती है तभी दृश्य होता है और भवानी के गर्वनिवृत्यर्थ तथा मत्स्येन्द्रनाथ की सहायतार्थ जब आवश्यकता होती है तो तब यह रूप भक्त की भक्ति के द्वारा दृश्य होता है। अन्यथा यह सबसे अदृश्य एवं अगम्य ही रहता है।

विस्मित हुए देवी—देवों को आकाशस्थ देवविशेष द्वारा आकाशवाणी होना

बैकुण्ठब्रह्मपुरीस्वर्गपुरीवासियों ने—अकस्मात् आश्चर्य जनक यह अतिचित्ताकर्षक सुवन प्रदेश, जो सर्व प्रदेशों से सर्व प्रकार से निरतिशय है। किसने बनाया तथा किसका है! जो अपनी शोभा से सर्व पुरियों के सौन्दर्य का अतिक्रमण कर रहा है। जिसकी गुहों में महासिद्ध योगेश्वर यशस्वी ब्रह्मज्ञानी रह रहे प्रतीत होते हैं। स्वर्ण शिलाओं से निर्मित गुहास्थ बज्रलालनीलममुक्ता मानिकों से युक्त सुसज्जित असदृश शोभा वाले उच्चासन पर विराजमान इन सबके गुरुदेव होंगे इस वन में अनेकों वन्य प्राणी हैं। देखो इसमें गौवें, गज, सिंह, व्याघ्र, शशक, फेरु, मृग, नील, गवया आदि। विविध खग खगेश कपोत काक कोकिल चटक चटिकायें मयूर कीर कीरांगना आदि स्वभाविक वैर भाव को त्याग कर एकत्रित हुए। उपविशन उत्थान गमनागमन जलपान आदि क्रिया क्रीड़ायें परस्पर करते हुए स्ववास कर रहे हैं। इस प्रकार की चर्चा को

चर्चित कर रहे देवी देवों को बोधनार्थ आकाशवाणी हुई कि भो देवताओं इस परमपावन अतिचित्ताकर्षक वन प्रदेश के अधिष्ठातृ देव तथा इन सब सिद्धयोगीश्वरों ब्रह्मज्ञानियों के तथा इस सर्व ऐश्वर्य के रचिता एवं स्वामी सदाशिव गोरक्षनाथ जी हैं। ये एकात्मक दृष्टि की सृष्टि वाले हैं। उन्होंने यह रचना प्राणीमात्र के कल्याणार्थ ही रची है।

अब महायोगेश्वर श्री गोरक्षनाथ के सन्दर्भ में जानकारी के लिए भवानी ने आदिनाथ शिव से पूछना

भवानी—आप इसको पुरातन कहते हो देखने में तो यह सद्यजात प्रतीत हो रहा है।

शिवजी—यह हर समय परमपुनीत महोज्ज्वल ही प्रतीत होता रहता है। इसमें किसी प्रकार की न्यूनता कभी भी नहीं आती यह साक्षात्परमशिव परब्रह्म ही हैं। क्योंकि इसका जो "गोरक्षनाथ" यह नाम है इसके नाम से ही यह सदातन (नित्य) सिद्ध है। परमेश्वर के जो नाम होते हैं उन्हीं के अनुसार उस नाम के वाच्यों में गुण तथा शक्तियां होती हैं और जो नाम होता है वाच्यों (अर्थों) वाला होता है।

शंकर जी ने गोरक्षनाथ नाम के अर्थ को भवानी जी को समझाना

जैसे 'गोरक्षनाथ' में तीन पद हैं।

गो—रक्ष—नाथ, ये हैं—

इन तीनों का यथार्थ ज्ञान हो जाने से ही इनकी शक्ति तथा

समय भी स्वयं ही ज्ञात हो जाता है। यथा–

(१) गो=इसके अर्थ हैं गो–पृथ्वी, स्वर्ग, इन्द्रियें आदि और भी अर्थ हैं। गो=पृथ्वी=धरा, स्वर्ग, इन्द्रिये इत्यादियों का गो, इस पद से इसके सब अर्थों का ग्रहण होता है। दूसरा–

(२) 'रक्ष' इस पद का अर्थ=(वाच्य) है रक्षा करने वाला, इतना इस रक्ष पद का अर्थ है। और

(३) 'नाथ' इसके चार अर्थ हैं किन्तु यहाँ इसके दो अर्थ दिखा रहे हैं एक 'ऐश्वर्यवान' दूसरा स्वामी (मालिक) है। इनमें से पूर्व के दोनों पदों को समस्त (जोड़ने से) क्या बना कि गोरक्ष, तो अब इसका अर्थ बना कि रक्षा करने वाला। प्रश्न हुआ कि किसकी रक्षा करने वाला। तो उत्तर हुआ कि जो– 'गो' इस पद के वाच्य (अर्थ) हैं उन सबकी। वे–अर्थ कौन से हैं । जो 'गो' के पृथ्वी स्वर्ग आदि पूर्व कहे हैं। गो=पृथ्वी, गो=स्वर्ग, गो=इन्द्रियें इत्यादि हैं। इन सबकी जो रक्षा करता है वही 'गोरक्ष' है। अब यह सिद्ध होने पर। यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि जिन्हों की रक्षा करनी है उन सब रक्षा करने योग्यों से रक्षा करने वाला पहिले विद्यमान होना आवश्यक (जरूरी) है। यथा यह न्याय (कानून) है कि कार्य से पूर्व कारण का होना परम आवश्यक होता है। जैसे बालक के जन्म से पूर्व उसके मालिक तथा रक्षक उसके माता–पिता आवश्यक (जरूरी) होने चाहिये। अन्यथा बालक का होना असम्भव है। हे भवानी! पृथ्वी=धरा स्वर्गेन्द्रियादि से भी इन सबकी रक्षा करने वाला तथा इनका मालिक (स्वामी) सभी से पूर्व ही होना जरूरी सिद्ध हुआ। यथा–बालक की उत्पत्ति से पूर्व उसके माता–पिता न होवें तो बालक की रक्षा न जन्म कुछ

भी होना सम्भव नहीं हो सकता है हे उमे! यदि पृथ्वी स्वर्गेन्द्रियादि की उत्पत्ति से पूर्व उन्हों की रक्षा करने वाला तथा उनका स्वामी (मालिक) गोरक्षनाथ जी न होवें तो पृथ्वी स्वर्गेन्द्रियादियों का होना कदापि सिद्ध नहीं हो सकता। अत: पृथ्वी स्वर्गादियों कि सिद्धि के लिये पृथ्वी स्वर्गादियों से गुरु गोरक्षनाथ जी का होना पूर्व ही सिद्ध होता है। यह परमेश्वर का अकाट्य न्याय (न कटने वाला कानून) है कि कार्य से कार्य करने वाला पहीले मौजूद (उपस्थित) होना जरूरी है। अत: कार्य को करने वाले यदि कार्य से पूर्व विद्यमान न होगा तो कार्य के होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। इसलिये धरास्वर्गादियों का रक्षा करना रूप कार्य है। उन सबसे गोरक्ष का पूर्व होना परम आवश्यक (बहुत जरूरी) है एवं पृथ्वी स्वर्गादियों के प्रकट व पृथ्वी स्वर्ग आदि की उत्पत्ति से पूर्व ही विद्यमान थे। तो तभी पृथ्वी स्वर्गादिकों को अपना रक्षारूप कार्य जान श्री गोरक्ष ने उनको सुरक्षित रखा तथा रख रहे हैं एवं यह समस्त ब्रह्माण्ड का न्याय है कि यदि कार्य से पूर्ववर्ती कारण होगा तो कार्य सिद्ध होगा वरना नहीं। अर्थात् जननी जनक होंगे तो बच्चा होगा अन्यथा नहीं।

अब 'नाथ' यह गोरक्ष के अन्त में जोड़ने से गोरक्षनाथ, यह बना। इसका अर्थ निकला कि (रक्षक या स्वामी–(अध्यक्ष) गो=गौ। गो=पृथ्वी। गो=स्वर्गादिकों का) इस प्रकोष्ठ में जितने शब्द हैं। उन सबके रक्षक का बोध केवल 'गोरक्षनाथ' कहने से ही हो जाता है। हे जगदम्बे! जो आपने इस गोरक्षनाथ को सद्यजात पूर्व कहा था यह आपने इसको न जानने के कारण से कहा।

आदिनाथ जी ने भवानी को गोरक्षनाथ जी की विशेषता का वर्णन करना

यह गोरक्षनाथ ब्रह्माण्ड की अवस्थात्रय कारक त्रिदेवरूप ही है एवं असंख्य ब्रह्माण्डों के कर्ता भर्ता हर्ता हैं। यह एक रस होने पर ही नित्य नव नूतन प्रतीत हो रहे आप श्रीमती को सद्यजात जान पड़ रहे हैं और आपको यह पूर्व अज्ञात होने से कोमलांग प्रतीत हो रहे हैं। यह ठोस पदार्थों से भी ठोसतम हैं। यह अच्छेद्य अभेद्य अवद्य अजरामरवपु हैं। हे उमे! जब प्राणिमात्र के कल्याणार्थ इसने योग प्रचार करना हो तब अनेकों के लिये इसका दर्शन होता है। भक्त के लिये तो कभी भी भक्त की भक्ति से दृग्गोचर हो जाते हैं। अन्यावस्था में अपनी असीम महिमा में ही संमघ्न रहते हैं। हे भवानी? इसके विषय में और श्रवण करो'' पादोऽस्यसर्वभूतानि त्रिपादस्ति स्वयं प्रभ:, इत्येकदेशवृत्तित्वं मायाया वददि श्रुति:।। वे० मं०। उस सच्चिदानन्द परब्रह्म परमसदाशिवरूप गोरक्षनाथ के एक हिस्से में सर्वभूतवर्ग सहित माया रहती है। उसके तीन भाव स्वयं ज्योति स्वरूप हैं। सर्व विश्व को पेट में लिये विराजमान है पुन: उसको भूतसंघ कैसे देख सकें? अर्थात् बिना भक्ति के नहीं देखे जा सकते।

।। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी ने भी कहा है।।

नो ब्रह्मा विष्णुरुद्रौ न सुरपति सुरा नैव पृथ्वी न चापो,
नैवाग्निर्नापि वायुर्न च गगनतलं नो दिशो नैव काल:।।
नो वेदा नैव यज्ञा न च रविशशिनौ नो विधि नैंव काल्पा:,
स्वज्योति: सत्यमेकं जयति तवपदं सच्चिदानन्द मूर्ते?।।१।।

अर्थ सरल है। हे सच्चिदानन्द मूर्ते! जब उक्त ब्रह्म देवादि—सब नहीं थे तब स्वयं ज्योति स्वरूप आपका सत्य पद ही विराजमान था। अर्थात् महाप्रलय में एक स्वयं ज्योति स्वरूप परब्रह्म परमसदाशिव ही विराजमान थे।

गोरक्ष शब्द निर्वचन

समादरणीय श्री गोरक्षनाथ भक्तों! एवं प्रिय जनते!! श्री गोरक्षनाथ जो समस्त ब्रह्माण्ड से विदित हैं उसे कौन नहीं जानता? कौन ऐसा सद्ग्रन्थ है जिसमें गोरक्ष को महान स्थान न दिया हो एवं कौन ऐसा ऐतिहासिक पुरुष है जिसने इसकी समालोचना न की हो। कौन ईदृश युग है जिसके प्रभाव से वंचित रहा हो। व्याकरण, उपमान कोष, आप्तवचन, व्यवहार इनको मानना होगा। व्याकरण से—गां रक्षतीति गोरक्षः, रक्षतीति रक्षः, गवां रक्षः गोररक्षः, यावद्— गोपदवारच्यों की जो रक्षा करता हो उसे गोरक्ष कहते हैं। अर्थात् जितने भी गो इस पद के व्याच्य (अर्थ) हैं उन सबकी जो रक्षा करता है वही गोरक्ष है। उपमान—उपमिति के कारण को उपमान कहते हैं। उपमान उपमिति का असाधारण कारण है। संज्ञा संज्ञी सम्बन्धित ज्ञान इसका भावार्थ हुआ। गोरक्ष शब्द संज्ञा उसका वाच्यार्थ संज्ञी हुआ। गोरक्ष शब्द की चाक्षुष विषयता उस वाच्य की उपस्थिति करेगी। कोष से—स्वर्गेषु पशु वाग बज्रदिङ्नेत्रघृणि भूजले। गौरादित्ये बलीवर्दे किरणक्रतु भेदयोद्त्यमरः। स्वर्ग, बाण, पशु, वाणी, बज्र, दिशा, नेत्र, किरण, भूमि, जल, सूर्य, बैल, यज्ञ, सुरभि, इन्द्रियें इत्यादि गो शब्द के वाच्य हैं। उक्त इन सबकी जो रक्षा करने वाला वही गोरक्ष शब्द से व्यवहृत होता है। अर्थात् इनकी रक्षा करने वाला ही गोरक्ष है। आप्त वचन

से—आप्तस्तु यथार्थ वक्ता, सत्यवक्ता का नाम आप्त है। उसके वचनों का नाम आप्त वचन है। ऐहिक और पारलौकिक भेद से आप्त वाक्य दो प्रकार के हैं। दर्शन पुराण इतिहास इहलौकिक आप्त वचन हैं। वेद मन्त्र भाग, ब्राह्मणादि वचनों को पारलौकिक कहा जाता है। प्रमाण—

।। प्रमेयादि दोषों के कारण मानवीय ज्ञान निर्भ्रान्त न भी हो, किन्तु ईश्वरीय आर्ष ज्ञान तो निर्भ्रान्त ही है।।

आर्षे—संज्ञायां च ६—२—७७। अण्णत्ते परे तन्तुवायो नाम कृमिः। अकृञ् इत्येव रथकारो नाम ब्राह्मणः। गोतन्त्यं पाले। ६।२।७८। गोपालः। तन्तिपालः, अनियुक्तार्थो योगः। पाल इति किम् गोरक्षः। स्कोरिति कलोपः। गोरट, गोरठ्। गोरक्षौ गोरक्षः। तक्षिरक्षिभ्यांण्यन्ता— भ्यांक्विपि तु स्कोरिति न प्रवर्तते णिलोपस्य स्थानिवद् भावात्। पूर्वत्रासिद्धीये न स्थानिवदितितु, इहनास्ति। तस्य लोंपः संयोगादिलोपलत्वण त्वोष्विति निषेधात्। तस्मात् संयोगान्त लोप एव। गोरक् गोरग्, गोरक्षौ गोरक्षः। स्कोरिति कलोपं प्रति कुत्वस्यासिद्धत्वात् संयोगान्तलोप एव। यह शब्द संज्ञा में सस्वरसिद्ध होगा किन्तु कृञ् धातु को छोड़कर के होगा। रथकारो ब्राह्मणः। यहां कृञ् का ही प्रयोग है। गोपाल तन्तिपाल शब्दों को स्वर होगा। गो शब्द से उत्तर पाल होना परमावश्यक होगा तब पाल ऐसा क्यों कहां? गो शब्द से रक्ष परे रहते यहां स्वर नहीं होगा। जैसे—गोरक्ष, यहां गो शब्द रक्षा परत्व है। तक्षिरक्षि धातुओं से ण्यन्त से क्विप् करने पर भी यह गोरक्ष शब्द सिद्ध होता है। स्कोः, सूत्र की प्राप्ति भी नहीं होगी णिलोय को स्थानिवद् भाव

मानना होगा एवं पूर्वत्रासिद्धीयं स्थानिवद् भाव का बाधक नहीं होगा। निषेध संयोगादिलोप लत्वणत्व में ही प्रवर्तित होता है। अत: संयोगान्त लोप मानना उचित है। स्को:, मूत्र के कलोप के प्राप्ति कुत्व असिद्ध है। यथा—वेदमन्त्र भाग से—इयं गौ: पृश्निरक्रमी दसदन् मातरंपुर:, पितरञ्च प्रयन्तस्व:। यजु—अ० ३। मं० ६। गोत्रमिदं १ बज्र बाहुँ जयन्त मम प्रमृणन्तमोजसा इमं स जाता अनुवीर यध्वमिन्द्र सखायो अनुसंरभध्वम्, यजु० अ० १७। मं० ३८। गोभिर्न सोम मश्विना मा सरेण परिस्रुता समधात् सरस्वत्या स्वाहेन्द्रो सुतं मधु। यजु स० २०। ६६। वेद ब्राह्मण भाग से—इन्द्रस्त्वं प्राणतेजसा रुद्रोऽसि परिर्क्षिता। त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पति:। अ० २। मं० ९।

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न:।।
अ० २। १०।

इत्यादि मन्त्रों में गो और रक्ष पद का वही अर्थ है जो सर्वत्र प्रसिद्ध है। अथर्ववेद से—

अध्यक्षो वाजी मम कामउग्र कृणोतु मह्यामसपत्नमेव।
विश्वे देवा मम नाथाभवन्तु हवमायन्तु म इमम्।
ऊर्जो भागो निहितो य: पुरा,
व ऋषिप्रविष्टाय आभरैता:।
अयं यज्ञो गातु विन्नाथवित्प्रजाविदुग्र:
पशुविद्वीरविद्वो अस्तु।।

इत्यादि वेद मन्त्रों में नाथ शब्द का वही अर्थ है जो पाणिनी मुनि ने नाथृ नाधृ–याञ्चनोपतापैश्वर्याशी:षु इस धातु पाठ से व्यक्त किया है। याचक, उपतापक, दण्डदाता, आशीर्वाददाता ये चार अर्थ नाथ शब्द के होते हैं।

गोरक्षनाथ इस नाम को सूक्ष्म दृष्टि से देखने से इसी में शेष अशेष हो जाता है अर्थात् सब कुछ इसी में विलय हो जाता है।

गो–रक्ष–नाथ इन तीनों पदों पर क्रमशः विचार

(१) गो–का वाच्य जो पृथ्वी (धरा) केवल इस अर्थ को ग्रहण करने से अर्थ यह हुआ कि धारण करने वाला अर्थात् आश्रय देने वाला। इस अर्थ से सिद्ध हुआ कि जैसे मकान को धारण करने वाला व उसका आश्रय कौन है! उत्तर यह है कि उसकी चारों तरफ की भीतें हैं या भीतों की जगह में कोई थम्ब विशेष हो सकता है। ये भीतें और थम्ब हैं मकान को धारण करने वाले या मकान को आश्रय देने वाले हैं जैसे भीतों और थम्बों के बिना मकान नाम की कोई वस्तु नहीं हो सकती। इसी प्रकार इस समस्त लोक को धारण करने वाली पृथ्वी=धरा (धारण करने वाली) है। यदि यह धारण (आश्रय) न हो तो क्या भूतवर्ग का कोई आश्रय या धारण करने वाला हो सकता है तो उत्तर केवल यही होगा कि जब भूत वर्ग का आश्रय (धारण करने वाला) ही नहीं है तो तब भूत वर्ग नाम की वस्तु ही नहीं हो सकती बिना आधार के जैसे बिना भीतों के मकान नहीं हैं। इसी प्रकार 'गो' इसके पृथ्वी (धरा) अर्थात् धारण करने वाली, यह अर्थ लेने से ही धारणा करने वाले या आश्रय देने वाले सबों का ही ग्रहण

होता है और जिस प्रकार का भी कोई पदार्थ किसी पदार्थ को आश्रय दे रहा हो या धारण कर रहा हो या परस्पर एक दूसरे को धारण कर रहे हों। उन सबका ही गो के पृथ्वी (धरा) अर्थात् आश्रय देने वालों का या धारण करने वालों को ग्रहण होगा। जैसे मनुष्य कहने से, समस्त ब्रह्माण्ड के मनुष्यों का ग्रहण होता है। इसी प्रकार धरा (पृथ्वी) का जो आश्रय या धारण करने वाले अर्थों को लेकर सब धारण करने वालों का और आश्रय देने वालों का भी ग्रहण होगा। यथा धरा (पृथ्वी) ने समस्त प्राणि वर्ग तथा जल को धारण कर रखा है एवं जल ने पृथ्वी को धारण कर रखा है फिर जल को अग्नि ने और अग्नि को वायु ने वायु को आकाश ने इसी प्रकार इन पाँच महा भूतों को इनकी पञ्चतन्मात्राओं ने धारण कर रखा है और इन स्थूल सूक्ष्म महाभूतों को महत्तत्त्व या मूल प्रकृति ने धारण कर रखा है। मूल प्रकृति भी सर्वोपरि विराजमान किसी चेतन सत्तात्मक सच्चिदानन्द स्वरूप की ताक का आश्रय लेकर उसके किसी एक भाग में मग्न हो रही है। इसी प्रकार श्री गोरक्षनाथ के नाम के 'गो' इसके भी एक भाग के अनेकों अर्थों में से जो धरा अर्थ हैं अर्थात् जो आश्रय या धारण करने वाला अर्थ=वाच्य है। इसी में ही सर्व प्राणि तथा स्थूल सूक्ष्म स्वकार्य वर्ग सहित मूल प्रकृति का विलय गो पद के भी एक हिस्से में ही हो जाता है यथा परब्रह्म में सबका लय हो जाता है। इस प्रकार गोरक्षनाथ नाम सच्चिदानन्द स्वरूप परम सदाशिव का ही है तथा सच्चिदानन्द स्वरूप परम सदाशिव के बिना और प्रत्येक चराचर जड़ चेतन पदार्थ व्यक्ति एक दूसरे का आश्रय करके व्यवस्थित हो रहे हैं। इसी प्रकार 'गो' पद के जो अन्य अर्थ हैं सूर्य किरण सूर्य इन्द्रियें जल

स्वर्ग वाणी आदि भी प्रत्येक प्राकृतवर्ग को तथा जड़ चेतन व्यक्तियों को किसी ना किसी प्रकार से आश्रय देकर या धारण करके रक्षा कर रहे हैं और 'रक्ष' इस पद के अर्थ को सार्थक कर रहे हैं। अर्थात् किसी भी प्रकार से व आश्रय देने से या धारण करने से 'रक्ष'='रक्षा' करने के वाच्य (अर्थ) में ही सहायक होकर सफली भूत हो रहे हैं। ब्रह्माण्ड सहित जड़चेतन भूतवर्ग तथा प्रकृति को भी नाथ नाम के गुणों से यथा स्थान धारण करके तत्तत् को तत्र–२ व्यवस्थित रखने से नाथ यह नाम सार्थक हो रहा है। इस प्रकार गोरक्षनाथ नाम के गो अंश पर संक्षिप्त दृष्टिपात से विचार हुआ। दूसरा

(२) 'रक्ष'–किसी को किसी प्रकार धारण करना व किसी को किसी भी प्रकार से आश्रय देना व किसी भी प्रकार से सुरक्षित रखना ये सब रक्षा करने वाले की रक्षायें ही हैं।

(३) 'नाथ'–नाथृ धातु से बनता है।

चार अर्थों वाली नाथृ धातु से बने नाथ शब्द के भी वे चार अर्थों वाले ये चार शब्द हैं। याचक, उपतापक, आशीर्वाद दाता, ऐश्वर्यवान् हैं। आगे क्रमशः चारों के अर्थ हैं।

याचक–(१)

श्री गुरु गोरक्षनाथ जी स्वयं महेश्वर होते हुए भी लोक कल्याणार्थ लीलामय शरीर को धारण कर श्रद्धालु तथा आस्तिक भक्तों की भक्ति के वशवर्ती होकर उनके घरों पर "जय अलख निरञ्जन" कहकर भिक्षा माँगते हुए याचक के रूप में दिखाई पड़ते हुए भिक्षुक के बहाने अपने धार्मिक भक्तों के आतिथ्य सत्कार की भावनाओं को

जगाकर उन्हों की समस्त कामनाओं को सफल करते हुए तथा उनके हृदय से याचक भाव को समूल नष्ट करते हैं यथा पिता अपने प्रिय पुत्र धूली धूसरित को धूलि से उठाकर अपने हाथों से उस पर पड़ी हुई समस्त धूली को झाड़ देता है और अपने हाथों को मैला होने की कुछ भी परवाह नहीं करता एवं श्रीनाथ जी अपने भक्त श्रद्धालुओं के याचकता रूप मलिनभाव को स्वयं धारण करके उनकी इष्ट कामनाओं को पूर्णकर अन्त में उनको मोक्ष रूप परम पद देते हैं अथवा याचक के बहाने उनके दुष्कर्मों को छुड़ाने की याचना कर उनके याचक बनके उनका कल्याण करते हैं।

उपतापक–(२)

अविद्या–आदि पञ्चक्लेशों को समूल नष्ट करने वाले को 'नाथ' कहते हैं। वे पञ्चक्लेश योगदर्शन द्वारा दर्शित ये हैं।

(१) अविद्या, (अज्ञान) वस्तु के यथार्थ रूप को न जानना ही अविद्या है।

(२) अस्मिता–आत्मा और बुद्धि के परस्पर एकीभाव (एक हो जाने) को अस्मिता नाम क्लेश कहते हैं।

(३) राग–पूर्वानुभूत सुख का पुनः उसका स्मरण होने से उसके साधनों को जुटाने में जो तृष्णा लोभ है। वही राग नाम का क्लेश है।

(४) द्वेष–दुःखानुभव किये हुए पुरुष को जब अनुभूत हुए दुःख का स्मरण होता है; तब उस दुःख और दुःख के साधनों में जो द्वेष होता है; वही 'द्वेष' नाम का क्लेश है।

(५) अभिनिवेश–सम्पूर्ण भूमण्डल के प्राणियों को सदा यही इच्छा बनी रहती है कि मैं सदा ही रहा हूँ। मेरा नाश कभी न हो, यही

अभिनिवेश नाम का क्लेश है। इन पञ्च क्लेशों को योगबलादि से जिसने नष्ट कर दिया हो वही नाथ कहलाता है।

ऐश्वर्यवान् (ईश्वर)–(३)

अणिमादि अष्टसिद्धि नवनिद्धि संपन्न ईश्वर को भी नाथ कहते हैं। यह नाथ का वास्तविक अर्थ है।

आशीर्वादक=(आशीर्वाददाता)–(४)

दीन दुःखियों को तथा अपने भक्तजनों को शुभ आशीर्वाद देकर के कल्याण करने वाला नाथ कहाता है। उक्त नाथ शब्द के चारों ही अर्थ गुरु गोरक्षनाथ जी में पूर्ण घटते हैं। यथा–

स्थापयित्वा च यो धर्मान् सज्जनान भिरक्षति।
स्वात्मस्वरूपबोधेन गोरक्षोऽसौनिगद्यते।।१।।

प्रवृत्ति, निवृत्ति–आदि धर्मों का संस्थापक सज्जन साधु महात्माओं आदि की रक्षा करने वाले को गोरक्ष कहते हैं तथा अन्त में आत्मस्वरूप का बोध कराकर के जो संसार सागर से पार कर मोक्ष देने वाले को गोरक्ष कहते हैं।

प्रश्न–यह होता है! कि यदि किसी वस्तु के कुछ भाग मूल से पृथक् हो जावे तो मूल में कुछ त्रुटि (कमी) आवेगी एवं सदाशिव में से गोरक्षनाथ का रूपान्तर होने से सदाशिव में न्यूनता आई होगी। इसका उत्तर–यह है कि ये बातें सावयव वस्तु में हुआ करती हैं आत्मतत्त्व जो परमात्मा है न उसमें कमी आती है रूपान्तर होने से और न ही उसका भाग हो सकता है क्योंकि वह व्यापक होने से उससे बाहर कोई वस्तु, व्यक्ति जा नहीं सकती कि जहाँ वह न होवे। यथा श्रुति–

पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

वेद मन्त्र है अर्थ–उस पूर्ण परमात्मा से यह पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। उस पूर्ण के पूर्ण को लेकर (यह पूर्ण जगत्) उदय होता है और जो बकाया (शेष) रहता है वह बकाया भी पूर्ण ही रहता है अर्थात् न पैदा होने वाले में ही कमी है कोई और न पैदा करने वाले में कमी आई यही सदा शिव गुरु गोरक्षनाथ जी हैं।

।। इति गोरक्ष शब्द निरुक्तिसमाप्ता।।

किसी बालक द्वारा गोरक्षनाथ का माता–पिता समय जानना

जो आदिनाथ सदाशिव हैं वही गोरक्षनाथ जी हैं। इनके माता–पिता कौन थे और कौन से युग वर्ष महीने दिन में हुए थे। तब उस पूछने वाले से प्रथम यह पूछना चाहिये कि जो इस जगत् की अवस्थात्रय कारक है उसके गुरु माता–पिता युग वर्ष महीना दिन तथा दिन समय कौन से थे तो वे ही गुरु गोरक्षनाथ के हैं यदि वादी कहें कि मुझे तो उन्हों का पता नहीं है तो इसका उत्तर यही है कि उसे उनका पता न होना ही है। क्योंकि वही जागतिक अवस्थात्रय कारक सदाशिव ही गोरक्षनाथ जी हैं, वे ही सबके गुरु माता पिता होने से उनका माता पिता आदि कोई नहीं है। किन्तु यह बात दूसरी है कि वे जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। क्योंकि उस प्रभु की अघटित घटना पटीयसी मायारूपी लीला है। उससे वे संभव को असम्भव और असम्भव को संभव कर सकते हैं। अर्थात् यदि वह गुरु माता पिता आदि बनाना चाहें तो बना सकते हैं। यदि न चाहें तो उनको

इनके होने की आवश्यकता भी कोई नहीं और न ही उन पर किसी की विवशता है। वैसे तो वह रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव, रूप—२ के प्रतिरूप ही हो रहा है। प्रश्न—आप ही गुरु आप ही पिता आप ही पुत्र इत्यादि सृष्टिक्रम से विरुद्ध है। इसका उत्तर यही है कि अत्यल्पज्ञानशक्ति परमाणु जीव उसका सृष्टि क्रम क्या है तथा क्या नहीं है इस बात को तो वह स्वयं ही जानता है। जीव नहीं जान सकते यथा—अर्धनारीश्वर, नृसिंह, सगर के ६० हजार पुत्र चाहे वे जिस प्रकार भी उत्पन्न हुए हों तथा पूर्ण भक्त के कई वर्षों से कटे हुए हाथ पैर पुनः पूर्व से भी बढ़ कर बना देना।

गीता—पश्यामि देवांस्तव देव देहे।

सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।

ब्रह्माणमीशं कमतासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्

॥११—१५॥

अर्जुन—हे देव! मैं आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों को तथा अनेक भूत समुदायों को कमलासनस्थ ब्रह्मा को महादेव को एवं सर्व ऋषियों को देखता हूँ। अब इत्यादि में बताओ कौन सा सृष्टिक्रम है तुम्हारा या तुम्हारे पूर्वजों का। इस प्रकार उसके सृष्टिक्रम को वही जानता है। नर प्राणि की बुद्धि से बाहर की बात है यही सदाशिव गोरक्षनाथ रूप है सदाशिव ही आदिनाथ हैं आदिनाथ ही मत्स्येन्द्रनाथ के उपदेष्टा गुरु हैं। मत्स्येन्द्रनाथ ने हजारों वर्षों तक तपोयोग साधनोपरान्त गुरु की आज्ञा से संसार कल्याणार्थ योग प्रचार किया इस महायोगविद्या को पूर्ण साध कर इसके बल से जब तक चाहे संसार के समस्तैश्वर्य को भोग कर भी मुमुक्षु मोक्ष लाभ कर सकता है।

श्री गोरक्ष को लोकालोक सप्तश्रृंग मणि प्रदीप्तगिरिवर पर जाकर मत्स्येन्द्रनाथ जी को गुरु धारण करना पूर्वयोग सहायतार्थ दिये वचन को पूरा करना

जो समस्त ब्रह्माण्डरूप महादुर्ग की मर्यादारूप आधार शिला है वह उस मर्यादारूप दुर्ग की नींव आधार–शिला को सुदृढ़ मर्यादित करने के लिये मन को बनाकर तथा अखिल सौम्य सौन्दर्य शीलशैत्य पराक्रम सद्गुणगण की एक स्वात्मरूपमूर्ति होकर मनोजवियान् हो पूर्व शिव रूप से दिये वचन को पूर्णार्थ तथा योग प्रचार के लिये सहायता प्रदानार्थ एवं गुरु धारणार्थ लोकालोक मणिप्रदीप्त के शिखर पर जा पहुँचे जहां महासिद्धराज समाधि में स्थित थे तब श्री गोरक्ष ने स्वात्माभाव से मत्स्येन्द्रनाथ जी को सम्बोधित किया तो महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ जी समाधि से जागे तो श्री गोरक्ष जी ने गुरु भाव से उनके चरण कमलों पर प्रणाम कर दोनों हाथों से चरणों को स्पर्श किया और विनम्रभाव से उनकी आज्ञा में रहकर उनके पास रहने के लिये शिष्य भाव से प्रार्थना की तो मत्स्येन्द्रनाथ जी ने श्री गोरक्ष का निवास करना अपने पास स्वीकार कर लिया प्रतिदिन सायं प्रात: नमस्कार पूर्वक शुश्रुषा करते हुए कई वर्षों के बाद एक दिन परम प्रसन्न गुरुदेव नित्यनाथ जी को श्री गोरक्ष ने देखकर एकाकी से प्रार्थना की कि हे गुरुदेव! कृपया मुझे गुरु दीक्षा से दीक्षित करो यही मेरी परमाशा है। तब मत्स्येन्द्रनाथ जी ने उस बालक को सहज ही सर्वशक्तिगुणागार जान तथा सर्व सौम्य शील सौन्दर्य की मूर्ति समझकर बालक रूप श्री गोरक्ष की प्रार्थना स्वीकार कर ली तब सत्ययुग के

९५०५२६ वर्ष व्यतीत होकर प्रथम मास की शुक्ला सप्तमी शुभ दिन वार आदि को देखकर जो दिनमणि के दिन के प्रथम याम में सर्वतीर्थ प्रधानों का आह्वान कर उन सबका जल ले स्नान करके तथा विधिवत् आदिनाथ का पूजन कर एवं गुरु का पूजन कराकर वस्त्रों आदि का परिवर्तन करा और यथाविधि गुरुमन्त्र देकर यज्ञोपवीतादि से सुशोभित करके गोरक्ष के अन्त में नाथ लगाकर 'गोरक्षनाथ' जी यह नाम कि या इसके एक मास बाद भगवान नित्यनाथ जी ने श्री गोरक्षनाथ जी के कर्ण छिन्न करके मुद्रित कर दिया। मत्स्येन्द्रनाथ जी को पूर्वकाल में जो ज्ञान अपने गुरु आदिनाथ जी से उपलब्ध हुआ था वही महाज्ञान आज नित्यनाथ जी ने अपने परम शिष्य गोरक्षनाथ जी को उपलब्ध कराया और वही ज्ञान, स्वात्मज्ञानकपाटपाटन, प्रवीण है अर्थात् वही ब्रह्म ज्ञान कपाटपाटन दक्ष है, वही मोक्षद्वार कपाटपाटन, पटु कहा गया है। वही पूर्व समय में उमा सहित मत्स्येन्द्रनाथ में शिव ने संचारित किया और उसी महाज्ञान को नित्यनाथ जी ने पुन: शिव आदिनाथ के ही 'नामरूपान्तर गुरु गोरक्षनाथ के अर्पण किया, प्रिय शिष्य जानकर और इस ज्ञान से गोरक्षनाथ जी पूर्व ही समृद्ध तथा अध्यक्ष भी थे। किन्तु यह सब व्यापार त्रिदेव परामर्श उमा अभिमानशमनार्थ एवं मनुष्यशमर्थ हुआ। यह उस महाशक्ति सम्पन्न का व्यसन ही है। इसलिये स्वपूर्व रूप में ही मत्स्येन्द्रनाथ को सहायतार्थ वचन दिया था कि मनुष्यमात्र का शम् हो। यत: यह संसार को दिखाया है कि–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:। गीता–

श्रेष्ठजन जैसे आचरण करता है दूसरे साधारण लोक भी वैसे ही करते हैं। इस प्रकार श्रेष्ठ महानुभावों का श्रेष्ठ करना स्वाभाविक व्यसन ही होता है।

गोरक्षनाथादि नाथ महासिद्धों की सदैव विद्यमानता

[१]खण्डित्वा च कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते।
योगयुक्ता महासिद्धा अनन्ताभा बलान्विताः।।

अर्थ—योगयुक्त महासिद्ध योगी अनन्तप्रकाश और बल से युक्त हुए मृत्यु के बन्धन को काट कर अर्थात् मृत्यु को जीत कर ब्रह्माण्ड में विचर रहे हैं।

विविध सद्ग्रंथों में श्री गोरक्षनाथ का वर्णन

[२]तस्य चोत्तरकोणे तु वायुलोको महाद्युतिः।
तत्र वायुशरीराश्च सदानन्द महोदयाः।।१।।
सिद्धा दिव्या ऋषयश्च पवनाभ्यासिनोऽपरे।
गोरक्षप्रमुखाश्चान्ये योगिनो योगतत्पराः।।२।।

उसके उत्तर कोण में महाप्रकाश वाला वायुलोक है। उस वायुलोक में वायुप्रधान शरीर वाले पवना अभ्यासी महासिद्ध योगीलोक सदानन्द रूप महानुभाव तथा दिव्यर्षि लोक रह रहे हैं। इन सब योगतत्परों में गोरक्षनाथ प्रधान हैं। इससे स्पष्ट है कि महायोगी योगाभ्यासी विद्यमान ही है।

१—हठयोग प्रदीपिका में १ उपदेश। श्लो० ९,
२— ब्रह्माण्ड पुराण में ललितपुर वर्णन में।

[1]तस्माद् दक्षिणतो देवि! गोरक्षाश्रमरक्षकः।
यत्रसिद्धो महादेवि! गोरक्षो वसतेऽनिशम्॥१॥
तल्लिङ्गन्तु प्रवक्ष्यामि शृणु पुण्यतमं स्थलम्।
महातप्तजलं तत्र वर्तते सर्वदैव हि॥२॥
तत्र स्थित्वा सप्तरात्रं जपन् वै शिवमुत्तमम्।
सिद्धो भवति देवेशि! यथा गोरक्ष उत्तमः॥३॥

आदिनाथ—हे देवेशि! उससे दक्षिण की ओर अत्यन्त रमणीय एवं पवित्र गोरक्षाश्रम है यहां पर सिद्धाधिराज गोरक्षनाथ निवास कर्ता है। इस महापीठ का मैं आपको चिन्ह बताता हूँ यह आश्रम पुण्यतम है यहाँ सर्वदा अत्यन्त उष्ण जल रहता है जो सप्त रात वहाँ ही रह कर शिव का जप करता है वह साक्षात् गोरक्ष जैसा हो जाता है।

[2]शिवगोरक्षरूपेण योगशास्त्रं जुगोप ह ।
यमाद्यङ्गैर्यथास्थाने स्थापिता योगिनोऽपि च॥१॥

भगवान आदिनाथ गोरक्षरूप में आकर योग की तथा योगियों की रक्षा की। योगशास्त्र की सत्यता को यम नियम आदि अंगों द्वारा प्रमाणित किया।

[3]अहमेवास्मि गोरक्षोमद्रूपं तन्निबोधत।
योगमार्गप्रचाराय मया रूपमिदं धृतम्॥

१— स्कन्द पुराणान्तगँत केदार ख० ४२ अध्याय में ख०अ० ४५ पृ० ४६ तथा अ० ४६ पृ० ४७ में।
२— शिव पु० ख० ७ अ० में ब्रह्मा ने शिव के अवतारों में ही गोरक्षनाथ को कहा है।
३— महाकाल यो० शा० क० द्रुम में देवों को शंकर जी बता रहे हैं।

शंकर जी से देवों के पूछने पर कि गोरक्ष कौन है। शिव बोले—हे देवों! मैं ही गोरक्ष हूँ योगमार्ग के प्रचारार्थ मैंने ही यह रूप धारण किया है जो गोरक्ष है वही शिव है और जो शिव है वही गोरक्ष है।

[१]नित्यनाथादय: सिद्धा अत्रैव जपतत्परा:।
सिद्धिं प्राप्ता: पुरा देवि! मादृशास्ते न संशय:।।१।।
न तस्य भयलेशोऽस्ति तिष्ठतस्तत्र पीठके।
शीघ्रं वै लभते सिद्धिं यथ गोरक्षादय:।।२।।
वैशंपायनमासीनमुवाच जनमेजय:।
गीता गोरक्षनाथस्य कथयस्व महामुमे!
सुराचार्य श्रुणु त्वं च तामसं भावसंश्रितम्।
ज्ञानहीनं वृहच्छोकं भेदयुक्तं तु शंकितम्।।१।।

एक बार जब इन्द्र द्वारा बृहस्पति का अपमान हुआ—गुरु स्वर्ग को छोड़कर चले गये और इन्द्र भी ब्रह्म हत्या ग्रसित हुए तब इन्द्राणी ने असहाय होकर बृहस्पति को पतिब्रत रक्षार्थ बुलाया। बृहस्पति ने भी भगवान् गोरक्षनाथ जी के पास जाकर इन्द्राणी की दु:खावस्था का निवेदन किया तथा उसका उपाय पूछा जिसका वर्णन विशद रूप से गोरक्ष गीता में भी उपलब्ध है। सुराचार्य के शोक का कारण पूछकर आगे उसका उपाय श्रीनाथ ने बताकर बृहस्पति के शोक को निर्मूल किया। इसी वृतान्त को वैशम्पायन के मुख से जनमेजय ने सुना। स्कन्द पुराणहिमवत्खण्ड

१– स्कन्द पु० के० ख० अ० ४५ पृ० ४६ तथा अ० ४६ पृ० ४७ में हैं।

नेपालमाहात्म्य विरूपाक्षतीर्थ यात्रा प्रकरण सिद्धाचलस्थ मृगस्थली माहात्म्य में भगवान गोरक्षनाथ जी को अनेक सिद्धियों का प्रदाता कहा है यथा–

ब्रह्मदीपे महातीर्थे स्नात्वा दीपः प्रदीयते।
कार्तिकस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां च विशेषतः।।५२।।
गोरक्षनाथो योगेन्द्रो योगेनात्र समाश्रितः।
मत्स्येन्द्रेण समं नित्यं चौरंग्याद्यैश्च योगिभिः।।५३।।
तेषां योगश्च संसिद्धस्तत्र मृगस्थले द्विज।
पशुपतेः प्रसादात्ते योगं प्रापुरथार्हणम्।।५४।।
नानासिद्धगणैर्नित्यमत्रागत्य सुभक्तितः।
प्रस्तब्धस्तैर्महायोगो गोरक्षस्य प्रसादतः।।५५।
कार्तिकस्य चतुर्दश्यां कृष्णायां दृश्यते बुधः।
सिद्धाश्रमे पादुकास्य निष्पापास्ते न संशयः।।५६।।
त्रिरात्रं वसेत तत्र तं गोरक्षं स्मरन् धिया।
योगीश्वरो भवेदाशु सिद्धदेहो भवेत्सदा।।५७।

सिद्धाचलस्थ मृगस्थली स्थल निवासी अनेक सिद्धगण गोरक्षनाथ के प्रसाद से कृतार्थ होकर संसार में आदर्श हुए। भगवान पशुपति की यह विहार स्थली है तथा परम पवित्र सर्वश्रेष्ठ है सिद्धाचल मृगस्थली के चारों ओर बालाचतुर्दशी में पुरुष भ्रमण करता हुआ ब्रीहियों को विकीर्ण करता है वह प्रति ब्रीहि स्वर्ण रत्ति के पुण्य को प्राप्तकर्ता है।

१–गो० गी० पटल १ श्लो० ३ पटल द्वि० श्लो० ५८

[१]गोरक्षनाथस्य तपः प्रभावादाकृष्टचेताः किल चक्रवर्ती।
सहस्त्र बाहु वसुधाधिपोऽयं जगाम गोरक्ष गुरुं शरण्यम्।।
योगस्य जिज्ञास्यतमं बिदित्वा
मार्गं महेशस्य गुरोः सकाशात्।
जग्राह सोमान्वय चक्रवर्त्ती
गोरक्षनाथस्य बभूव शिष्यः।।१।।

सोमवंशवतंस समस्त वसुधातल चक्रवर्ती महाराजाधिराज सहस्त्रबाहु भगवान् गोरक्षनाथ के तप के प्रभाव से आकृष्ट होकर उनके पास गये और उस जिज्ञास्य अभिप्रेत योगमार्ग को ग्रहण किया जो कि आदिनाथ परम्परा से चला आया। अन्त में वे गुरु गोरक्षनाथ के शिष्य हो गये एवं अजेय योग शक्ति से युक्त हुए।

योगोपदेश सम्बन्धी आदिनाथ भगवान गुरु गोरक्षनाथ जी के कुछ एक महान ग्रन्थों का परिचय

सिद्धसिद्धान्तपद्धति, सिद्धान्तसंग्रह, गोरक्षपद्धति योग बीज गोरक्षबाणी आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं गोरक्षसंहिता भी नाथजी कृत है और हठयोग प्रदीपिका भी श्री नाथ जी के शिष्य स्वात्माराम प्रतीत हैं। ये ग्रन्थ आदिनाथ तथा गुरु गोरक्षनाथ जी को उन्हीं के महान कार्यों को उनके योगविद्या बल को प्रमाणित कर एवं अपने को लोक कल्याणार्थ जानकर पूर्ण काम हो रहे हैं।

१–युक्तेन्दुवृत्तबिन्दु में

भारतीय महासिद्ध योगीश्वरों और महर्षियों तथा योग की विशेषता

वैसे तो इस ब्रह्माण्डोदरगर्त्तगर्भ में न जाने कितने एक दर्शन दार्शनिक विद्यायें विद्वान साहित्यिक इतिहास इतिहासिक एवं कलायें कलाकार हो गये हैं किन्तु पक्षपात को तिलाञ्जलि देकर विवेचनात्मक विचार करें तो साफ–२ ज्ञात हो जाता है कि हमारे पूज्य पूर्वज भारतीय दर्शनकार महर्षि तथा हठयोगकार महोदय अध्यात्म विषय का लक्ष्य कर अपने अलौकिक ज्ञान गौरव और अगाध पाण्डित्य का परिचय दे गये हैं तथा बाल की खाल को खींचने में तथा खाल की बाल के मूल छिद्र में दृष्टिपात करने में जिस बुद्धि बल का सदुपयोग किया है उतना शायद ही आज तक किसी विदेशी दर्शन धुरन्धर ने किया हो। किन्तु यह सब कुछ ठीक होते हुए भी जब हम संतुलनात्मक से दृष्टिपात करते हैं तो प्रत्यक्ष भुक्ति मुक्ति रूप फलों को देने वाला योग ही निःसन्देह साद्य प्रत्यक्ष फलदाता सिद्ध होता है एवं जरा जन्मादि मरण भयादि दुःखों का अन्त कर अन्त में परम पद प्रदयोग ही है। यथार्थतः यही एक महाश्चर्य जननी विद्या है इसी के प्रभाव से विश्वामित्र ने राजा त्रिशंकु के लिये एक दूसरा स्वर्ग निर्माण कर डाला था एवं इसी धन के धनी वशिष्ठ जी ने भूपति दलीप की सन्तान निरोधक अदृश्य कारण का पता चला लिया था। इसी विद्या के सहज अध्यक्ष गुरु गोरक्षनाथजी ने कई वर्षों के कटे हाथ पांव वाले पूर्णभक्त को पूर्व से कई गुणा सुन्दर बनाकर इसी विद्या के द्वारा उसे सदा के लिए जीव कोटि से निर्मूल कर भवसागर से पार कर दिया एवं महाराजा भर्तृहरि की रानी भानुमती जो कि अकाल मृत्यु

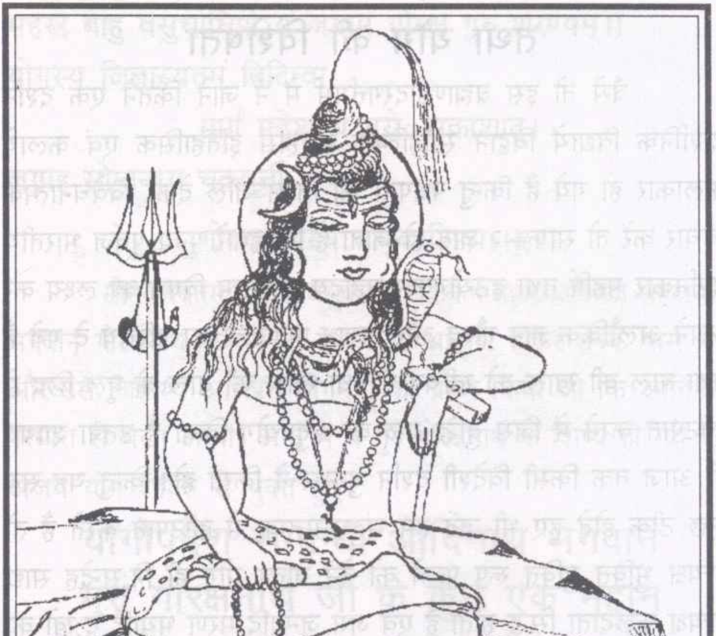

श्री आदिनाथ भगवान सदाशिव द्वारा योग तथा नाथ
सम्प्रदाय का उद्‌गम

म मृत हुई तथा चिता में हुई भस्मीभूता को पुन: भर्तृहरि के शोक को निर्मूल करने के लिये उसी भस्मीभूता रानी भानुमती को यथापूर्व थी तथावत् रूपलावण्यावपु: (शरीर) वाली वस्त्रभूषा विभूषिता कर दिखायी थी। वैसे ही सिद्ध धर्मनाथ जी ने बारह वर्ष के बाद जब समाधि खोली, तो उनके नेत्रों की ज्योति के तेज से बारह योजन तक समुद्र का जल सजीव दग्ध हो गया। इसी के बल से अगस्त्यर्षि ने चुल्लु में समस्त वारिधि को ले लिया और गौतमर्षि ने समय का ही परिवर्तन कर दिया था। तात्पर्य यही है कि यह सभी शक्तियां योगियों में योग की ही थीं। इस योगविद्या के प्रचार–प्रसार के लिये ही सदाशिव सर्वाप्तकाम गुरु गोरक्षनाथ नाम से मृत्यु लोक में शोभापन्न हुए यही मत्स्येन्द्रनाथ के प्रधान शिष्य हैं इन दोनों गुरु शिष्यों की जो महायोगबलयुक्त कार्यों की भारत के आबालवृद्ध युवक युवतियों के मस्तिष्क तथा हृदयों में अमिट छाप (अंकित) लगी आ रही है। इनका यश मध्याह्न के भगवान प्रचण्ड मार्तण्डवत् महोज्ज्वल देदीप्यमान हो रहा है और भुक्ति मुक्ति को पूर्ण गुरु द्वारा अति सद्य सुलभ करा देने वाला यह असदृश विद्याबल है जिस बल के ये अध्यक्ष थे तथा उस सनातन आत्मा को साक्षात्कार करने की शक्ति भी योगीश्वरों में ही होती है। यथा–शंकर जी कहते हैं? सर्व कल्याणकर साधनों में योग ही शिरोमणि है–

वद्धा येन प्रमुच्यन्ते नाथमार्गमत: परम्।
तमहं कथयिष्यामि तव प्रीत्या सुरेश्वरी।।
नाना मार्गेस्तु दुष्प्राप्यं कैवल्यं परमं पदं।
सिद्धमार्गेण लभ्येत नान्यथा शिवभाषितम्।।

हे सुरेश्वरि! जिस नाथ मार्ग के अनुष्ठान से बद्ध प्राणी विमुक्त होते हैं वह योग मार्ग (नाथ मार्ग) हैं जिसका आदि प्रवर्तक मैं हूँ मत्स्येन्द्रनाथादि महासिद्धों से सेवित हूँ, मैं तुझे सत्य कहता हूँ क्योंकि कैवल्य प्रापि अन्य शास्त्रों से अति दुष्कर है मोक्षपद सिद्ध मार्ग से ही प्राप्य और सुलभ है। मेरे वचन को हे उमे? सत्य जानना (न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्) अर्थात् योग युक्त योगी जब योगाग्नि मय शरीर के होने पर वह रोग जरा मृत्यु से मुक्त होता है एवं योगेश्वर गुरु गोरक्षनाथ जी ने नाथ सम्प्रदायार्थ तथा अन्य लोक कल्याणार्थ योग के गहन विषयों एवं निगूढ़ रहस्यों का सिद्ध सिद्धान्त पद्धति आदि में उद्घाटन कर दिया है और भी अनेक ग्रन्थों का जो सद्य कल्याणप्रद हैं उनका निर्माण कर लोकोपकार और सिद्ध सम्प्रदाय का मार्ग तथा नाम प्रशस्त कर दिया। सदा शिवरूप गुरु गोरक्षनाथ जी ने कहा है, सिद्धसिद्धान्त पद्धति में जो मेरे द्वारा दर्शित विधि से पूर्ण गुरु द्वारा योगानुष्ठान करता है। उसे प्रथम वर्ष में ही सिद्धि प्राप्त होने लग जाती है और द्वादश वर्षों में शिव तुल्य हो जाता है एवं स्वयं गुरु गोरक्षनाथ जी ने कहा है। यथा—

प्रथमेऽरोगतासिद्धिः, सर्वलोकप्रियो भवेत्।
कांक्षन्ते दर्शनं तस्य स्वात्मारूढस्य योगिनः।
द्वादशे शिवतुल्योऽसौ कर्ता हर्ता स्वयं भवेत्।
त्रैलोक्ये पूज्यते सिद्धः सत्यं श्री भैरवो यथा।।

प्रथम वर्ष में योगी को निरोगता और सर्व प्रियता सिद्ध होती है और उस स्वात्म में स्थित हुए योगी के दर्शन की सभी चाहना करते हैं और

बारहवें वर्ष में नित्य पूर्व से ही पूर्ण गुरुदर्शित विधि से योग साधता हुआ शिवतुल्य हो जाता है। स्वयं कर्ता हर्ता हो जाता है और तीनों लोकों में सिद्ध योगी भैरव के समान पूज्य होता है इस प्रकार गोरक्षनाथ जी के सभी ग्रन्थ असदृश ही हैं किन्तु इनमें से भी सिद्ध सि०प० यह सर्वोत्तम है।

यह अत्युक्ति न होगी

कि सदाशिवरूप परमेश्वर गुरु गोरक्षनाथ जी का आकाशवत् सर्वग अव्याहतगति वाला परमपावन धवलयश इस ब्रह्माण्ड का कोई राजिका (राई) भरकोणाश शायद ही खाली हो जहाँ पर न पहुँचा हो तथा इस नाथ नाम के गुरु शिष्य परंपरा के असंख्यों महासिद्धों परमयोगीश्वरों ब्रह्मज्ञानियों के महोज्ज्वल यशों का इस ब्रह्माण्ड में आना समाना भी असम्भव था यदि आकाश का इतस्तत:, अधोर्ध्व अवकाश न होता तो। इस बात को हम पहिले ही कह आये हैं कि गुरु गोरक्षनाथ जी परब्रह्मरूप साक्षात्परम शिव ही हैं। इस बात की पुष्टि महालेखक इतिहासिक प्रकाण्ड पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने रचित ग्रन्थ नाथ सम्प्रदाय के पृ० २५ से २६ तक लिखते हैं वस्तुत: यह सत्य ही प्रतीत होता है। क्योंकि चिद्रूपा महाशक्ति भवानी से भी परमसदा शिवरूप गोरक्षनाथ जी अगम्य एवं अदृष्ट पूर्व ही थे। इसीलिये शिवजी ने कहा था कि भवानी ने मुझे पूर्व काल में कहा था कि यदि आप शिव हो तो मैं शिवा हूँ। यदि आप ब्रह्मा विष्णु हो तो मैं सावित्री लक्ष्मी हूँ। यदि आप ब्रह्म हो तो मैं माया हूँ। इत्यादि तब शिव ने कहा—गोरक्षनाथ के साथ तुम किस रूप से हो। तब भवानी ने निरुत्तर हो करके कहा था कि हे प्रभो! आपकी शक्ति को

आप ही जानते हो, मेरी समझ से बाहर है। मैं व्याप्य हूँ। आप व्यापक हो।

विशेष बोद्धव्य

यद्यपि श्री गोरक्षनाथ जी भी नव नाथों में यथासम्बन्ध पद के नाते से नव नाथों में परस्पर सम्यक् समान भाव रखते थे। किन्तु इनके गुण और बल से प्रभावित हुए नव नाथ इनसे भी अधिक इनके प्रति परमादर एवं सम्मान रखते थे। नव नाथों में से भी आदिनाथ उदयनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ जी, गोरक्षनाथ जी को मानसिक भाव से परमादरणीय मानते थे। अन्य जो नव नाथ थे वे श्री गोरक्षनाथ जी को मानसिक तथा बाह्य दोनों भावों से परमादरणीय एवं परमपूज्य भाव से समझते और मानते थे। इसी प्रकार चौरासी सिद्ध भी गोरक्षनाथ के प्रति परमादरणीय भाव से ही भावित रहते थे। इति तृतीय पुष्प वीरनाथ द्वारा समाप्त हुआ।

❋

❋ अथ चतुर्थ पुष्प ❋

गुरु गोरक्षनाथ जी की सर्वदा विद्यमानता

जो सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म हैं वे ही परमसदाशिव नाम से कहे जाते हैं। इसकी अवस्था भेद आदिनाथ तथा परमसदाशिव का नामरूपान्तर श्री गोरक्षनाथ जी हैं। जो समस्त मायाजाल तथा काम क्रोध–राग द्वेषादि से अतीततत्त्व श्री गोरक्षनाथ जी हैं। ये जब जब महायोगविद्या का ह्रास या अतिह्रास हो जाता है तब–२ धर्माधर्मतत्त्वज्ञ जिज्ञासुओं के कल्याणार्थ उस महायोगविद्या को पुनः समृद्ध कर उसका प्रचार प्रसार करने एवं मनुष्यमात्र के कल्याणार्थ के व्यसनी होकर

अवतरित होते हैं। वह ह्रास चाहे महासर्गान्त के पुन: सृष्टिक्रम के उपक्रम में हो, चाहे प्रत्येक कल्पान्त के सृष्टिक्रम के उपक्रम में हो अथवा प्रत्येक युग के किसी भी भाग के उपक्रम में हो तो तभी परम पुनीत मायाजालातीत उस ह्रास को पूर्णार्थ पूर्णरूपेण उदित होते हैं तथा "गुरु गोरक्षनाथ" जी के नाम के सभी गुणों को सार्थक करते हैं उक्त हेतुओं से उन्हों का सदा ही होना नि:संदेह सुनिश्चित है। इस प्रकार परमेश्वर व परमेश्वर रूप महासिद्ध योगियों को कहना कि कब हुए, कब तक रहे यह कहना उनके प्रति उचित प्रतीत नहीं होता। क्योंकि वे तो सदा ही उक्त पदवी उपलब्ध होने पर विद्यमान ही रहते हैं। वे किसी सम्वत् सन् की कसौटियों पर कसे (परखे) नहीं जा सकते। अर्थात् उनका काल निर्णय पूर्णरूप से नहीं हो पाता। क्योंकि उनकी अनेक कौतुक करा महाशक्तियां अलौकिक होती हैं वहां लौकिक मायिक साधनों की गति नहीं होती अत: वहां व्यर्थ ही शताब्दियों का हिसाब करना या लगाना है। इस प्रकार के परमेश्वररूपी महासिद्ध योगी सदा ही हैं उनको श्रद्धा विश्वास शून्य जो शुष्क तर्क कुतर्क वितर्क उदाहरणयुक्तियां नहीं जान व स्पर्श कर सकतीं। वे उक्त महासिद्धयोगीश्वर तो श्रद्धा प्रेम से ही ज्ञातव्य हैं तथा अपने आपको जानना व न जानना उनकी स्वेच्छा पर भी निर्भर होता है।

सनकादिक सिद्धों द्वारा कृत श्री गोरक्षनाथाष्टक दूसरे के हिन्दी में कृत पद्यों की स्तुति के कुछ पद्य ये हैं–

ब्रह्मा शेष महेश नारद अष्टभैरव सिद्धयति।
ध्यावते दोउ पादपङ्कज ध्यावते सिद्ध गणपति।।

श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्।
जय श्री नाथ जी के चरण प्रणाम्यहम्।
जय हो यति गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्।
श्री गुरुदेव जी के चरण प्रणाम्यहम्।।१।।

अष्टसिद्धि नव निधि वन्दित ध्यावते रघुवर सिया।
व्याससुत प्रह्लाद सेवितं सेवते हनुमत प्रिय।
श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम् इत्यादिवत्।।२।

ज्ञान ध्यान अचिन्त्यरूप आत्म ज्योति सदा शिवोम्।
त्रिगुण रूप अतीत तुर्य्य श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्।।
—इत्यादि पूर्ववत्।। पद ६ वा।।

अक्षमाल विराजत सुन्दर चारु चन्दन मृगधरम्।
त्राटक मुद्रा ज्ञानपूर्ण कथन्ते सनकादिकम्।
श्री गोरक्ष के चरण प्रणाम्यहम्।।पूर्ववत्।।८।।

एवं सत्ययुगादियों में हुए सिद्धादियों द्वारा की गई स्तुति श्री गोरक्षनाथ जी की सत्ययुगादि की विद्यमानता को प्रमाणित करती है।

दत्तगोरक्ष का समीप–२ वास कर तप करना तथा परस्पर सत्कार

नाथ सम्प्रदायिक विद्वानों तथा गुरु गोरक्षनाथ जी के गृहस्थ प्रिय भक्तों का बिना किसी हिचकिचाहट से दृढ़ विश्वास तथा निश्चय है कि गुरु गोरक्षनाथ जी साक्षात्परब्रह्मरूप तथा सदाशिव ही थे। प्रश्न वे कौन थे? कहाँ किसके पैदा हुए? कब हुए? कब तक रहे????। क्रमशः उ०

परमेश्वर थे। अयोनिज थे, स्वसंकल्पदेह–धर थे। सदा ही हैं सदा ही रहेंगे। वे अनन्या भक्ति एवं परमशुद्ध स्वभावगम्य हैं। जो भी अजात व अजन्य है वह सदा ही है। किन्तु यह बात दूसरी है कि जीवों पर स्वभाविक करुणारूपी कारणवश हुए दृग्गोचर होते हैं स्वेच्छा से अन्यथा अदृश्य ही रहते हैं प्राणियों पर कारुणिक हुए योग शिक्षा का प्रचार प्रसार तो सदाशिव साक्षात् गोरक्षनाथरूप मूर्तिमान होकर ही करते हैं सारांश–यह है कि अदृश्य दृश्य होकर रहना, करना, न करना तो यह सब कुछ उनकी स्वेच्छाचारिता पर ही निर्भर है। उनके विषय में ऐसा क्यों, वैसा क्यों नहीं इत्यादि तर्क व्यर्थ होते हैं सर्व जन साधारण का तथा भ्रमण करने वाले नाथ सन्यासी साधुओं का यह कहना है कि पूर्वकाल में जिला जूनागढ़ में गिरिनार नामक पर्वत पर गुरु गोरक्षनाथ जी की तथा दत्तात्रेय जी की पृथक–पृथक दोनों की तपस्थलियां हैं यहां दोनों दीर्घ समय तक तप करते रहे हैं और दोनों की तपस्थलियों में कुछ दूरी का अन्तराल है। ये दोनों महाशक्तियां परमशिवरूप ही थी तथा दोनों में परस्पर परम स्नेह था। दोनों ही जब कोई वस्तु भोज्य पेय को स्व–स्व संकल्प से पैदा करते तो तब उस वस्तु को अपने–अपने आसन पर आसीन रहते हुए ही एक दूसरे को स्व–स्व संकल्प से वे वस्तुयें भेज दिया करते थे। एक समय ऐसा हुआ कि गोरक्षनाथ जी की चौरासी धूनियां और दत्तात्रेय जी के कमण्डलु कुण्ड इन दोनों के तप:स्थलों के मध्य में कुछ अन्तराल है अर्थात् कुछ दूरी के मध्य भाग में एक स्वेच्छाचारी सिद्ध भक्त आ विराजमान हुए। जो वस्तु दत्तस्वामी गुरु गोरक्षनाथ जी के लिए भेजते ता वह वस्तु वही स्वेच्छाचारी भक्त बीच में ही उतार कर अपने पास रख

लेता था एवं जो वस्तु पदार्थ गोरक्षनाथ जी दत्तात्रेय को भेजते थे वह भी वह बीच में ही उतार कर रख लेता था एवं एक दूसरे की वस्तु एक दूसरे के पास नहीं जाने देता था। तब दत्त गोरक्ष दोनों को एक दिन अकस्मात् विचार हुआ कि क्या गोरक्षनाथ जी की मुझ से कोई घृणा या क्षति तो नहीं हो गई जो कि कभी भी उनकी कृपा प्रसाद नहीं प्राप्त हुआ और इसी प्रकार गोरक्षनाथ जी ने भी विचार किया तो गोरक्षनाथ जी दत्त के स्थान की ओर चल दिये और दत्त गोरक्षनाथ जी के स्थान की ओर चल पड़े तो दोनों का ही उस भक्त सिद्ध के पास आकर मेल हुआ तो देखते क्या हैं कि दोनों ने जो–जो वस्तुएं भेजी थी वे उसी भक्त के दायें बायें पड़ी हैं तब दोनों यह कृत्य देखकर चकित रह गये। तो गोरक्षनाथ जी ने उससे जब कुछ पूछ–ताछ करी तो उसकी जिज्ञासा जाहिर हुई जो कि बहुत शीघ्रता चाहती थी। तब गुरु गोरक्षनाथ जी उसके कान छिन्न करने लगे तो दत्त जी बोले स्वामिन् अभी इसको कुछ समय तक वैसे ही रहने दो। तब गोरक्षनाथ जी ने उसको नाद जनेउ देकर औघड़ बना दिया। उसको औघड़ (स्वेच्छाचारी) इस नाम से कहने लगे और कुछ समय बाद उसके कर्णों में कुण्डल (मुद्रा) भी लटका दी। तब दत्त गोरक्ष दोनों ही एक दूसरे के भावों को जानकर अपने–अपने वास को चले गये। वह भक्त गुरु गोरक्षनाथ जी की सेवा शुश्रुषा करने लग गया और योगविद्या को गुरुदेव जी से अवगमन करने लगा। तभी से नाथों तथा सन्यासियों में जो तपस्वी साधु हैं उन्हों में यह कहावत चली आ रही है कि गोरक्ष दत्त की एका माया बीच में औघड़ आये समाया, यह कहावत पूर्व समय में हमने बहुत तपस्वी नाथ तथा सन्यासी साधुओं से सुनी है। इससे यह ज्ञात होता

है कि दत्तात्रेय जी के समय में भी गुरु गोरक्षनाथ जी विराजमान थे इन दोनों महायोगेश्वरों का परस्पर प्रेम तथा मिलाप सिद्ध होता है।

दूसरा प्रमाण दत्त गोरक्ष सम्वाद

यह सम्वाद गोरक्ष बोधवाणी संग्रह में है। संग्रहकर्ता स्वामी रामप्रकाश जी जोधपुर निवासी तथा प्रकाशन मूलचन्द अजमेर (राज०) वाले ने किया। यह पृष्ठ ५३ से ७२ तक चलता है। यथा—अथ दत्तगोरक्ष सम्वाद अंग—(१) स्वामी जी!

तुम ब्रह्मा की ब्रह्मचारी, तुम बान पुस्तक कि, दण्डधारी।
तुम जोगी कि जोग जुगता, कौण प्रसदे रमो स्वच्छन्द मुगता।।२।।

भावार्थ—हे स्वामिन्! आप गृहस्थ हो या ब्रह्मचारी, ग्रन्थधारक, वानप्रस्थ या सन्यासी कौन हो? सिद्ध योगी हो? या साधक हो? आप किसकी कृपा से मुक्त स्वतन्त्र विचरते हो।

दत्त उवाच—अवधू!

न हम ब्रह्म न ब्रह्मचारी, न हम बान पुस्तक दण्डधारी।
हम जोगी न जुगता, आप प्रसादे रमो स्वच्छन्द मुगता।।

भावार्थ—हे साधो! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास इन चारों आश्रमों से रहित सिद्धि सिद्ध साधक भी नहीं। मैं स्वयं अपनी कृपा से स्वतन्त्र मुक्त हूँ।

गोरक्ष उवाच—स्वामी जी!

आपा मेटणा सतगुरु थापणा अण परचे जग खाया।
गोरख कहे सुणो हो स्वामी, तुम कौण पुरुष कहाँ आया।।

भावार्थ—हे भगवन्! अहंकार रहित होकर सतगुरु शरण जाकर साधना करनी चाहिये। बिना साधना संसार नष्ट कर देगा। आप कौन हैं कहां से आये।

दत्त उवाच—हे साधो! मैं गुप्त से गुप्त हूँ। प्रकट से भी प्रकट हूँ। चैतन्य अनादि पुरुष की छाया (माया का प्रतीक) हूँ। शून्य पुरुष शून्य से आया हूँ।

अवधू? हों हूँ गुप्त से गुप्त। प्रकट रहता पुरुष की छाया।
दत्त कहे सुणो सत गोरख। मैं गैब पुरुष गैब से आया।।४।।

गोरख उवाच—स्वामी जी!

अजर बिन्दु अगाध बाई अप्रबल विप्लव की माया।
गोरख कहे सुणो हो स्वामी, क्यूं शान्ति जल बिम्ब की माया।।

अवधू!

कइ्यो न बाई अप्रबली न माया। आकार निराकार सुषमो न काया।
जलो न जल बिम्बोऽयनो न झाया। दत्तो—न गोरखो काया न छाया।।६।।

स्पष्टार्थ—गोरख उवाच!

स्वामी कौण जु१ आवे कौण जु जाये, जा बोले सो कहाँ समाय।
जो गम होय सो कहाए भेव, गोरख भणे सुणों दत्तदेव।।७।।

१जु=जो (दत्त उवाच) अवधू?

न कोई आवे न कोई जाय, कासा नाद माहि समाय।
एके सूत्र पोयो हार, संभाल गोरख कहै विचार।।८।।

गोरख उवाच—स्वामी जी!

कौण है माता कौण है पिता, गुरु उपदेश सिखाता।
कौण सु आसन करऊँ विश्राम सुण हो स्वामी आठों याम।।१०।।

(दत्त उवाच) अवधू!

धीरज मात सन्तोष पिता, ज्ञान गुरु उपदेश सिखाता।
अनिश आसन तहां विश्राम सांभल गोरख आठोंयाम।।१९।।

गोरख उवाच (१६) स्वामी जी!

कौण है काया कौण है माया, कौण भ्रम जग धन्धे लाया।
अपार धन्धा का कहिये भेव, गोरख भणे सुणो दत्तदेव।।११।।

दत्त उवाच—अवधू

अनकल्पन्ता लागी माया, करम आचार तहां लौं माया।
ज्ञान बिना जग धन्धे लाया, संभाल गोरख भेद बताया।।३२।।

गोरख उवाच—स्वामी जी!

कौण तत्त्व तुम रहो समाय, कौण तत्त्व तुम मध्ये आये।
कौण परचे तुम कहते भेव, गोरख भणे सुणो दत्त देव।।

दत्त उवाच—अवधू!

ज्ञान तत्त्व मैं रहूँ समाय, चैतन्य तत्त्व मों मैं आय।
त्रिगुण परचे गुरु गम कोई, निश्चय धर्म ज्ञान गम सोई।।४८।।

गोरख उवाच—स्वामी जी!

तुमेव दत्त तुमैव आदि मध्य तुम जाणो भेव।
नारायण तुम कृपाल, तुम हो सकल विश्व के पाल।।४९।।

दत्त उवाच—अवधू!

तुम हो गोरक्ष तुम हो रक्षपाल। अनन्त सिद्धों में तुम हो भूपाल।
तुम ही शम्भु हो निर्वाण प्रणवे दत्त गोरक्ष प्रणाम्।।५०।।

गोरक्ष उवाच—स्वामी जी!

दर्शन तुम्हारा देव, आदि अन्त मध्य पाया।
गोरख भणे दत्त प्रणाम, भोग योग में परम निधान।।५१।।

इन शब्दों के अतिरिक्त दोनों महादेवों के सम्वाद के छन्द बहुत से यहां नहीं लिखे हैं जो गोरख बोध में ही हैं। इसके बाद दोनों महाशक्तिशालियों ने एक दूसरे को प्रणाम करके सम्वाद में अपने–२ रचे छन्द ५० तथा ५१ में एक दूसरे के महत्त्व का परिचय देकर तथा सम्मानित कर प्रणामपूर्वक परस्पर सम्वाद समाप्त किया एवं यह सिद्ध हुआ कि जब दत्तात्रेय थे तभी गोरक्षनाथ जी भी विद्यमान थे तब ही उक्त सम्वाद और गिरिनार वाला पार्श्ववर्ती दोनों का तप तथा परस्पर में सम्मान और मेल सिद्ध होते हैं। इस प्रकार एक दूसरे की समसामयिकता को उक्त दत्त गोरक्ष सम्वाद सिद्ध करता है तथा दोनों महाबलवान योगेश्वरों का एक समय में पास–२ रहकर गिरिनार वाला तपोवास आदि भी यही प्रमाणित करता है। उक्त ५०वें छन्द में दत्त जी कहते हैं कि हे गोरक्ष तुम रक्षपाल हो, अनन्त सिद्ध के सम्राट हो तथा शम्भुनाथ आदिनाथ सदाशिव हो परम निर्वाण भी आप ही हो ऐसे आपको बारम्बार मेरा प्रणाम हो एवं दत्त जी ने गोरक्षनाथ जी को कहा तथा गोरक्षनाथ जी ने भोग योग का परम निधान कहकर प्रणाम किया ५१वें छन्द में एवं सदाशिवरूप श्री गोरक्षनाथ जी तो अजन्मा अजरामर सदा ही हैं। सत्यादि युगों में ही केवल उनकी विद्यमानता को कहना तो उनका निरादर तथा मेरे जैसे कम बुद्धिमानों की ही दी हुई यह उपमा है। वे तो सदाशिव तथा परब्रह्म ही होने से आसत्ययुगादियों का भी उनके लिये व्यवहार करना किञ्चनकर ही है क्योंकि जब सत्ययुगादियों का व्यवहार नहीं होता तो तब भी तो वे विद्यमान ही रहते हैं।

श्री नाथ तीर्थावली के अनुसार

श्रीनाथतीर्थावली अयोनिशंकर भगवान् गोरक्षनाथ के तीर्थ स्थानों का संक्षिप्त संग्रह वीरभूमि के वीर राजधानी योधपुर के राजयोगी महाराजाधिराज श्री मानसिंह ने किया था जो यह उस महाराजाधिराज द्वारा रचित यह ग्रन्थ चार सौ इकतालिस संस्कृत के श्लोकों में है। इसके अनुसार भिन्न–२ युगों में वहां–२ की जनोक्तियों से प्रमाणित हुए युगादियों में स्थानरूपी कार्यों से कारण (कर्ता) रूपी आचार्यों का समय सिद्ध होता है अर्थात् जिस–२ देशस्थ में तीर्थ स्थान हैं वहां–२ की जनता की परम्परा से चली आ रही जनोक्तियां भी उस–२ युग समय की प्रमाणभूता होती हैं एवं श्री नाथतीर्थावली में स्थानों के युग सत्यत्रेतादिकों को जनोक्तियां बतलाती हैं और श्री नाथ निर्मित स्थान ही कर्ता को बताते हैं अर्थात् कार्य अपने कारण को बतलाते हैं। यथा–

तदधो वर्तते तीर्थं श्री गोरक्षकमण्डलुः।
श्री नाथस्यैवशैलोऽयं युगादिस्थानमुच्यते।।२७।।

अर्थ–सौराष्ट्र में रैवत पर्वत के नीचे गोरक्षकमण्डलु नामक तीर्थ है। यह श्रीनाथ जी का पर्वतराज कहा जाता है जो युगों के आदि का तीर्थ स्थान है ऐसी इसकी जनोक्ति है।

तत्रश्रीमध्यनाथस्य मन्दिरं राजते शुभम्।
लिंगात्मा वामदेवोऽसौ तत्र भाति निरन्तरम्।।८८।।

अर्थ–वहीं श्री मध्यनाथ जी का मन्दिर विराजमान है तथा लिंगात्मा वामदेव का निवास स्थान है जो यहां सदा निवास करते हैं।

युगादिपदमास्तेऽदो नाथस्य परमाद्भुतम्।
अमुष्मै तीर्थराजाय भूयो भूयो नमो नमः॥९१॥

अर्थ–वहीं पर श्रीनाथ जी का आदि युग का तीर्थ स्थान तथा आसन विद्यमान है। उस तीर्थराज को मुझ राजा मानसिंह का बारम्बार प्रणाम हो।

ख्यातं पर्शुपुरं नाथस्थानं सत्ययुगावधि।
मन्दिरं तत्र नाथस्य बृहदुच्चैस्तरं स्थितम्॥२८२॥

अर्थ–(उस तीर्थ राज को मुझ नृप मानसिंह का बारम्बार प्रणाम स्वीकार हो जो जलालाबाद से पचास कोश दूर है वह बड़ा नगर है) पर्शुपुर नाम से सत्ययुग से ही नाथ तीर्थ स्थान विख्यात है। वह श्रीनाथ जी का बहुत ऊँचा मन्दिर है।

सप्ततिकोशतः सिद्धैर्दृश्यते तट्टिलोषितैः।
तन्मन्दिरान्तः कूपोऽस्ति श्रीनाथकरनिर्मितः॥२८३॥

अर्थ–वहां उस टिल्ले पर स्थित सिद्धों द्वारा देखने से वह मन्दिर सत्तर कोश की दूरी पर से भी दिखाई देता है तथा असंख्य युग सम्बन्धी राजते तत्र पूजनम्।

तद्रक्षको रत्ननाथो राजते तत्र सम्मुखे॥३१३॥

अर्थ–वहाँ उस पात्र की रक्षार्थ उसके सम्मुख सिद्ध रत्ननाथ रक्षक विराजमान हैं तथा असंख्य युग सम्बन्धी पूजन वहाँ शोभायमान है।

बालका यावदज्ञानमर्चयन्ति तदासनम्।
आसने ज्योतिषोऽप्यग्रे बीजं गोधूमसम्भवम्॥४२२॥

सपादसेटकमितं तत्रत्यानां विराजते।
स्थानं युगादिसंसिद्धं नाथप्रियकरंहि तत्।।४२३।।

अर्थ—जहाँ के लोगों के अज्ञान बालक उस आसन की पूजा करते हैं ज्योति के आगे आसन पर भी गोधूम से उत्पन्न बीजों के सवा सेर से पूजन करते हैं अर्थात् उस आसन की पूजा वहां के निवासियों के अज्ञान बालक सवा सेर गोधूम दानों से करते हैं। वह स्थान आदियुग (सत्य युग) से सिद्ध श्रीनाथ का प्रिय है।

राजते पुरतस्यस्य देवदारुर्महातरु:।
तमेव परमं स्थानं सिद्धं सत्ययुगादित:।।४२६।।

अर्थ—उसके आगे महान देवदारु का पेड़ विराजमान है। सत्य युग के प्रारम्भ से ही वह स्थान परम प्रसिद्ध है। यहीं योगी लोग नवरात्रों में खड्ग धारण करते हैं। उस तीर्थ राज को मुझ मानसिंह का बारम्बार प्रणाम हो।

इत्यादि राजयोगी राजाधिराज महाराज मानसिंह द्वारा विरचित श्रीनाथतीर्थावली में दर्शित स्थानों के निष्पाद्य निष्पादक भाव द्वारा सत्ययुग के आदि में ही श्री गोरक्षनाथ जी की विद्यमानता को परम प्रमाणित करते हैं। इस प्रकार स्वात्मानन्दस्वरूप में मग्न महायोगेश्वर योगानन्द प्रदानार्थ और प्राणिमात्र के कल्याणार्थ कालदण्ड को खण्डन कर चारों युगों में विद्यमान रहते एवं दृश्य अदृश्य दोनों रूपों में क्रीड़ा करते रहते हैं। साक्षात् आदिनाथ रूप से निरन्तर भी अभिव्यक्त रहते हैं। सर्वयोगाध्यक्ष अखिलयोगवित् महामहिम महातपस्वी महासिद्ध योगी तथा स्वभाविक महाज्ञानी ब्रह्मज्ञानी हैं और अनेक राजा महाराजा तथा साधारण जन जनता

को भी योगामृत देकर अजरामर किया और स्वयं साक्षात् शिव ही हैं महायोगामृत से तृप्त अक्षय निर्विकार अमायिक योगी राजाधिराजेश्वर हैं जिन्हों का व्यक्तित्व दर्शन नाथ योग तथा योगसर्वस्व का एवं शिष्टाचारता का दर्शन ही है। नाथ सम्प्रदाय परम्परा अनुश्रुति के अनुसार महायोगेश्वर गोरक्ष करुणानिधान चारों युगों में विद्यमान हैं। उनका अमरकाय तथा देहसिद्ध होने में भारतीय तथा पश्चात्य ऐतिहासिक विद्वानों का भी मत है पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी कृति नाथ सम्प्रदाय ग्रन्थ में लिखते हैं कि गोरक्षनाथ त्रिदेवस्वरूप साक्षात्परब्रह्म सदा शिव सर्वदा अजरामर हैं एवं इतिहास लेखक तथा अनेक इतिहासों का अन्वेषक पश्चात्य विद्वान महामति ब्रिग्स ने अपनी "गोरक्षनाथ एण्ड दी कनफटा–योगीज" पुस्तक के २२८ पृष्ठ में एक ऐसी परम्परा को लिखते हैं कि श्री गोरक्षनाथ जी सत्ययुग में पंजाब के जिला जेलम में तथा जेहलम नदी के तट के निकट पर्वत टिल्ला में निवास किया तथा इसी पर्वत पर और पेशावर (पर्शुपुर) महानगर में गोरक्ष खटड़ी नाम के स्थान में अर्थात् इन दोनों स्थानों में उन्होंने तप किया एवं त्रेता युग में उन्होंने उत्तर प्रदेश गोरखपुर में जहाँ आजकल गोरक्षनाथ मन्दिर है वहाँ तप किया और द्वापर में वे द्वारिका (हर भुज) में विराजमान हुए। कलियुग में उनका प्राक्टय सौराष्ट्र काठियावाड़ में गोरक्षमठ स्थान है इसको गोरख मढ़ी भी कहते हैं एवं महामति ब्रिग्स का मत है। तात्पर्य यही है कि वे अजरामर होने के कारण अपनी योगमाया से चारों युगों को कृतार्थ प्रभावित करते आ रहे हैं। महायोगेश्वर गोरक्षनाथ जी की आविर्भूति तथा विद्यमानता चारों युगों में समान रूप से स्वतः सिद्ध है। जो सत्ययुग में पंजाब जिला जेहलम में गोरख टिल्ला

नामक गिरिवर पर उनकी तपोभूमि त्रिलोक विख्यात है। त्रेतायुग में गोरखपुर में गोरखनाथ मठ तथा मन्दिर इनकी साधना का पुण्य क्षेत्र है। जहाँ पर रघु और राम ने उनके दर्शन प्राप्त कर और ज्ञानामृत श्रवण कर अपने आपको कृतार्थ किया था। यह जो आदिनाथ तथा गोरक्षनाथ द्वारा प्रतिपादित शासित ज्ञापित सेवित महाज्ञान है इसीलिये निःसंदेह है यह केवल वाग्जाल ही नहीं है परम कल्याण प्रदाता है। यही उमा मत्स्येन्द्रनाथ जी को पुरा आदिनाथ जी ने दिया एवं शुक ने भी सुना था। महामति मलिक मुहम्मद ने कहा है कि योगी तभी सिद्धि को प्राप्त होता है जब उसकी महासिद्ध राजाधिराज गुरु गोरक्षनाथ जी से भेंट होती है। यथा—

[१]बिनु गुरु पन्थ न पाइय, भूलै सो जो भेंट।
योगी सिद्ध होइ तब, जब गोरख सौं भेंट।।

मोक्ष तथा प्राणायाम

[२]आसनेन रुजोहन्ति प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुञ्चति।।१।।
मनोधैर्यं धारणया ध्यानाच्चैतन्यमद्‌भुतम्।
समाधेर्मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वाकर्म शुभाशुभम्।।२।।

उपशमः (सर्वेन्द्रियों पर जय) मन का दमन (मन का नियमन) करना है। विकारों से इन्द्रियों को प्रत्याहरण करना प्रत्याहार है। मुद्राओं तथा बन्धों के अभ्यास से पक्व शरीर की प्राप्ति होती है।

१—पदमावत ३१७ पृ० में
२—विवेक मार्तण्ड में ११५—११६

अपक्वाः परिपक्वाश्च द्विविधा देहिनः स्मृताः।
[२]अपक्वोयोगहीनस्तु पक्वो योगेन देहिनः।।१।।
पक्वोयोगाग्निना देहो ह्यजढशोक विवर्जितः।
जढस्तु पार्थिवोज्ञेयश्चापक्वो दुःखदो भवेत्।।२।।

अर्थ—देहधारी मनुष्य दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो योगहीन होने के कारण अपक्व (कच्चे) देह वाले होते हैं। दूसरे योगयुक्त होकर पक्व (पक्के) देह वाले होते हैं। जो मनुष्य योगाग्नि द्वारा पक्व देह वाले अपने चैतन्यस्वरूप में स्थित होते हैं और शोक रहित होते हैं। जो मनुष्य योगाभ्यास से हीन होकर कच्चे देह वाले होते हैं और अपक्व देह वाले आत्मज्ञान हीन अविवेकी होते हैं प्रायः उनको उनका अपक्व शरीर दुःख देता रहता है। प्राणायाम प्राण की स्थिरता है। प्राणायाम के सम्बन्ध में गोरक्षनाथ जी ने कहा है कि शरीर की नाड़ियों में प्राण प्रवाह प्रयास पूर्वक स्थिर रखने की क्रिया ही प्राणायाम है।

[१]यावद् वायुः स्थितो दोहे तावज्जीवं न मुञ्चति।

योग साधना का एक मुख्यांग पवन का संयम ही प्राणायाम है।

परम पद

प्रसादात्स्वगुरोः, सम्यक् प्राप्यते परमं पदम्।

गुरु गोरक्षनाथ जी ने कहा है कि समर्थ सच्चे गुरु की प्रसन्नता में ही परम पद की प्राप्ति होती है। गुरु गोरक्षनाथ जी ने सत्य को ही

१—योगबीज में ३४—३६
२—फैजुल्लाकृत गोरख विजय नाटक

सर्वोपरि कर्तव्य व शिष्टाचार कहा है। वह सत्याचार त्रिधा होता है। मानसिक, वाचिक, कायिक इन तीनों से जो भी व्यवहार हो वह निष्कपट सरल प्राणीमात्र का हितनिहित होना ही सत्य व उचित है मनुष्य की सार्थकता है। गोरक्षवाणी में संग्रह शिष्टपुराण में उन्होंने कहा है कि सत्य सबसे बड़ा जीवन शास्त्र है। "सच्च उपरान्ति शास्त्र नाहीं" गोरक्षनाथ जी ने मनुष्य मात्र के हितार्थ पियूष वचन कहे हैं प्राणिमात्र के लिये दयार्द्रित होना मनुष्यमात्र का कर्तव्य है।

इटली के प्रख्यात विद्वान एल.पी. टैसिटरी का कथन है कि

श्री गोरक्षनाथ जी कनफटा योगी नाथ सम्प्रदाय के अधिष्ठाता तथा विविध प्रतिभा योग शक्तियों से सुसम्पन्न थे। उनके अनुयायी साधु कुण्डलों वाले दर्शनी बोले जाते हैं तथा गोरक्षपन्थी कहाते हैं। इन्होंने अनेक योगियों को बौद्ध धर्म के प्रभाव से मुक्त किया और अनेक बौद्ध धर्मी नागार्जुनादियों को अपने प्रभाव में लाकर प्रभावित किया। गोरक्षनाथ के धर्म की प्रधानता विशेष सार्वजनीनता एवं इसका द्वार सब सच्चे जिज्ञासुओं के लिये खुला है। वह गोरक्षनाथ बहुत दीर्घजीवी प्रमाणिक होता है और उनके रचित सिद्धसिद्धान्त पद्धति आदि ग्रन्थों की शैली से तथा समय–२ की भाषा शब्दों से प्रतीत होता है कि उनका योग सनातन है एवं उनके प्रवचन लिपिबद्ध साक्षात् लोक वेद सन्निभ तथा अनेक प्रवचन वेद से भी गम्भीरता रखते है। वे अधिक प्रमाणिक माने जाते हैं। "१ गोरक्षवचन जथ बेदरे प्रमाण" इत्यादि।

गोरक्षनाथ जी का मनुष्यमात्रार्थ अनुग्रह

द्वैताद्वैतविवर्जित ब्रह्म ही अलख निरञ्जन है। गुरु गोरक्षनाथ जी ने निरंजन तत्त्व को अपनी रचना "महार्थमञ्जरी में कहा है कि अद्वय और द्वैताद्वैत के उत्तर (परे) हैं निर्विकार संशुद्ध है भगवदनुग्रहैक साध्य है। भवभय का हरण करने वाला प्राणियों के लिये मुक्ति प्रदान मार्ग का सोपान है। इस निरञ्जन सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वसंवेद्य तत्त्व को श्री गोरक्षनाथ जी ने प्रकाशित किया प्राणिमात्र के श्रेयस्पद प्राप्ति के लिये एवं श्रीनाथ जी ने अपनी रचनाओं में तात्विक विश्लेषण के माध्यम से सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह, गोरक्ष पद्धति, विवेक मार्तण्ड, अमनस्कयोग, महार्थमञ्जरी, गोरक्ष संहिता इत्यादि संस्कृत ग्रन्थ गुरु गोरखनाथ जी की ये मौक्तिक मालायें हैं और गोरखबाणी इनकी हिन्दी की कृति और भी कई ग्रन्थ इनके रचित हैं। इन ग्रन्थों में विशेषकर स्वसिद्धान्त से मन्तव्य तत्त्व पर हठ योग, अमनस्कयोग, अष्टांगयोग पर सूक्ष्मरूप से प्रकाश डाला है।

[२]"ग्यान सरीखा गुरु न मिलिया, चित्त सरीखा चेला।
मन सरीखा मेलु न मिलिया, तीर्थें गोरख फिरै अकेला।।"

गुरु गोरखनाथ जी ने प्राण पुरुष का अन्वेषण कर उसे सम्प्रज्ञात करके मनुष्यमात्र के त्रिविध ताप विमोचनार्थ कहा है कि ज्ञान ही सबसे महान गुरु है और चित्त ही महान शिष्य है। ज्ञान और चित्त का योग सिद्ध कर एकाकी स्वात्मानन्दरूपी महान स्वात्मपरमात्मैक्य में भ्रमण करें। यही श्रेय है।

२–गोरक्षवाणी शब्दी १८९

योगाचार्य श्री गोरक्षनाथ

योगाचार्य श्री भगवान गोरक्षनाथ जी सदा ही विद्यमान हैं किन्तु भक्तिभावुक के लिये दृष्ट ही हैं तथा अभावुक के लिये अदृष्ट ही रहते हैं। आचार्य–

आचिनोति हि शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमेवाचरत्येष आर्चायस्तेन कथ्यते।।१।।

अर्थ–वेदशास्त्रादि से प्रतिपादित सिद्धान्तों के विधि–निषेध धर्माधर्म कर्मों का पृथक् संग्रह करने एवं दर्शाने वाला तथा साद्यन्त निगमागमों का वेत्ता आचार्य शब्द से निर्दिष्ट होता हैं और स्वयं भी जो निगमागमों की विधि का पालन अनुसरण करता हो।

नाथ मत में उक्त आचार्य से विशेषता और भगवान

[१]सर्वासां निजवृत्तीनां प्रसृतिं भजते लयम्।
सभवेत्सिद्धसिद्धान्ते सिद्धयोगी महाबलः।।१।।

अर्थ–समस्त इन्द्रियों तथा मानसिक वृत्तियों को लीन (निवृत्त) कर दिया है जिसने सिद्धों के सिद्धान्त में महाशक्तिशाली निखल निगमागमों के ज्ञान से भी सम्पन्न आचार्य कहाता है।

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूताना मागतिं गतिम्।
वेत्तिविद्यामविद्याञ्च सवाच्यो भगवानिति।।१।।

अर्थ–उत्पत्ति प्रलय को प्राणियों के गमनागमन को विद्या

१–सि० सि० प्र० के ६ उ० में।

अविद्या इन सबको जो प्रत्यक्ष रूप से सम्यक् जानता है। वही भगवान् इस पद का वाच्य है। तथैव

ऐश्वर्यम्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य, षण्णां भग इतीरितः।।१।।

समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश श्री, वैराग्य, मोक्ष इन षट् से विशिष्ट भगवान पद वाच्य है।

पुनः कुछ गोरक्ष शब्द की व्युत्पत्ति में प्रकारान्तर से विशेषता दिखाते हैं

गोरक्षतीति गोरक्षः। रक्षतीति रक्षः—गवां, अर्थात् 'गो इति पदवाच्यानां रक्षः, इति गोरक्षः।'

स्वर्गेषु पशुवाग्वज्र दिङ्नेत्रघृणि भूजले।
गौर्नादित्ये बलीवर्दे किरण क्रतुभेदयोः। इत्यमरः।
स्त्रीषु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि।
नृस्त्रियोः स्वर्गबज्राम्बु रश्मिदृग्बाणलोमषु।।१।।
गौः स्वर्गेच बलीवर्दे रश्मौ च कुलिशे पुनान्ः।

इति केशवः।

गो नाम स्वर्ग का। गो नाम बाण का। गो नाम पशु का। गो नाम वाणी का। गो नाम बज्र का। गो नाम दिशा का। गो नाम नेत्र का। गो नाम किरण का। गो नाम भूमि का। गो नाम जल का। गो नाम सूर्य का। गो नाम बैल का। गो नाम यज्ञ विशेष का। गो नाम सुगन्धि का। गो नाम लोम का। गो नाम इन्द्रियों का इत्यादि 'गो' इस पद के वाच्य जो हैं इन सबका गो पद से ग्रहण होता है। इन सबकी जो रक्षा करता है वह गोरक्ष पद का वाच्य है।

[१]स्थापयित्वा च यो धर्मान्सज्जनानभिरक्षति।
स्वात्मस्वरूपबोधेन गोरक्षोऽसौ निगद्यते।।

अर्थ—धर्म की स्थापना करके योगज्ञान द्वारा सज्जनों की जो रक्षा करे स्वात्मा का बोध करावे उसे गोरक्ष कहते हैं।

[२]गकारो गुणसंयुक्तो रकारो रूपलक्षणः।
क्षकारेणाऽक्षयं ब्रह्म श्री गोरक्षो नमस्तुते।।

गकार गुण मात्र का परिचायक है। रकार रूपमात्र का उपलक्षक हैं। इस प्रकार क्षकार अक्षर ब्रह्म का बोधक है। ईदृश गोरक्ष को हम नमस्कार करते हैं।

त्रिदेवेव महासिद्धयोगी व युक्तयोगी की अजरामरता

ब्रह्मविष्णुमहेशानां प्रलयेष्वपि योगिनाम्।
नास्ति पातो लयस्थानां महातत्त्वे विवर्तीनाम्।।

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों का महतत्त्वे विवर्ती योगियों का प्रलय में पात नहीं देवों की अवधि (आयु) पुराणों में कहते हैं।

क्रमशः त्रिदेवों की अवधिकथन

चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते।

अर्थ—चारों युगों का एक महायुग होता है एवं एक हजार

१—सि० सि० प० प्र० उ० के गूढ़ार्थ दीपिका में
२—गो० सि० सं० १।८

महायुगों का ब्रह्मदेव का एक दिन होता है। दो हजार महायुगों का ब्रह्मा का अहोरात्र (२४ घन्टे) होते हैं एवं नरवर्ष गणना की तरह ही काल ब्रह्मदेव की एक सौ वर्ष की आयु (अवधि) है। एवम्–

काल विष्णुदेव की आयु, अवधि का वर्णन

पितामहसहस्राणि विष्णोर्घटिका मता।

एवं ब्रह्मदेवकाल सहस्रवर्ष की विष्णुदेव की एक घटिका का समय होता है अर्थात् एक सहस्र ब्रह्मा निर्मुक्त हो जाय तो विष्णु की एक घड़ी होती है एवं अड़तालिस घटिका का विष्णुदेव का एक अहोरात्र (चौबीस घण्टे) होते हैं एवं एक सौ वर्ष की विष्णु के काल की अवधि (आयु) है।

काल महेशदेव अवधि का वर्णन

विष्णोर्द्वादश लक्षाणि निमेषार्धं महेशस्य।

अर्थ–बारह लाख विष्णु काल वर्षों के व्यतीत होने पर महेश काल का आधानिमेष काल (समय) होता है।

महाशक्तिदेव काल का वर्णन

दशकोट्यो महेशानां श्रीमातुस्त्रृटिरूपका।

अर्थ–दश करोड़ महेश काल वर्षों के व्यतीत होने पर ब्रह्म शक्ति की एक त्रुटि (मात्रा) होती है एवं इन चारों महादेव समयों की सीमा अपने–अपने समय के अनुसार सौ–२ वर्ष की है।

यह अवधि पुराणों में से दिखाई गई है।

प्रकृति जयी योगी

प्रकृति विजयी योगी पवन से लघु होकर सर्वथा विचरता है।

[1]नतस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।

जिस योगी ने योगज धर्म को प्राप्त कर लिया है उसको जरा मृत्यु रोगादि पीड़ित नहीं कर सकते।

[2]अभेद्यः सर्वं शास्त्राणा मवध्यः सर्वदेहिनाम्।
अग्राह्यो मन्त्रयन्त्राणां योगियुक्तः समधिना।।

समाधिस्थ योगी के शरीर पर किसी शस्त्र, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र का प्रभाव नहीं हो सकता क्योंकि वह सर्व प्राणियों द्वारा और शास्त्रादियों से अवध्य होता है।

[3]ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।

अर्थ—ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा देवतारूप योगियों ने मृत्यु पर विजय किया।

दत्तात्रेयादि सिद्धानां नवनाथास्तथैव च।
शंकरो गुरुरूपेण बोधिताश्चात्मसाधनैः।।

दत्तात्रेयादि सिद्धों के आत्म साधनों के द्वारा नवनाथ और शंकर जी गुरुरूप से बोधिता (ज्ञापक) कहे गये हैं।

१—श्वेत ९ उप०
२—गो० प० श० द्वि० श्लो० ८।
३—ब्रा० ग्रन्थ

काल दण्ड का खण्डन करके

श्री आदिनाथमत्स्येन्द्रशाबरानन्दभैरवाः।
चौरंगीमीनगोरक्षविरूपाक्षविलेशयाः।।
[1]इत्यादयोमहासिद्धा हठयोगप्रभावतः।
खण्डयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डेविचरन्ति ते।।२।।

उक्त आदिनाथ आदि हठ योग के प्रवर्तक हुए हैं और हठयोग के प्रभाव से काल दण्ड का कर्तन करके अब भी यथेच्छया खब्रह्म में (ब्रह्माण्डरूपाकाश में) विचरण करते हुए आत्स्वरूप में सम्मघ्न हैं। एक समय देवेन्द्रादिदेवों ने श्री शिव से पूछा कि हे देव! यह महातेजोमय महाशक्तिशाली अतुल्य प्रभावी चित्ताकर्षकरण्य में जिसका सब कुछ नवनिर्मित है। जिसके सब चराचर अपूर्व ही हैं। इसका अध्यक्ष कौन देवाधिदेव है? शंकर जी–

[2]अहंमेवास्मि गोरक्षो मद्रूपंतन्निबोधत।
योगमार्गप्रचाराय मया रूपमिदंधृतम्।।

हे देवताओं यह मेरा ही रूप गोरक्ष है। मैंने ही योगमार्ग के प्रचारार्थ यह रूप धारण किया है।

नामान्तकनाथानन्द शब्द सिद्धिप्रद हैं

[3]मीनो गोरक्षकश्चैव भोजदेवः प्रजापतिः।
मूलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेशहुताश्नौ।।

१–हठ यो० प्र०
२–महाकज्द्रुम तं०
३–शाक्त प्र० पृ० ४४।

सभयानन्दसन्तोषकालिका गुरवस्तथा।
आनन्दनाथशाब्दान्ते गुरव:सर्वसिद्धिदा:।।२।।

मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ जी, भोजनाथ, रन्तिनाथ, प्रजापतिनाथ, मूलदेवनाथ, गणेश, अग्निदेव, सभयानन्द, सन्तोषनाथ, महाकालीनाथ ये गुरु उपाधिक हैं। नाथ तथा आनन्द शब्दों को अन्त में लगाने से ये सब सिद्धि प्रदाता गुरु माने जाते हैं।

[१]अनहदनाद गगन में गाजै। परम ज्योति तहां आप विराजे।
दीपक ज्योति अखण्डत बाती। परम ज्योति जगै दिन राती।।

त्रेता युग में योगेश्वर गोरक्षनाथ

लंका विजय के बाद श्री राम जी अयोध्या में आकर कुछ समय में राज्य व्यवस्था व्यवस्थित करके एक दिन राजमाता कौशल्या, सुमित्रा सहित गुरु वशिष्ठ जी के पास जाकर सविनय प्रार्थना की कि हे गुरुदेव! यह जो रावणकुल का ब्रह्महत्याकाण्ड हुआ है। इस हत्या से विमोचन का कृपाकर कोई उपाय कहो! तो कुछ समय सोच विचार के बाद वशिष्ठ जी ने कहा कि हे राम जी! निर्लोभी सत्यवक्ता ब्रह्मज्ञानी अवधूत महासिद्ध योगी सर्वसमर्थ को गुरु धार कर गुरु दीक्षा लो और महायोग विद्या का सेवन करो वह सिद्ध हुए योगरूपी अग्नि सर्वपापतापों को दग्ध कर निर्बीज कर देगा। यथा बह्नि में तपाये सुवर्णादि धातु को बह्नि परम शुद्ध कर देता है एवं महायोगग्नि में जीवात्मा के दुष्कृतदग्ध होकर जीवात्मा परम शुद्ध हो जाता है। तब राम जी पुन: मुनि जी से बोल कि हे प्रभो! उक्त गुणसम्पन्न इस समय कौन है? और कहाँ है? तब वशिष्ठ

१—गोरख वाणी ६२।

मुनि बोले पञ्चाल (पंजाब) देश के पश्चिमोत्तर की कोण में गिरिश्रेष्ठ हैं जो अनन्तकाल से श्री शंकर जी की सदाशिवरूप श्री गोरक्षनाथ जी की भी यह परम पावनी तपस्थली है। इसी पर ही परमशिवरूप गुरु गोरक्षनाथ नाम वाले उक्त सर्व विशेषण गुणसम्पन्न से भी अधिक अनन्त गुण सम्पन्न हैं। वे महायोगाचार्य जो सदा निर्भय बेपरवाह सर्व समर्थ साक्षात् परमशिवरूप हैं उनका विधिपूर्वक जाकर गुरु धारण कर योगदीक्षा लेकर तथा योगसिद्ध करके पापों से निर्मुक्त होगे। इसके अतिरिक्त इस महाभयंकर के लिये अन्य अधिक कुछ नहीं हो सकता एवं वशिष्ठ जी से श्रवण करके श्री जानकी सहित राम, लक्ष्मण, हनुमान जी जो–२ युद्ध सम्बन्धित तथा उसमें हेतु थे। राम के परिवार के तथा राम के अत्यन्त निकटतम हनुमान ये ही चारों सरावण परिवार के हनन में संलिप्त थे। ये ही चारों रावण तथा रावण के परिवार की ब्रह्महत्या के हत्यारे राम के परिवार में से गिने जाते थे और हनुमान जी भी इस परिवार के तथा राम के अत्यन्त निकटतम सहयोगी होने के कारण ब्रह्महत्या से विमोचन योग्य ही थे। अतएव चारों ही ब्रह्महत्या की भावना को लेकर उससे मुक्ति पाने के लिये गोरक्षनाथ जी से गुरु दीक्षा के उद्देश्य से अयोध्यापुरी से शुभमहूर्त विचार कर अयोध्या में से टिल्ले की ओर प्रस्थान किया। वह टिल्लानाम का गिरिवर सर्वरत्नों की निधि पंजाब पश्चिमोत्तर की कोण में जिला जेहलम में यह टिल्ला तपस्थल जेहलम नदी के निकट है। जिसको भूमण्डल के एक मूर्ख बच्चे से लेकर प्रौठविद्वान की बुद्धियों में पूर्ण विख्याति से स्थित है एवं उस समय जहाँ तक वाहन जा सकते थे वहां तक वाहनों पर गये पुन: चलते–२ टिल्ले पर जा पहुँचे तो देखा कि

अनेक महासिद्धयोगियों तपस्वियों ब्रह्मज्ञानियों से सुसेवित एवं वन्दित हुए एक परमस्वच्छ विविध धातु शिलाओं से निर्मित अनेक रत्नमणि मुक्ताओं से जड़ित बागम्बर छालाओं से आच्छादित उच्चासन पर आसीन हुए उक्त सिद्धादि मण्डल को ब्रह्मज्ञान का तथा महायोगविद्या का अमृतरूपी उपदेश पान करा रहे हैं। तब यह सब रचना देखकर राम पूर्वक शेष तीनों ने भी परम सादर पूर्वक सविनय विनम्र भाव से सर्वांगीण प्रणाम किये। तदनन्तर प्रचण्ड मार्तण्ड सन्निभ प्रकाश प्रभाव वाले एवं शशीसमशील स्वभाव वाले गुरु गोरक्षनाथ जी ने भी आशीर्वाद पूर्वक अमृतरूपी मधुर वाणी से निकटवर्ती परम सुन्दर आसनों पर उपविशन का आदेश दिया। तब बहुत प्रसन्नता से पृथक–२ आसनों पर सराम आसीन हो गये। बाद में उन चारों की यथा रुचि भोजन पेयादि भी सिद्धों को निर्देश देकर सादर पूर्वक दिलवाये। इसके बाद आराम के लिये उन्हों को परम स्वच्छ विशाल दो हाल दे दिये। तब भगवान राम सहित चारों कुछ दिन परम प्रसन्नता से निवास करने के बाद एक दिन प्रातःकाल का नित्यकृत्य करने के बाद गुरु गोरक्षनाथ जी के पास जाकर प्रणाम पूर्वक आज्ञा पाकर के बैठ गये। तब भगवान राम जी ने भी अपने चारों के आने का कारण कह दिया और विनम्रभाव से स्वनिवेद्य निवेदन करते हुए बोले कि हे प्रभो! राजा रावण के साथ हुए महायुद्ध की हत्या के निवारणार्थ हम आपके चरणार्विन्दों में उपस्थित हुए हैं इसलिये इस ब्रह्महत्या की निवृत्ति के लिये जो भगवन् हमारे लिये उचित हो वह कृपामय कृपा कर कहो! और यथा विधि हमारे को निर्देश देकर के करवाओ, यही आपके कृपारूपी दर्शना

का हमारा लक्ष्य है। इसको पूरा करने की जैसे कैसे हमारे पर कृपा करो। तब भगवान् राम के सविनय वचनों को सुनकर के तब दयार्द्रित हुए दयार्णव श्री गोरक्षनाथ जी ने राम की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और उन्हों को नाथमार्ग में दीक्षित होने का आदेश दे दिया और कहा कि सिद्ध हुए योग की प्रज्वलित हुई योग ज्वाला से समस्त पापताप आदि विकार दग्ध होकर जीवस्वरूप परमशुद्ध कुन्दन हो जाता है और चारों ने शीघ्रातिशीघ्र नाथमार्ग में होने के लिये स्वीकृति दे दी कि हम तत्पर हैं। आप हमको दीक्षा शिक्षा देकर कृतार्थ करो! जिस महायोग क्रिया के करने से समस्त दुष्कृत समुदाय दग्ध होकर निर्बीज हो जाए। तब मंगल के दिन प्रात:काल नित्य कर्म के बाद प्रथम राम को पुन: लक्ष्मण जी को फिर महावीर को दीक्षित कर गुरु मन्त्र को श्रवण कराकर कर्ण पावन किये। सर्व प्रकार के वस्त्रों से तीनों को सुशोभित किया। नामकरण—अचलनाथ राम का नाम धरा और लक्ष्मण जी शेषनाग का अवतार होने से लक्ष्मण नाथ भी कह देते हैं एवं रामनाथ भी अचलनाथ को कह देते हैं और हनुमान का नाम बंकनाथ, वीरबंकनाथ, ध्वजनाथ भी कहते हैं अर्थात् ये तीनों नाथ साधुओं में पुकारे जाते हैं। बालनाथ यह भी लक्ष्मण का नाम है एवं नाथ सम्प्रदाय में १२ बारह पन्थ (शाखायें) हैं। उन बारह शाखों में से तीन शाखा के ये तीनों आचार्य माने जाते हैं। सन्तोषनाथी शाखा ही उत्तर में चलकर रामनाथी शाखा (पन्थ) नाम से प्रसिद्ध हुई। यथा—राम की शाखा के साधु नाथ राम के पुकारे जाते है। जैसे कोई नाथ साधु दूसरे नाथ की शाखा (पन्थ) के परिचयार्थ पूछेगा कि आप कौन पन्थ के हो तो उत्तर

मिलेगा कि मैं राम का योगी या नाथ हूँ। इसी प्रकार लक्ष्मण शाखा की दो शाखायें हैं एक नाटेश्वरी जो टिल्ले के ऊपर के नाथ योगी हैं वे नाटेश्वरी कहाते हैं और जो टिल्ले स्थान के ही नाथ योगी अन्यत्र मठ स्थान बनाकर रहते हैं वे दर्यानाथी कहलाते हैं इनकी शाखा को दर्यानाथी पन्थ कहते हैं। इसी प्रकार बंकनाथ की शाखा को ध्वजपन्थ कहते हैं। इस शाखा के नाथ योगी अपने को ध्वजनाथी कहाते हैं। यही हनुमन्नाथ की शाखा (पन्थ) है। यदि उक्त तीनों शाखाओं के योगियों से कोई पूछे कि तुम कौन पन्थ के योगी हो तो उत्तर मिलेगा कि मैं नाटेश्वरी हूँ। मैं दर्यानाथी हूँ। मैं रामनाथी या राम के हूँ। मैं ध्वजनाथी हूँ। इस प्रकार इनका आपस में शाखा के नाम से एक दूसरी शाख के साधु नाथ का पार्थक्य जाना जाता है। इस प्रकार रामपन्थ के प्रवर्तक राम हैं। नाटेश्वरी पन्थ के प्रवर्तक लक्ष्मण हैं। ध्वज या ध्वजपन्थ (शाखा) के वीर बंकनाथ (हनुमन्नाथ) हैं। इसी प्रकार बारह पन्थों के योगी शाखों के नाम से ही परिचित होते हैं। शेष नौ शाखा (पन्थ तथा उनके प्रवर्तकों को आगे कहेंगे) एवं श्री जानकी जी को गुरुदेव गोरक्षनाथ जी ने आशीर्वादरूपी कृपा से ही कृतार्थ कर दिया था रामादि की सेवा और भजन का आदेश दे दिया। टिल्ले पर राम और सीता के नाम के तालाब भी हैं। वहाँ लक्ष्मण जी ने पूर्वकाल में कुछ चमत्कार दिखाये थे जिस करके लक्ष्मण के जनसाधारणों ने अनेकों प्रकार के गाने बना रखे थे। जो हम पाकिस्तान से पूर्व युवा वृद्धों की वाणियों से बहुधा सुना करते थे। स्यालकोट, वजीराबाद, सरगोदा, रौलपिंडी आदि जिलों में लोग अधिक लक्ष्मण के देहाती भाषा में परम्परा से गाते आते थे।

नाटेश्वरी टिल्ले स्थान के नाथ योगियों को क्यों कहते हैं

उत्तर—यह टिल्ला बहुत दीर्घकाल से भगवान आदिनाथ शिव की तपस्थली तथा निवास स्थान है और वे सर्वविद्याओं के राजा तथा अध्यक्ष हैं। वैसे ही नट विद्या के भी राजा तथा अध्यक्ष हैं इसलिये उन्हें नटेश्वर कहते हैं और उस नटेश्वर सम्बन्धी वस्तु को नाटेश्वरी खड़ी बोली में कहते हैं टिल्ला स्थान में जो परम्परा से ऊपर ही रहने वाले हैं वे ही योगी नाटेश्वरी कहाते हैं। टिल्ले से अतिरिक्त स्थानों को निर्मित कर के उनमें जो टिल्ले के ही नाथ साधु रहते हैं वे दर्यावनाथी कहाते हैं इसके सम्बन्ध में।

दर्यावनाथी शाखा कैसे बनी

एक समय टिल्ले स्थान का कोई सिद्धनाथ अटकदरिया के निकट किसी ऊँची जगह में छोटी मोटी कुटिया में समाधिस्थ थे तो ऊपर पर्वतों में वर्षा का जल नीचे उतराई को आता हुआ खड़—खड़ की सी आवाज करता आ रहा था तो जल के अव्यक्त शब्द के कोलाहल से उनकी समाधि टूट गयी तो पुन: सावधान होकर जब लगाने लगते तो चित्तवृत्ति पुन: उसी आवाज की ओर चली जाती। तब उस सिद्ध अटकनाथ ने दरिया को कहा अरे अटक, तो ऐसा कहने से उस जगह से पीछे का सब जल रुक गया अर्थात् जहाँ—जहाँ से आ रहा था सब वहाँ तक का जल बर्फ की शक्ल में बदलकर जाम होकर रुक गया था। जब उस सिद्ध अटकनाथ के दरिया को अटक कहने से जल रुक गया तो पास में जो सेवादार थे उन्होंने सुना तो जब जल की खलबली की

आवाज बन्द हो गयी और दरिया का जल भी जाम हो गया था तब जिस–जिस ने दरिया को देखा वे सब चकित रह गये और सिद्ध के वचन को सुनकर जो उसी के सेवादार थे उन्होंने लोगों को और टिल्ले के साधुओं को जाकर बताया जो टिल्ले के नाथ योगी थे। उन्होंने उसके दरिया को रोकने के कारण उसे दरियानाथ नाम से कहने लगे तो उसका यही नाम पड़ गया और उसकी शाखा के जो नाथ होते हैं वे दरियानाथी कहाते हैं।

टिल्ला स्थान की लक्ष्मण सम्बन्धी एक कथा

यह एक कथा टिल्ले स्थान के आस–पास के कई जिलों में साधारण जनता गाया करती थी पूर्व काल में आम जनता के रागरागों में लक्ष्मण के बल पराक्रम के गाने गूंजा करते थे। हिन्दू मुस्लिम सभी जातियां गाया करती थी कि जब लक्ष्मण ने दीक्षा ले ली तो उस समय टिल्ले में जो और सिद्ध थे उन्होंने स्थान के काम की बारी से नियतियें (ड्यूटियें) बांध रखी थीं। तब एक दिन लक्ष्मण की नियति पर्वत के नीचे कूप से जल लाने के लिये लगा दी थी। तो तब टिल्ले पर सिद्धों का एक बहुत बड़ा लोहे का पात्र रखा हुआ था जिसमें कई हजार मन जल आ जाता था। उस पात्र को सिद्ध नीचे के कूप से भरकर टिल्ले के ऊपर मकान में बर्तने के लिये लाया करते थे एक दिन लक्ष्मण की नियति आ गयी थी। तो दूसरों ने कहा कि इसी बौंक पात्र को ले जावो और दूसरे पात्र से इसको भरकर के ऊपर ले आओ। तब लक्ष्मण उस बौंक को उठाकर नीचे ले जाकर उसको दूसरे पात्र से भरकर जब उसको उठाना चाहा उससे पूर्व अपने शरीर को चुस्त और बहुत भारी कर लिया और

उस बौंक को उठाकर टिल्ले पर्वत पर चढ़ना शुरू कर दिया तब बौंक तथा लक्ष्मणनाथ के भार से पर्वत नीचे को धस्सने लगा। तब गुरु गोरक्षनाथ जी ने ध्यान से देखा कि यह नागनाथ अपने बल से नीचे को पर्वत धंसा रहा है। तब गोरक्षनाथ जी ने पर्वत को जहाँ का तहाँ स्तम्भित कर दिया और जब नागनाथ (लक्ष्मणनाथ) ने जल लाकर ऊपर रख दिया तब गोरक्षनाथ जी ने नागनाथ तथा अन्य नाथसिद्धों को बुलाकर कहा कि इस प्रकार की सिद्धियां एक दूसरे को दिखानी बन्द कर दो! अन्यथा बल क्षय होकर शक्तिसिद्धियों का विपरीत प्रभाव हो जाता है। तब सब सिद्धों ने हाथ बाँधकर गुरु जी की आज्ञा स्वीकार कर लीं। इसके बाद गोरक्षनाथ जी ने अपने शिष्यों प्रशिष्यों सिद्धों को फिर सावधान किया कि यहाँ तो तुम सबको मैंने काले नाग बना दिया है किसी में भी विष कम नहीं है फिर यदि ऐसा करोगे तो तुम्हारी अपनी ही हानि होगी। तब सबने गुरुदेव से पुन: क्षमा याचना की ओर नागनाथ ने पुन: २ क्षमा की प्रार्थना की एवं अचलनाथ जी (रामनाथ जी) ने भी विशेष कर लक्ष्मणनाथ को ही आगे के लिये ऐसा न करने को कहा। गुरु की आज्ञा पाकर के इस टिल्ले पर्वत के नीचे कुछ दूरी पर पात्रक नाम का ग्राम था जिसमें कुम्भकारों के कुछ घर थे। उन कुम्भकारों (कुम्हारों) में एक कुम्हारन बहुत अड़ब रहती थी। इस सप्रदाय में नवीन शिष्य को प्रथम भिक्षा मांगने के लिये गुरुजन अवश्य भेजा करते थे जिससे इसका पूर्व जाति आदि का अभिमान नष्ट हो जावे और इसके अन्त:करण में शुद्धता आ जावे इसका अर्थ यह नहीं था कि उन्हों को किसी वस्तु की कमी थी केवल गर्व को कम करने के लिये ही ऐसा करते थे क्योंकि सिद्ध पुरुष तो संकल्पमात्र से ही सांसारिक वस्तुयें प्राप्त कर सकते हैं। एक दिन मिट्टी का कोई पात्र लेने के लिये गुरुजी ने

नागनाथ को उस ग्राम में भेजा तो लक्ष्मणनाथ उस ग्राम के उसी घर में देवयोग से चला गया जहाँ कुम्हारन अड़ब रहती थी। पात्रार्थ लक्ष्मणनाथ ने उसके घर के द्वार में गुरु का बताया अलख शब्द कहा तो आगे से कुम्हारन नागनाथ से बोली क्या कहता है तू, तब पंजाबी में लक्ष्मण बोला—भांडा दे कुम्हारिये तेरा बच्चा जीवे, कुम्हारन—वे भज्जी ना देवां ठीकरो जे चड़ गोरख आवे।

इसका मतबल यह है कि लक्ष्मणनाथ जी ने कुम्हारन को आशीर्वाद दे करके कहा कि तेरा पुत्र जीवे मुझे मिट्टी का अमुक पात्र दे दो। तो कुम्हारन बोली कि तुम मिट्टी का पूरा पात्र मांग रहे हो मैं तो तुझे पात्र का एक टूटा हुआ छोटे से छोटा टुकड़ा भी नहीं दूंगी। यदि स्वयं गोरखनाथ भी चलकर आ जावे तो भी नहीं दूंगी तुम्हें तो मैं समझती ही क्या हूँ। जो समूचा भाण्डा मांग रहे हो तब नागनाथ जी से कुम्हारन की यह बात न सही गयी तो मानों कि कहीं शेषनाग ही कुपित हो करके भूमि को पटकने लगा होवे। तब पल भर में कुम्हारन की दृष्टि से अदृश्य होकर के नाग का रूप धार प्रथम कुम्हारन के पुत्र को डस कर धराशायी किया फिर कुम्हारन के पति को पुन: उसके गधे एवं तीनों को मृतप्राय करके पुन: नाथयोगी के रूप में लक्ष्मणनाथ जी आ गये और यह कौतुक कुम्हारन को दिखाने के लिये ही उसे कुछ नहीं किया। तब कुम्हारन ने जब अपने घर के प्राणियों की यह दशा देखी तो अतित्रस्त तथा शोकाकुल दु:खी हुई। तब कुम्हारन दोनों हाथ बांधकर योगी के चरणों पर गिर पड़ी और हाथ बांधे—२ प्रार्थना करने लगी, पंजाबी में कुम्हारन की प्रार्थना—

योगिन हाथ बन करनियां बेनती इक अर्ज सुनावां।
जिन्दा करो मेरे परिवार को मैं शरणी किस की जावां।।
लाईन लगावां मैं भाण्डों की जो टिल्ले तीक पहुंचावां।
छमां करो मेरी गलती को और किसे फरमावां।।९।।

तब नागनाथ जी को दया आ गयी और मूर्छित मृतप्रायों को पुन: सजीवित कर दिया। इत्यादि लक्ष्मण यति के नाम से साधारण असाधारण लोगों की अनेकों वाणियों में पाकिस्तान पंजाब में पराक्रम गाये जाते थे एवं टिल्ले पर जाकर महायोगज्ञान प्राप्त करने के लिये लक्ष्मणादियों के सन्दर्भ में वहां के सभी वर्ग के लोगों की परम्परा से जनोक्तियां चली आ रही हैं और नाथ सम्प्रदाय वालों को तो उक्तों के टिल्ले पर जाकर दीक्षित गोरक्षनाथ जी द्वारा होने में राजिका (राई) भर सन्देह नहीं है। क्योंकि नाथ सम्प्रदाय की बारह शाखों में से तीन शाखा (पन्थ) उक्त तीनों के नाम से अनन्त काल से चली आ रही है जो पूर्व भी कह आये हैं वे ये हैं– १. रामपन्थ या राम के योगी इस नाम से कही जाती है। २. नाटेश्वरी और दरियानाथी या लक्ष्मण के योगी इन नामों से कही जाती हैं इस लक्ष्मण की शाखा के दो नाम होने के कारण ऊपर कह आये हैं। ३. ध्वज पन्थी नाम से हनुमान के योगी कहे जाते हैं और अधिक पिष्ट पेषण क्या करें पाकिस्तान पंजाब में गायकों की कई स्वयं रचित किंवदन्तियों सम्बन्धित राग रागनियां जो कि लक्ष्मण के बल पराक्रम से पूर्ण मनोरंजन की सुना करते थे। उस समय में पूर्ण भक्त, गोपीचन्दनाथ, लक्ष्मणनाथ आदि के टिल्ले में गुरु गोरक्षनाथ जी से दीक्षा लेने सम्बन्धी गानों के गाने वाले प्राय: जनसाधारण के मेला में हैं? तीन

१. बाहादरसिंह कुक्कल वालिया २. खेड़ासिंह बलगनां वाला ये दोनों वंजली के साथ गाते थे ३. कुम्हार नैब कोटिया था उक्तों के सम्बन्ध में गाते थे।

पाकिस्तान पंजाब के उक्त जिलों में प्रसिद्ध थे और साधारण जनता तो बहुत ही उक्त सिद्ध योगियों के नये गाने बनाकर पुराने गानों के ही आधार पर गाया करती थीं। तात्पर्य यह है कि ये सब जनोक्तियां रामलक्ष्मणादि को टिल्ले पर त्रेतायुग में जाकर श्री गोरक्षनाथ जी से दीक्षा लेने को प्रमाणिक करती हैं। इस दीक्षा लेने के कई वर्ष बाद गुरु गोरक्षनाथ जी ने नागनाथ को टिल्ला महामठ का महान (महन्त) बना दिया और जो महासिद्ध थे उनको भी पृथक—२ नियुक्तियों में नियुक्त कर दिया। योग साधना के अतिरिक्त समय के लिये नियुक्तियां की। तब महायोगेश्वर गुरु गोरक्षनाथ जी आप फ्रैन्टियर प्रदेश पेशावर में गोरख खटड़ी जो आजकल एक बहुत प्रसिद्ध स्थान था उस जगह में समाधिस्थ हो गये तो जब टिल्ले से गये थे तब लक्ष्मण के पास महासिद्धराज भैरवनाथ जी को छोड़ गये और उसकी सेवा का आदेश भी नागनाथ को दे गये। साथ यह भी लक्ष्मणनाथ महन्त को कह गये कि जब कभी मेरी आवश्यक आवश्यकता हुई तो भैरवनाथ को कह देना कि यह मुझे अमुक जगह (गोरख खटड़ी) में सूचित कर देगा एवं कह महाराज चले गये और कई वर्षों बाद तक तो योग साधना के साथ यह टिल्ला स्थान की देखभाल करता रहा द्वापर व्यतीत होने पर इसे टिल्ले की महाराज ने महन्ती लक्ष्मण को दी और कलियुग की भी कई शताब्दियां व्यतीत होने तक इसने ही गद्दी पर शासन किया और बाद में कई शताब्दियों से जनसाधारण और साधारण साधु समाज से अदृश्य हो गये।

आज से कई सौ वर्ष पूर्व नागनाथ तथा सिद्ध विचारनाथ का वार्ताक्षेपप्रक्षेप परस्पर हुआ अर्थात् लक्ष्मणनाथ और भर्तृहरिनाथ की आपस में तूँ–तूँ मैं–मैं

यह कथा ऐसे ही है कि शनिवार की रात्रि को प्रायः गुरु गोरक्षनाथ जी के नाम का रोट नाथ योगी बनाकर पूर्ण विधि से स्वच्छता पूर्वक प्रातःकाल मार्तण्डवार को गुरु गोरक्षनाथ जी को भोग लगाकर बाद में उस प्रसाद को सबको दिया जाता है और गुरुदेव आचार्य के रोट का प्रसाद बनने पर उसी स्थान में जहाँ रोट बना हो रहने वाले नाथ योगी को यदि उस बने रोट का प्रसाद नहीं मिलता तो वह मन में महारोष मानता है क्योंकि उसे आचार्य गोरक्षनाथ जी की कृपा रूपी प्रसाद समझकर उसे प्राप्त करना योगी लोग परमावश्यक समझते हैं, यही रोट का प्रसाद लक्ष्मणनाथ की अध्यक्षता में बना था तो महाराज भर्तृहरिनाथ जी भोग लगकर प्रसाद बंटने से पहले ही गौवें लेकर जंगल में चले गये क्योंकि उनका विचार था कि मैं जब गौवें जंगल से वापिस लावूंगा तब आकर अपना हिस्सा ले लूंगा। जब जंगल से आया उसने महन्त लक्ष्मण से अपना प्रसाद का हिस्सा मांगा तो उसने कहा कि सिद्धराज हमारे को आपका हिस्सा रखना याद नहीं रहा वह सब रोट बंट गया है। तब विचारनाथ जी ने कहा कि यह सब कुछ आपको याद था परन्तु जानबूझ कर आपने नहीं रखा। क्या तुम्हारा हक अधिक है मेरा नहीं है, यह गुरु जी का प्रसाद न देने की आपकी महान गलती है। तब लक्ष्मणनाथ ने भर्तृहरि (विचारनाथ) की ओर एक पत्थर का डला फेंककर कहा कि यह

ले अपना हिस्सा जो हिस्सा कह रहा है। तब विचारनाथ जी कुपित तो पहिले ही थे तब उनको अधिक रोष उठा और लक्ष्मणनाथ जी से बोला कि यदि ऐसी बात ही है तो मैं अपने हिस्से का टिल्ला पर्वत काटने लगा हूँ यदि रोक सकता है तो आकर रोक ले। तब सिद्ध विचारनाथ जी ने जो तपस्वी साधु नाथों के पास धूने की बभूति सिवारने के लिये एक छोटी सी गुलसफा (फौड़ी) होती है उसी को टिल्ले पर्वत पर मारकर कई मीलों ऊंचाई लम्बाई चौड़ाई का एक हिस्सा (भाग) काट लिया जहाँ से भर्तृनाथ को अच्छा जंचा। तो अब उसी गुलसफा पर टिका कर टिल्ले की दक्षिण दिशा की ओर आकाश मार्ग से चल पड़ा। उसका विचार था कि मैं इसे उज्जैन में ले जाऊँगा। जब विचारनाथ जी टिल्ले से चले तब लक्ष्मणनाथ (नागनाथ) का और कोई बस न चला तो भर्तृनाथ को शाप दे दिया कि जाओ यदि इस पर डेरा मठ जमाओगे तो हर वर्ष इस पर चोरी हुआ करेगी। तब सिद्ध विचारनाथ जी ने भी प्रत्युत लक्ष्मणनाथ को शापित कर दिया कि तुम्हारे टिल्ले मठ का लंगर बना हुआ थुड़ (कम) हो जाया करेगा। तब नागनाथ ने भैरवनाथ जी से कहा गुरु महाराज से जाकर कहो कि सिद्ध विचारनाथ टिल्ले स्थान गिरि का कुछ भाग काटकर दक्षिण दिशा कि ओर आकाश मार्ग से ले जा रहा है। तब भैरवनाथ जी अतिवेगवान हुआ आकाश मार्ग से पल भर में ही जाकर श्री गोरक्षनाथ जी को सूचित कर दिया। तब सूचित होते गुरुदेव जी भी मनोवेग से भी अतिशीघ्र वेग से दक्षिण दिशा की ओर खमार्ग चल दिये। तब दोनों का मेल आकाश में आकर वहाँ हो गया जहाँ पर आजकल सरगोदा जिला है। तब सिद्ध विचारनाथ धीमी गति से चलते–चलते टिल्ला मठ से साठ कोस की दूरी

पर आ गये थे। तब गुरुजी भर्तृहरि के आगे आ खड़े हुए। जब गुरुजी को आकाशस्थ आगे खड़े देखा तो बायें हाथ में तो पर्वत टिका गुलसफा थाम रखी है और दायें हाथ से गुरु गोरक्षनाथ जी को प्रणाम कर रहा है। तब गुरु जी ने कहा कि यह प्रणाम हमारे को स्वीकार नहीं जिस प्रकार हमने बताया हुआ है उसी प्रकार से स्वीकृत होगा और इस पर्वत खण्ड को उल्टा रखेगा तो ये तत्काल स्वर्णमय हो जावेगा और इसको लोभ में जो काटेगा तो तत्काल ही उसकी मृत्यु हो जावेगी उसकी मृत्यु के पाप के भागी तुम होगे और यदि इसे सीधा रखोगे तो आज से ही इस पर्वत पर यवनों का वास हो जावेगा। यदि इसको तिरक्षा रखोगे तो बहुत दीर्घकाल में जाकर यवनों (मुस्लिमों) का वास होगा। तब सिद्ध विचारनाथ महामहिम गुरुदेव से पूछता है कि हे गुरुदेव! परमेश्वर आज्ञा करो किस प्रकार गिरिवर को धरा पर धरूँ। तब गुरुजी ने आदेश दिया कि इसको तिरक्षा ही रखो। तिरक्षा रखकर के गुरुदेवाधिदेव को प्रणाम किया और पर्वत को काटने का भी पूरा वृत्तान्त कहा तब सब कुछ सदाशिव गुरु गोरक्षनाथ जी ने सुना और स्वयं भी सब कुछ जानते ही थे।

पुन: गुरुजी ने कहा कि यह अब तुमसे उठाया नहीं जावेगा अब तुम इसी पर यहीं आसीन होकर जप तप योग साधना करो। तब विचारनाथ हाँ ना कुछ न कहकर के गुरुजी को पुन: प्रणाम करके गिरिवर को जब उठाने लगा तो पर्वत समस्त भूमण्डल से उसे भारी प्रतीत हुआ। उससे पुन: गिरि श्रेष्ठ का कोई भी कोण हिलाये से भी न हिला। तब गुरुजी से बोला कि आप जैसे सर्वसमर्थ की दास को यथा आज्ञा हो वैस

ही स्वीकार है। तब परम सदाशिवरूप गोरक्षनाथ जी ने कहा कि इस गिरिवर का नाम अब टिल्ला न होकर इस तपस्थली का नाम सिद्धकरायाना होगा और जो तुमने अपना बल लगाकर कहा है कि जैसे दास को आज्ञा हो। इस कारण [१]सिद्धकरायाना तेरे पन्थ के दास नाम पर ही होंगे। वैराग्य पन्थ के अन्य स्थानों वाले नाथ नाम वाले ही रहेंगे और जनता भी सिद्ध के द्वारा लाया जाने के कारण सिद्ध कड़ाना यह सरल शब्द कहने लग गई। साधारण लोगों की जबान पर यही सवार हो गया और दोनों महासिद्धबलवानों के शाप भी अभी तक पूरे होते चले आ रहे हैं। वर्ष में एक बार चोरी कड़ाना पर और प्रतिदिन लंगर कम पड़ जाता है टिल्ले का चाहे एक व्यक्ति का आधा खाना अवश्य कम पड़ेगा। इस कथा का यह है कि–

उक्त कथा का प्रयोजन

आज से दो हजार बयालीस वर्ष पूर्व टिल्ला स्थान पर हुआ वाद विवाद नागनाथ तथा विचारनाथ अर्थात् लक्ष्मणनाथ भर्तृहरिनाथ का इस वार्ता को प्रमाणित करता है कि त्रेतायुग में टिल्ले पर जाकर यदि लक्ष्मण दीक्षित हुआ था तो तभी इनका परस्पर संघर्ष हुआ। यदि लक्ष्मण टिल्ले पर दीक्षित न होता तो उस गद्दी का शासन लक्ष्मण के पास न होता तो भर्तृहरि के साथ उनका संघर्ष भी न होता एवं लक्ष्मण के साथ राम तथा हनुमान का साहचर्य होने से उनके दीक्षित होने का भी त्रेतायुग में ही टिल्ले पर सिद्ध होता है और इन तीनों की नाथ सम्प्रदाय में तीन शाखा

१यहां–सिद्ध, कर, आयाना, ये तीन पद हैं। इन तीनों समस्त करने से 'सिद्धकरयाना' ऐसा बनता है और स्थली का वाचक है अतः स्त्री वाचक है।

(पन्थ) हैं। यथा–राम के योगी, यह राम का पन्थ बारह पन्थों में से एक है एवं नाटेश्वरी; यह लक्ष्मण के योगियों का पन्थ (शाखा) है एवं ध्वजपन्थी, यह हनुमन्नाथ (हनुमान) के योगियों का पन्थ (शाखा) है एवं यह सिद्ध हुआ कि यदि ये तीनों त्रेतायुग में टिल्ला मठ पर जाकर श्री गोरक्षनाथ जी द्वारा दीक्षित हुए तो तभी नाथ बारह पन्थों में से इन तीनों का एक–एक पन्थ हुआ या चला इस प्रकार इनके उक्त तीन पन्थ कहीं ऊपर से तो गिरे नहीं यदि ये तीनों नाथ सम्प्रदाय में प्रविष्ट हुए थे तो तभी उक्त तीनों का एक–२ पन्थ इनका चला। बारहों में शेष जो नौ हैं उन्हीं पन्थों को तथा उनके प्रवर्तकों को आगे कहेंगे। इससे यह भी प्रमाणित हुआ कि त्रेतायुग में भी महायोगेश्वर गुरु गोरक्षनाथ जी टिल्ले पर विद्यमान थे। गोरक्षनाथ जी की आरती भी श्री राम जी की बनाई हुई है।

क्या त्रेतायुग में लक्ष्मणनाथ जी दीक्षित हुए कई शताब्दियां कलियुग की भी व्यतीत हो गयीं तो अब तक लक्ष्मणनाथ टिल्ले पर ही बैठा हुआ था?

उत्तर–हां अभी तक टिल्ले पर ही था–

यथा–न[१] तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्नि मयं शरीरम्।

अर्थात् योगयुक्त को रोग, बुढ़ापा, मृत्यु ये छोड़ जाते हैं।

१–श्वेता० उ०

[1]इत्यादयो महासिद्धा हठयोगप्रभावत:।
खण्डयित्वां कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते।।

इत्यादि का अर्थ पूर्व कहा है। उक्त सिद्ध अमरकाय हैं।

[2]तत: पश्चिम दिग्भागे भाति गोरक्षतिंतणि:।
तत्र यात्रा कृते लोक: दृष्टवा याति पवित्रताम्।।७८।।
पापकञ्चुकमुत्सृज्य जना: स्युर्दिव्यदेहिन:।
दर्शनात्स्पर्शनाद्योगसिद्धि: करतले भवेत्।।८०।।
कृतकृत्या: प्रमुच्यन्ते भवेयुरपुनर्भवा:।
तत्र क्षणं हृद्वि ध्यात्वा श्रीनाथ चरणाम्बुजम्।।८२।।

उसके पश्चिमी भाग में गोरक्षतिन्तिणि नामक तीर्थ विराजमान है। लोग वहां की यात्रा एवं दर्शन कर पवित्र हो जाते हैं। श्रीनाथ तीर्थों के दर्शन स्पर्शन से समस्त पापों से मुक्त तथा दिव्यदेह वाले हो जाते हैं। श्रीनाथ चरणों का क्षण भर भी ध्यान करने से कृतकृत्य हो अपुनर्भव हो जाते हैं।

पुनाना: पादुका: सन्ति तत्र द्वादशयोगिनाम्।
सार्धत्रिलक्षभूतानामालीनामधिपस्य च।।८९।।

अर्थ—वहाँ द्वादश योगियों की पुष्यकारिणी पादुकायें हैं जो साढ़े तीन लाख भूतों तथा आलियों की अधिपति हैं।

मत्स्येन्द्रनाथस्य जनै: श्रीसिद्धासीनमर्च्यते।
तदासनस्थितोयोगी गुरुराजेति कथ्यते।।९०।।

वहां लोग श्री मत्स्येन्द्रनाथ के आसन की पूजा करते हैं। उस

१—हठ योग प्र०

२—श्रीनाथ ती० व० के; ७८।८०।८२।८९।९०

आसन गद्दी पर आसीन योगी को लोग गुरुराज जी ऐसा कहते हैं।

युगादिपदमास्तेऽसौ नाथस्य परमद्भुतम्।
अमुष्मै तीर्थराजाय भूयो भूयो नमो नमः।।९१।।

श्री गोरक्षनाथ तथा मत्स्येन्द्रनाथ जी का चारों युगों के आरम्भ का स्थान अभी तक विराजमान है। वहाँ परम अद्भुत स्थान में श्री नाथ जी का आसन रूप तीर्थ है। उस तीर्थराज को मुझ मानसिंह राजा का बारम्बार प्रणाम हो। इन श्लोकों में जिन मठों का वर्णन है वे सब सत्य युग के पूर्वार्ध के हैं जो अभी तक कुशल पूर्वक चले आ रहे हैं और उन मठरूपी तीर्थों के संस्थापक भी उन–२ मठों से पूर्व ही संसिद्ध हैं अर्थात् संस्थाप्य संस्थापक भाव से प्रमाणिक हैं। अतः संस्थापक का संस्थाप्य से पूर्व विद्यमान होना परमावश्यक होता है। तभी जिस किसी की संस्थापना होती है इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ तथा कुछ एक उन्हों के शिष्यादि तत्तत्स्थानों के संस्थापक उन–२ स्थानों की अवधियों से पूर्व ही सिद्ध होते हैं। अनेक इतिहासों के लेखक पश्चात्य विद्वान महामति ब्रिग्स अपने ग्रन्थ (गोरक्षनाथ एण्ड दी कन फटा योगीज) में लिखते हैं कि महासिद्ध योगीराज गोरक्षनाथ जी ने सत्ययुग में पंजाब के जिला जेहलम नदी के निकट टिल्ला में तप किया था और उसके बाद त्रेतायुग में गोरखपुर में जहाँ इस समय गोरक्षनाथ जी का मन्दिर है यहाँ पर तप किया था।

तत्रादावस्ति गोरक्षपुराख्यं नगरोत्तमम्।
तत्रोत्तरस्यां गोरक्षस्थानं सिद्धं सुपुण्यदम्।।

रामावतारे त्रेतायां स्थानमेतदुदीरितम्।
वारुण्यां स्थानत: क्रोशे वहती रावती सरित्।।
तत्र गोरक्षनाथस्य राजते काष्ठपादुका।
अमुष्मैतीर्थराजाय भूयो भूयो नमो नमः।।

(श्री ना० ती० २०३, २०४, २०५)

गोरखपुर नाम का उत्तम नगर है उसके उत्तर में पुण्यप्रद श्री गोरक्ष जी का स्थान है। त्रेतायुग के रामावतार में इस स्थान का जिक्र आया है। इस स्थान से कोशभर दूर इरावती नदी पश्चिम दिशा में बहती है। उस स्थान में श्री गोरक्षनाथ जी की काष्ठ पादुका विद्यमान है। उस तीर्थराज को बारम्बार मुझ राजा मानसिंह का नमस्कार होवे।

यहाँ इसी मठ में गुरु गोरक्षनाथ जी ने त्रेतायुग में स्व–करकमलों द्वारा अखण्ड धूना जगाया था जो कि अद्यतन भी अप्रतिहतगति से जगता आ रहा है अर्थात् श्रीनाथकरकमलों द्वारा ही प्रज्वलित ज्वाला ही अधुनावधि जलती चली आ रही है और त्रेतायुग से मन्दिर में अखण्ड ज्योति जो कि परमज्योति की प्रतीक अनेक झंझावातापत्तियों के आघातों का प्रत्याघातन करती हुई परमज्वाला जी की ज्वालामालों की तरह अनवच्छिन्नरूप से परमज्योति प्रज्वलित होती आ रही है। परमज्योति का कज्जल महिलायें ले जाकर अपने बच्चों के नेत्रों में आञ्जती हैं जिस कज्जल को नेत्रज्योतिप्रद तथा पावन माना जाता है।

प्रश्न—क्या उक्त मठ तीर्थ जो आपने सत्य व त्रेतादि युगों के कहे हैं। इतने दीर्घकाल के हैं इसमें क्या प्रमाण है? और कौन मनुष्यादि तभी का अब तक है जो बता रहा है।

उत्तर—प्रयागराज में सत्ययुग का वटवृक्ष है यह धारणा निनानवें ९९ प्रतिशत जनधारणा है। यह गंगा का सेतु भी सत्य त्रेतायुगों का है इत्यादि को बताने वाला कौन व्यक्ति तब का है जो बता रहा है या प्रमाणित कर रहा है एवं जो इनको बता रहा होगा वही उक्त मठ तीर्थों को भी बता रहा होगा या प्रमाणित कर रहा होगा। वे कौन हैं? वे हैं परम्परा की जनानुश्रुतियें जैसे कि जिस किसी व्यक्ति या स्थान सम्बन्धी जो वहाँ के ही निवासी पुरुषों का जो सर्वप्रकार से उस व्यक्ति स्थान सम्बन्धित यथार्थ ज्ञान जो नित्य जलप्रवाह की तरह जैसा का तैसा उन आदि पुरुषों से अनुश्रुतरूप से चला आ रहा शब्द ज्ञान ही जनश्रुति ज्ञान है और उक्त व्यक्ति स्थान सम्बन्धित आदि पुरुष यथार्थ ज्ञाता का जो ज्ञान परम्परा से यौक्तिक और बौद्धिक से अनुभावित है वही परम्परा से अनुभवरूप ज्ञान है। जनश्रुति जो परम्परा से और परम्परा अनुभवरूप ज्ञान ये ही दोनों मनुष्यादि इतने दीर्घकाल के आदि से लेकर अब तक तीर्थ मठों को बताते आ रहे हैं आगे भी बताते जायेंगे और इन मठ तीर्थों को प्रमाणित करते रहेंगे। ये ही जनोक्तिया इतिहास बन करके तीनों समयों को बताती हैं तथा प्रमाणिक करती रहती हैं।

प्रश्न—जैसे आपने सत्य त्रेतायुग के मठतीर्थों की सिद्धि के लिये गंगा सेतु सत्ययुग का दृष्टान्त दिया है इतने समय तक तो मठ या सेतु ये कृत्रिम वस्तु रह ही नहीं सकती।

उत्तर—यह तो बात ठीक है किन्तु यदि सत्ययुग वाला सेतु (पुल) लम्बे समय में जाकर जब टूट गया तो जो पुन: उसी जगह में जो फिर दूसरा पुल बना उसे गंगा का पुल कहोगे या यमुना का? जो गंगा पर बना उसे तो गंगा ही का कहेंगे। इसी प्रकार जो पूर्व मठ के टूटने गिरने

पर जो कुछ भी वहीं किसी प्रकार का भी बने उसका उस सत्य युग वाली जगह से तो सम्बन्ध नहीं टूटना। क्योंकि जो जगह सत्यादियुगों में थी वही अब है और वही आगे भी रहेगी। उसमें बनने गिरने का परिवर्तन चाहे कुछ पड़ा हो तात्पर्य तो स्थायी वस्तु से है न कि बनने गिरने से।

गुरु गोरक्षनाथ जी की विचित्र शक्ति अपार लीला

श्री गोरक्षनाथ जी ने नेपाल में सिद्धाचल पर मृगस्थली में कठोर तप किया। वहीं मृगस्थली में उनका मन्दिर भौम स्मारक है। नेपाल बौद्ध कथाओं में उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को अवलोकितेश्वर कहते हैं वहीं पर्वत पर मत्स्येन्द्रनाथ जी तप कर रहे थे उस समय गोरक्षनाथ जी मत्स्येन्द्रनाथ जी के दर्शनार्थ गये किन्तु गुरु जी को समाधिस्थ देखा तो आप मृगस्थली में ही रुक गये और तब राजा नरेन्द्रदेव बौद्धों के ट्रेटे चढ़ा हुआ नाथों का अपमान करता था यह सब कुछ देख सुनकर बरदास्त न हुआ।

नेपाल मृगस्थली में श्री गोरक्षनाथ जी का वर्षा के देवता कर्कोटक नाग को तथा छियानवें कोटि मेघमालाओं को बांधकर ऊपर आसीन होना तो बारह वर्ष वर्षा बंद

इस प्रकार उक्त मेघादियों को आसन के नीचे बांधकर ऊपर सिद्धासन से आसीन हो बारह वर्ष तक समाधिस्थ हो गये इस हेतु से बारह वर्ष तक वर्षा खत्म हो गई राज्य में जल की अप्राप्ति से हा—हाकार

मच गया। तब राजा नरेन्द्रदेव के गुरु बुद्धदत्त (बन्धुदत्त) ने वर्षा के रुकने का कारण जान लिया कि गुरु गोरक्षनाथ जी ने वर्षा के देवता नागों को तथा मेघमालाओं को बांध रखा है अपने आसन के नीचे दाब रखे हैं जब तक यह महाशक्ति आसन से उठेगी नहीं तब तक बादल उनके नीचे से निकलेंगे नहीं तो वर्षा नहीं होगी। तब राजा सहित गुरु तथा कर्मचारियों से यह निश्कर्ष निकाला कि इनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी से सविनय सभी चलकर प्रार्थना करो कि वे गोरक्षनाथ जी के पास आकर के दर्शन देवें! जब गुरु इनके पास आवेंगे तो उनको देखकर उठ खड़े होंगे तो बादल इनके नीचे से निकल जावेंगे तभी वृष्टि होगी और इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं हो सकता तब राजा प्रजा सहित सबने जाकर उन्हें प्रणाम किया पुन: सविनय सबने प्रार्थना की तो श्री गुरु देव मत्स्येन्द्रनाथ जी दयालु तो थे ही उन्हीं के वृत्तान्त को सुनकर दयार्द्रित हुओं ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब राजा ने रथ मंगवाकर के बड़ी धूमधाम से महाराजाधिराज मत्स्येन्द्रनाथ जी को वहीं ले आये जहां पर जगत्पति श्री गोरक्षनाथ जी सृष्टिचक्र को रोके बैठे थे। जब बाजे गाजे से महाराज की सवारी श्री नाथ जी के पास पहुंची तो पूर्व ही अन्तर्यामी ने सब कुछ जान लिया था जैसे जो हो रहा था तब श्री गोरक्षनाथ जी ने राजा प्रजा सहित गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी को आये जानकर उसने गुरु जी की ओर दृष्टिपात कर थोड़े झुककर के मानसिक प्रणाम किया तो तब एक घुटना कुछ हिलकर ऊपर हो गया तो कुछ मेघ और वर्षा का देवता कर्कोट नीचे से निकलकर भाग लिये। बाद में मत्स्येन्द्रनाथ जी की कृपा से कुछ समय में भूरि वर्षा हुई इस वर्षा से पूर्व ही गोरक्षनाथ जी से सबने अपनी त्रुटि की क्षमा याचना की और गुरु के कहने से शेष मेघों को तथा नागों को

भी श्री जगत्पति ने मुक्त कर दिया तो वर्षा हुई थी। तब पुन: नरेन्द्रदेव ने महती प्रसन्नता से गुरुदेव मत्स्येन्द्रनाथ की रथ यात्रा निकाली। इस प्रकार तभी से प्रथम निकली रथ यात्रा के समय पर प्रति वर्ष राज आज्ञा राज प्रबन्ध से राजा प्रजा द्वारा यह रथ यात्रा निकलती है पूर्ववत्। मत्स्येन्द्रनाथ की प्रतिमा की अब निकलती है और तभी से नेपाल के सिक्के में श्री श्री गोरक्षनाथ नामांकित होता आ रहा है इत्यादि महायोगेश्वर परमेश्वर गुरु गोरक्षनाथ जी के गुण बल प्रभावों से भूरिभारभूत लीलाओं के अनेक महारण्य और महानगर विराजममान हैं इस भूभाग में हैं मेघमालासनी कृत रूप में संस्तवन में गुरु गोरक्षनाथ जी का रमणीय, दृश्य (झांकी) मिलता है। यथा–

चन्द्रार्क द्रुहिणाच्युताम्बुजलसल्लोकेशकंसारिभि:।
काली भैरवसिन्धुरास्यहनुमत्क्रोडै: परीवारितम्।
वन्दे तं नवनाथसिद्धमहितं मेघाहिमालासनम्।
मालापुस्तक शुलडिण्डिमधरं गोरक्षमृत्युञ्जयम्।।१।।

द्वापर युग में श्री गोरक्षनाथ जी की संक्षिप्त लीला

[१]निवसन्ति महासिद्धा योगिनो यत्र निश्चला:।
युगादितीर्थस्थानानि देदीप्यन्ते यथाक्रमम्।।२।।

जहाँ महासिद्ध योगी लोग जहाँ निश्चलरूप से निवास करते हैं। वे तीर्थ स्थान युगों के आदि काल से यथा क्रम से प्रकाशमान होते चले आ रहे हैं।

१–श्री ना० ती० वली पृ० ४ में।

[१]उपरिष्टान्महाकोटं तन्नगर्या विराजते।
दुर्गेऽन्तर्भाति तत्रापि श्रीनाथचरणद्वयम्॥१३॥

ऊपर उस नगरी का महादुर्ग विराजमान है। किले के भीतर श्री नाथ जी की दोनों (चरणपादुकायें) हैं।

[१]उपत्यकायामनयोरधो गुरुकुलासनम्।
चकास्त्यत्रापि श्रीनाथचरणम्बुजमद्भुतम्॥१४॥

इन दोनों पर्वतों के मध्य में गुरु कुल का स्थान है। यहाँ श्रीनाथ जी के परमाद्भुत चरणारविन्द सुशोभित हैं।

[१]पूर्वमत्रैव मान्धाता तपस्तप्त्वातिविस्तरम्।
लेभेमनोऽभिलषितं वरं श्रीनाथपादतः॥१५॥

पूर्व काल में मान्धाता राजा ने यहीं तपस्या कर श्रीनाथ जी के चरणार्विन्दों के अनुग्रह से मनोवांच्छित वर पाया था।

[१]एवं राष्ट्रोडुवंशीयो मालदेवो महातपाः।
रावलोपि महातेजा उभौ वरमवापतुः॥१८॥

इस प्रकार महातपस्वी उडुवंशीय राजा मालदेव तथा महातेजस्वी रावल जी दोनों ने वर प्राप्त किये।

[१]तदधो वर्तते तीर्थं श्री गोरक्षकमण्डलुः।
श्री नाथस्यैवशैलोऽयं युगादिस्थानमुच्यते॥२७॥

उस गिरि के नीचे गोरक्षकमण्डलु नाम का तीर्थ है। यह श्री नाथ जी का शैल है इसके अंगन में जो स्थान है वह युगों के आदि काल से ह।

१—ये सब श्री ना० ती० वली के हैं ।

[1]तथैव नव नाथानां मुख्येयं स्थितये स्थली।
चतुरशीतिसिद्धानां महापीठं हि कथ्यते।।२२।।

यही नव नाथों का भी विशेषकर निवास स्थान रहा और चौरासी सिद्धों का भी महापीठ यही रहा है।

तत्र गोरक्षमठिकानामधामास्ति पावनम्।
रुक्मिणीकृष्णयोस्तत्राभूत्पुरा पाणिपीडनम्।।
रुक्मिणीरूपलावण्यां मोहिता: सकला: सुरा:।।३२।।

उक्त नव नाथ तथा चौरासी सिद्धों की महापीठ और गोरक्षकमण्डलु तीर्थराज से पश्चिम की ओर उत्तम प्रभास क्षेत्र है वहीं गोरक्ष मठिका नाम का परमधाम है वहीं रुक्मिणी श्रीकृष्ण जी का परिणय (विवाह) हुआ था। वहां श्री रुक्मिणी जी के रूपलावण्य से सभी देवगण मोहित हो उसको कंकण बान्धने में असमर्थ हो गये थे। यथा—

[1]बभूवु: शक्तिरहितास्यतस्या: कंकण बन्धने।
तदा देवा: सऋषय:प्रजग्मु र्मिलिता: परे।।३३।।
गोरक्षनाथं राजन्तं गुप्त भावेन तत्र तम्।
स्तुवन्त: प्रार्थयामासु दर्शनं तस्य शूलिन:।।३४।।

इस प्रकार रुक्मिणी जी के कंकण बांधने में अशक्त हुए देव तथा ऋषिगणों अन्यान्य जनों ने वहां गुप्त रूप से विराजमान बालयति गुरु गोरक्षनाथ जी की सब मिलकर एकचित्ताकार वृत्ति से स्तुति करने लगे तो कुछ ही समय में त्रिशूलधारी भगवान गुरु गोरक्षनाथ जी वहीं प्रकट हुए

१—श्री ना० ती० व० में।

तो देखकर के सब देवादि प्रसन्न हुए। यथा–

[१]स्तुत्यातितुष्टो योगीन्द्रस्तेम्य: सन्दर्शनं ददौ।
साधितं प्रार्थ्यतैस्तेन तस्या:कंकणबन्धनम्।।३५।।

स्तुति से सन्तुष्ट होकर योगीन्द्र ने उन लोगों को दर्शन दिया और देवादि की प्रार्थना से रुक्मिणी के कंकण बंधन सिद्ध किया।

[१]ततस्तुष्टु वतुर्नाथं रुक्मिणीदेवकी सुतौ।
भक्त्या परमया सा तु प्रसिद्धा जगती तले।।३६।।

इसके बाद श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणी ने परम भक्ति से श्रीनाथ परमेश्वर की स्तुति की जो आज भी संसार में तब से लेकर अभी तक विद्यमान तथा प्रसिद्ध है। जो कल्पद्रुम में गर्ग मुनि तथा कृष्ण जी के सम्वाद में हैं। यथा–

[२]गोरक्षनाथ: को देव: को मन्त्रस्तस्य पूजने।
सेव्यते केन विधिना तन्मे ब्रुहि महामुने।।१।।

श्रीकृष्ण जी ने कहा हे महामुने गर्ग जी! श्री गोरक्षनाथ जी कौन देवता है। उनकी पूजा की विधि किस प्रकार से है ये सब मुझे कहो? इत्यादि शेष उक्त ग्रन्थ में देखो।

ततोऽतितुष्टो योगीन्द्रो वरदानोन्मुखोऽभवत्।
उवाच वरं ब्रूहि युवां यन्मनसीप्सितम्।।३१।।

अर्थ–योगीन्द्र स्तुति से तुष्ट हो कृष्ण रुक्मिणी को वर मांगने को कहा तब कृष्ण रुक्मिणी दोनों ने कहा कि–

१–श्री ना० ती० व०
२–कल्पद्रुम में देखो।

[१]ततस्तौ ववृतुर्नाथ भवानत्रैव तिष्ठतु।
तथास्त्विति वरं दत्त्वा नाथस्तत्रैव तस्थिवान्॥३२॥

आप हम पर प्रसन्न हो तो हमारा वर यही है कि आप यहीं हमारे पास विराजमान होकर हमारे को दर्शन देते रहें।

[१]चतुर्वर्ग प्रदातॄणि वर्णये तानि साम्प्रतम्।
तत्रास्ति पावनो देशो देवमल्लरनामतः॥८६॥

अब चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले उन स्थानों का वर्णन करता हूँ वहां देवमल्लार नाम का पावन देश है।

[१]कदली धामतत्रास्ति जनानां मुक्तिदायकम्।
तदेव द्वापरयुगस्यादिस्थानं निगद्यते॥८७॥

सर्वजनों को मुक्ति प्रदान करने वाला वहां कदली धाम है वही द्वापर युग का आदि स्थान है। ऊपर जिन मठों की सत्य युग पूर्वाध से सिद्धता प्रमाणित है। वैसे ही वे मठ तीर्थ अपनी सत्ता को तथा अपने निर्माताओं को भी सत्ययुग, त्रेता, द्वापर में भी सिद्ध प्रमाणित करते हैं। तथैव कलियुग में भी ये मठतीर्थ प्रमाणिकता तथा अपने संस्थापकों की संसिद्धि करते रहेंगे। देवों एवं ऋषियों की प्रार्थना तथा रुक्मिणी को कंकण बान्धना और कृष्ण दम्पति को वर देना। ये सब श्री गोरक्षनाथ जी की द्वापर में विद्यमानता को सिद्ध और प्रमाणित कर रहे हैं।

१—ये सब श्लोक ना० ती० के हैं।

गर्गर्षि का श्री गोरक्षनाथ जी के संदर्भ में कृष्ण जी को बताना

[१]देवाश्च मुनयः सर्वे पप्रच्छुर्धर्मवादिनः।
देवदेवं महादेवं गोरक्षस्य च कीर्तनम्॥

गर्ग जी बोले–हे कृष्ण! जो अब आपने मुझसे पूछा है यही पूर्वकाल में श्री महादेव जी से ऋषि–मुनियों तथा देवताओं ने गोरक्षनाथ जी के विषय में पूछा था। जैसे–देवताओं ने कहा कि–

कोऽसौ गोरक्षनाथो वै तपस्वी जटिलाभिधः।
[१]कथं जातो महाबुद्धि रेतद्ब्रूहि सुविस्तरम्।

देवता बोले–हे महादेव! गोरक्षनाथ जी कौन हैं? वे जटा मण्डल मण्डित महातपस्वी योगीराजाधिराज योगवैज्ञानिक महा प्रतिभाशाली हैं। महादेव जी–

स्वयं ज्योतिःस्वरूपोऽयं शून्याधारो निरञ्जनः।
समुद्भूतो दक्षिणास्यां दिशि गोरक्षसंज्ञकः॥

महादेव जी बोले–हे देवों! मुनियों!! यह गोरक्षनाथ हैं, स्वयं ज्योतिःस्वरूप है स्वप्रकाशदेव है। जिनका प्रादुर्भाव प्रथम अतिचित्ताकर्षक वन में हुआ था। उन्होंने जब स्वेच्छा से प्रादुर्भूत होना हो तो देश तथा समय भेद से स्वेच्छित रचना रच लेते हैं अर्थात् जहाँ चाहें वहाँ ही अपनी इच्छा का वातावरण बनाकर प्रादुर्भूत हो जाते हैं।

हे देवताओं! सत्य यह है कि यह परम पुनीत निखल मायाजालातीत मेरा परम स्वरूप है। योग प्रचारादि कार्यों के लिये धारता हूँ।

१–गो० स० ना० श्लोक ३। ४

गोरक्षनाथमन्त्रेषु गृहिते विधिपूर्वकम्।
[१]तस्यानुष्ठानमात्रेण भवेत्सिद्धिर्ध्रुवं नृणाम्।।

महादेव जी बोले—हे मुनियों! देवताओं!! इस देवाधिदेव श्री गोरक्षनाथ जी के उपदेश कल्याण कारक हैं। उस द्वारा दर्शित अनुष्ठान से मोक्ष स्वहस्तगत होती है। पुन: महादेव जी बोले कि—

देवा: [१]श्रृणुत वै सर्वे गोरक्षस्य विधिक्रिया:।
गोरक्षं हृदि ध्यात्वा योगीन्द्रोभवितो नर:।।

हे देवो! गोरक्षनाथ जी का हृदय में ध्यान करने से नर योगीन्द्र हो जाता है। उनका ध्यान ज्ञान मान सभी कल्याण प्रद है।

श्री कृष्ण जी—

धन्योऽसि मुनिशार्दूल गोरक्षस्य विधि: क्रिया:।
या: प्रोक्ता भवता श्रोतुं परं कौतुहलं हिमे।।९।।

श्री कृष्ण जी बोले कि हे मुनि शार्दूल! आप धन्य हो जो आपने मेरे पूछने पर गोरक्षनाथ जी के सन्दर्भ में जानकारी दी और अब प्रभो! श्री गोरक्षनाथ के मन्त्रों के विषय में कुछ प्रकाश डालो? उस महाशक्ति की विचित्र कथाओं को सुनकर मुझे परमानन्द मिल रहा है।

गर्ग उवाच—

[१]शृणु त्वं राधिका नाथ विधिपूर्वकजां क्रियाम्।
गुंह्यातिगुह्यमन्त्रस्य वेदास्यागमनंविधिम्।।९।।
[१]गोरक्षनाथमन्त्राणां फलं च स्तुतिसम्भवम्।
वक्तुं न शक्यते कृष्ण कल्पकोटिशतैरपि।।१०।।

१—गो० स० ना० के श्लोक हैं।

गर्ग जी बोले—हे राधिकानाथ श्री गोरक्षनाथ जी के गुण ज्ञान का पार नहीं है। यदि हम सौ करोड़ कल्पों तक भी वर्णन करें तो फिर भी अन्त को अनन्त ही कहना होगा।

गर्ग मुनि उवाच—

[१]गोरक्षधर्मं यक्ष्यन्ति त्रिविधा वै नरा भुवि।
सात्विका राजसाश्चैव तामसाश्चेति ताञ्छृणु॥

(गो० गी०)

सात्विक, राजस, तामस ये तीनों प्रकार के मनुष्य संसार में श्री गोरक्षनाथ जी का भजन पूजन करते हैं। इत्यादि उक्त प्रमाण गुरु गोरक्षनाथ जी की विराज़मानता को द्वापर युग तथा उससे भी पूर्व युगों में प्रमाणित करते आ रहे हैं।

कलियुग में श्री गोरक्षनाथ जी का महोज्जवल यश प्रकाशमान

ऊपर जितने भी सतयुग से लेकर तीर्थ स्थान कह आये हैं वे भी गुरु गोरक्षनाथ जी के धवलयश को प्रकाशित करते आ रहे हैं। परन्तु कलियुग में अन्य अनेकानेक उनसे चमत्कारित यशों के और महासंघ उनके पूर्व संघों में सम्मिलित होकर लोक को जागृत कर रहे हैं। यथा—भर्तृहरि, पूर्णभक्त अर्थात् सिद्ध विचारनाथ, चौरंगीनाथ ये क्रमशः उक्त दोनों के नाम हैं।

१—इसके विषय में विशेष ज्ञानार्थ क० द्रु० में। गो० स० ना० के गो० गी० इत्यादियों में देखो।

श्री गुरु गोरक्षनाथ जी की
पूर्ण भक्त पर कृपा करना

पूर्णभक्त का नाथ मार्ग में चित्रांगनाथ नाम भी है। सिद्ध बालकनाथ सिद्ध रत्ननाथ जी, श्री नागनाथ जी (लक्ष्मणनाथ) श्री रामनाथ जी, वीर बंकनाथ जी, सिद्ध गोधननाथ जी सिद्ध चोलीपानाथ जी सिद्ध चर्पटनाथ जी, सिद्ध मल्लिकानाथ पूर्व नाम इसका बुधेन्द्रमल्ल था। वरदनाथ जी, कनकाईनाथ, भुसकाई नाथ, महासिद्ध धर्मनाथ जी इत्यादि अनेक अन्य भी इन्हीं की यशोविभूतियां संसार को प्रकाशित कर रही हैं आगे चलकर इन यशोमूर्तियों को कुछ विस्तार से दिखावेंगे। पूर्णभक्त का संक्षिप्त वर्णन–पूर्वकाल में शीलवान नाम का राजा राज्य करता था जिसकी राजधानी सियाल कोट नगर में थी। इसकी बड़ी रानी अच्छरां (अप्सरा) थी। बहुत समय बाद इसने पूर्णभक्त को जन्म दिया तो राजा–रानी को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने ज्योतिर्विदों को बुलाकर जातशिशु का प्रारब्ध भविष्य जानना चाहा तो ज्योतिर्विदों ने विचार कर बताया कि यह आगे चलकर बहुत बड़ा राजा या सिद्धराज होगा। सम्भव है कि इस पर कोई महाकष्ट भी आवे और यह भी आवश्यक है कि १२ वर्ष पर्यन्त तुम पुत्र का दर्शन न करो? इसलिये राजा ने अपनी दृष्टि से तिरोहित ही राजकुमार का पालन पोषण करवाना प्रारम्भ कर दिया और छः वर्ष के बाद उसका शिक्षण भी निर्दिष्ट करा दिया। बारह वर्ष तक बड़ी गौर से ये सब कार्य हुए और बारह वर्ष पूरे होने पर राजा शीलवान ने परम प्रसन्नता पूर्वक दान पुण्य करते हुए माङ्गलिक कार्यों से पुत्र के दर्शन किये और पंडितों ने पूर्ण यह नामकरण किया तथा विविध समुदाय के लोगों को भोजन, दान, दक्षिणादि दिये। तब राजा ने माताओं को नमस्कार पूर्वक दर्शन करने का पूर्ण को आदेश दिया। पूर्ण पिता के वचन

शिरोधार्य जानकर प्रथम अपनी जननी को न मिलकर विजननी को मान देने के विचार से उसके निवास पर गया एवं स्वमाता से भी अधिक मानसिक भाव से प्रणाम कर विमाता से आशीर्वाद चाहा। किन्तु वह तो परिपूर्ण से निकले जो सब प्रकार से ही हैं। उसके पूर्ण रूप लावण्य को देखकर कुछ विपरीत ही निकृष्ट भाव बना बैठी। पूर्ण ने फिर विनम्र भाव से जब विमाता को माता कहा तो रोषयुत होकर के बोली कि मैं तेरी माता नहीं हूँ। तेरी माता वह होगी जिसने तुझे जना तुम तो मेरे भाव में हो भाव तथा मेरे विचार में विचार बनाओ तो ठीक है अन्यथा त्वदर्थ अनर्थ होगा? क्योंकि हम दोनों समव्यस्क हैं। मैं तेरी माता कैसे हुई व्यर्थ बात न मुझे कहो पूर्ण को यह वचन विमाता के मृत्यु से भी दु:सह और भयानक प्रतीत हुए और उसे प्रणाम कर वहाँ से चले तो विमाता ने पूर्ण की बाँह पकड़ कर भीतर खींचा तो बाहु को छुड़ाकर वहाँ से यकायक चल पड़ा तब विमाता लूणा बोली कि अरे! मेरी बात मान ले अन्यथा तेरे जोड़–जोड़ पृथक–पृथक करवा दूंगी अभी समय है व्यतीत होने पर कुछ नहीं बनना। पूर्ण ने कहा कि इस जघन्य कुकृत्य से जोड़–२ (बन्द २) कटवाना वर है क्योंकि धर्म तो बना रहेगा, हत धर्म नष्टकर देता है रक्षित धर्म रक्षा करता है एवं चिन्तातुर हुआ विमाता के वचनों से प्रयत्न पूर्वक वहाँ से निकल आया तथा क्षीणकान्ति खिन्नवदन हुआ धर्ममूर्ति पूर्ण स्वजननी के महल में पहुँच प्रणाम कर चरण स्पर्श करते ही स्वमाता ने पुत्र को अपने वक्ष में लगाकर महास्वर्ग का सुख लाभ किया और पुत्र के उत्तांग का चुम्बन करने लगी और बाद में जब माता ने पुत्र पूर्ण का

गौर से देखा तो पुत्र कुछ उदास दिखा तो मैया ने पूर्ण से उदासी का कारण पूछा? तो पूर्ण ने लज्जित हो अपनी माता को विमाता की नीच हीन भावना का संकेत किया। तब पूर्ण की माता अच्छरां विस्मिता हुई निष्प्राण सी हो गयी। मन में सोचने लगी कि डाकिनी मेरे प्राण एकलौते पुत्र को न जाने किस प्रकार पेश आवेगी। इस प्रकार अच्छरां राजा के डर के कारण कहती है हे परमेश्वर! निर्दोष रूप यह जो मेरा प्राण है। मुझ अबला का बल है मेरी दृग्ज्योति है हे प्रभो! इस यतीम के रक्षक तथा बक्षक आप ही हो! इसे प्राण प्रदान देना एवं लुप्त हुई परमेश्वर से मानसिक तथा धीमी वाणी से प्रार्थना कर रही थी।

राजा का पुत्र की खुशी में लूणा के महल में जाना तथा लूणा का झूठा स्वांग बनाना

इतने में राजा पुत्र दर्शन की खुशी में फूला जब लूणा के महल में गया तो लूणा होनी ने राजा के आने का समय जानकर उससे थोड़ा पूर्व ही झूठा नकली शोक स्वांग (सांग) ऐसा बना रखा था कि जो सच्चे स्वांग को भी धूली धूसरित कर रहा था। सांग फटे पुराने चीथड़े बोरी के टाट पहने हुए तथा बोरी टाट में ही लिपटा स्वांग भूशय्या पर शव वत पड़ा था तब राजा के बारम्बार पूछने पर उस डैन दुष्ट स्वांग में से आवाज आई कि इस दुष्ट पुत्र निर्लज्ज के जन्मने से क्या? आप कौन से सुख तथा कल्याण की स्वप्न में भी आशा कर सकते हो? जो माता से भी पत्नी का सा व्यवहार चाहता है। यदि आप ऐसे पुत्र को भी पुत्र समझकर रखोगे तो रखो? मैं नहीं रहूँगी आप पुत्र को रखियेगा मैं आत्महत्या कर लूंगी। राजा ने जब यह बात सुनी तो जहाँ वसंततर्तु के उद्यान (बाग) विकसित हो रहे थे। तत्काल ही उदासीनता दु:खों अति भयंकर शोक

महाअन्धघोर झंझावाताओं ने आक्रमण कर दिये और शुभ सूझबूझ के रास्ते बन्द होकर महामन्दभाग्यों के महोत्सव होने लगे।

अब कोपान्ध उन्मत हुआ राजा शीलवान (शालीवान)

उधर अच्छरां को अमंगल दिखाई देने लगे कौवे बोलने और कुत्ते रोने लगे। उधर क्रोधान्ध तथा उन्मत हुए राजा ने जल्लादों को बुलाकर कहा कि इसी वक्त पूर्ण को घोर वन में ले जाकर इसके दोनों हाथ पांव काटकर लाओ और शेष शव को वहीं किसी विरान कूप में गैर देना। यह कार्य दिन में १२ बजे तक अधिक दो बजे पर्यन्त करके लौट आना अधिक देरी नहीं करनी और दोनों ही नेत्र इसके गहराई से निकाल कर लूणा के महल में ले जाकर रानी के आगे रख देना ताकि उसका रोष नरम होवे। उन परवश हुए जल्लादों ने गहन जंगल में एक कूप के पास अर्कों से दोनों हाथ तथा घुटनों से दोनों पांव काट कर दोनों नेत्र निकाल कर शव को कूप में डाल छः पावन अंगों को लाकर रानी लूणा के आगे रख दिये। लूणा चंडालनी अच्छी प्रकार पहचान कर बाद में जल्लादों को कुछ उपहार दिये वे लेकर चले गये। अच्छरां विल्पती हुई आन्धी बौली हुई दुःखियारी श्वास रोल रही थी तथा ईश्वर के सम्बन्ध में रोष प्रकट कर रही थी कि आपका क्या न्याय है?

बाद में लूणा चमयारी ने वे अंग जानवरों के आगे गिरवा दिये

लूणा चमयारि ने अंगों को ठीक पहचान करके कि ये पूर्ण के ही हैं? तो बाद में अंग जानवरों को दे दिये वे खा गये और अच्छरां को

लूणा ने कारागार में बन्द करवा दिया। पृथक–२ दोनों माँ पुत्र अतिगहन दु:खरूपी मूर्च्छित अवस्था में पड़े परमेश्वर शिव के ध्यान में लवलीन हो रहे थे। बहुत समय के बाद सदाशिवरूप गुरु गोरक्षनाथ जी कुछ शिष्यों के सहित कैलास से दक्षिण दिशा में जो अतिचित्ताकर्षक वन से चलकर के उस कूप के पास ठहर गये जिसमें छिन्नांग पूर्ण पड़ा था। उक्त वृत्तान्त के जन्मान्तरीय कर्म फलरूप दण्ड की समाप्ति की सन्निधि आ जाने पर पूर्णभक्त के पास महाभवरोग के महाभव वैद्यराज आ गये जिनका नाम गोरक्षनाथ है यही महाभवरोग के मोचक शिव हैं। गोरक्ष (रक्षा करने वाला) किससे रक्षा त्रिविध पाप ताप भव (संसार) से रक्षा करने वाले आ गये।

अर्थात् संसार रूप रोग को हरने वाले शिव रूप वैद्यराज गुरु गोरक्षनाथ आ गये। पाप ताप रूपान्धकार नाश होकर वसन्तर्तु का समय फिर आ गया। सभी उद्यान फूल फलों से छा गये। अनेक महासिद्ध शिष्यों सहित सुशोभित होते हुए महासिद्धराजाओं के भी महासिद्धराज श्री गोरक्षनाथ सर्वान्तरयामी ने अपने भक्त पूर्ण के कल्याण हेतु कूप के समीप विश्राम किया। जिस कूप में पूर्ण को पूर्व जल्लाद काटकर विसर्जित कर गये थे। सर्वान्तरयामी श्री गोरक्षनाथ ने कोई हेतु जगाने के लिये अपने शिष्य सूरतनाथ जी को उस कूप से जल लेने को भेजा तो जब पात्र कूप में पूर्ण भक्त के समीप ही गिरा तो पात्र उसके कन्धे से छूकर नीचे गया उस ओर कूप में जल न था। भक्त पूर्ण की जो आधी–आधी भुजायें थीं उन्हीं की कौली भरकर अपनी छाती से लगा ली तो सिद्ध सूरतनाथ ने जब लेजू को हिलाया तो उसे जितना वजन

होना चाहिए था अन्दाजन उससे काफी अधिक प्रतीत हुआ तब उसने नीचे देखा तो एक मनुष्य ने कौली भर रखी है और न ही उस ओर कूप में जल ही है। वह सिद्ध गुरु जी से बोला कि गुरुदेव जी यह कोई विकलांग असहाय पुरुष कूप में है इसको बाहर निकाल देवें क्या? क्योंकि इसने सम्भव है बाहर आने की इच्छा से कौली भरी हो।

तब जगन्नियामक जगद्गुरु जी ने उत्तर दिया कि बेटा! इस असहाय की सहायतार्थ ही तो यहाँ आकर ठहरे हैं। इस कारण ही तो तुझे पानी के लिये भेजा था। तब महाराज जो कूप से पहले कुछ थोड़ी दूर थे अब कूप के तट पर आ गये और उससे बोले कि प्रियजन क्या कौली भरे–भरे बाहर आ जायेगा कि वैसे निकाले। तब पूर्ण बोला कि महाराज! कौली मेरी छूट जानी है मुझ पर वैसे ही कृपा करो हे गुरो! तब गोरक्षनाथ जी ने कई गज लम्बी अपनी दक्षिण बाहु निकाली और उससे कूप तट में बैठकर अलौकिक बाहु से पूर्ण को कन्धे के पास से पकड़ कर बाहर निकाल अपने पास बैठाकर सब वृत्तान्त गुरु गोरक्षनाथ जी के पूछने कर कह सुनाया। तब करुणाकर ने पूर्ण के शरीर को एक वस्त्र से सर्वतः आच्छादित कर पञ्चपल पर्यन्त तो पूर्ण के शरीर में एक बार सन्नाटा सा उठा तो पूर्ण परिमूर्णांग हो गया। यथा छिन्नांग से पूर्व था उससे भी कई गुणाधिक सुन्दर सुचित्रांग हो गया। जैसे महासागर में डूबते हुए को पूर्ण जीवन का सहारा पाने पर जितनी प्रसन्नता होती है उससे भी कई गुणाधिक पूर्ण प्रसन्न हुआ गुरु गोरक्षनाथ परमेश्वर के दर्शन करके तृप्त नहीं हो रहा था। प्रसन्नतारूपी अश्रुओं से पूर्ण रोमाञ्च हुआ मानसिक महासागररूपी लहरों में लहराता हुआ विचारता है कि बिना प्रयोजन मुझ

असहाय पर असदृशी तथा असम्भव जो कृपा हुई है। यह सांसारिक अवस्थात्रय कारक के अतिरिक्त वशवर्तिनी नहीं है अतः यह सर्व प्रजापतियों तथा इन्द्रादि देवों सहित परात्पर ब्रह्म ही हैं आज मैं धन्य तथा कृतकृत्य हूँ। आज मेरे जैसा कौन भाग्यशाली तथा सुखी होगा? एवं मुक्त ही हूँ। आज मेरे करतल में चारों पदार्थ गुरुदेव गुरु गोरक्षनाथ जी ने कर दिये हैं। इस गुरुदेव से अधिक कोई भी तत्त्व न जानकर इसके स्वरूप में अशेष श्रद्धा विश्वास को धारण कर धैर्य ध्रुव हो जाऊंगा इसके बाद टिल्ले पर ले जाकर के कुछ दिनों के बाद महाराज ने पूर्ण की प्रार्थना पर गुरु ने पूर्ण को दीक्षित कर दिया तथा पूर्व पूर्ण नाम वाले को गुरुजी ने वास्तव में पूर्ण कर दिया अब गुरु जी ने छिन्नकर्ण करके मुद्रां पादी नाद जनेऊ देकर तथा नामकरण चौरंगीनाथ कर दिया। इसके कुछ मास बाद जगज्जनक गुरुदेव पूर्ण से बोले हे—वत्स चौरंगीनाथ! अब तुम घर जाकर अपने माता पिता को अशोक में लाने के लिये जाकर दर्शन दे आओ क्योंकि वे भी कुछ सुख का शेष जीवन भोग लें। हे गुरु जी! माँ बाप की नेकी मुझे याद है मेरे माँ बाप इष्टदेव गुरु सब आप ही हो जिन्होंने मुझ अनाथ को नाथ बनाया है। श्री गोरक्षनाथ जी—हे सौम्य! फिर भी वे तेरे जन्मदाता तो हैं चाहे वे कैसे भी हों उन्हें अवश्य एक बार जाकर मिलो!

अब गुरु की आज्ञा मानकर पुनः माता–पिता को मिलने जाना

गुरु जी की आज्ञा पाकर चौरंगीनाथ जी स्यालकोट की ओर चल दिये। वहाँ जो पूर्ण के नाम से शीलवान ने बाग लगाया था। वह

भी पूर्ण के हाथ पांव कटवाने के बाद राजा ने उजाड़ करा दिया था जिसके वृक्ष अब सूखकर के ईन्धन (बालन) बन चुके थे। उसमें ही पूर्णनाथ ने जाकर आसन लगा दिया अब कमण्डलु में से जल लेकर तथा गुरु जी का नाम लेकर जो कई वर्षों का शुष्क होकर टूट–फूट गया था उस पर गुरु मंत्र से मन्त्रित जल को छिड़का तो तत्काल ही उसमें से कमल कोमलें निकलकर बाग वृक्षों ने भूमि को आच्छादित कर लिया। पूरे दिन में ही पूरे नगर तथा देश में इस चमत्कार का प्रसार हो गया एवं सैकड़ों की संख्या में चारों दिशाओं से लोग हरे बाग तथा हरा करने वाले के दर्शनाथ आ जा रहे थे यह सूचना शीलवान को भी मिल चुकी थी। कई दु:खियों के पूर्ण भक्त ने दु:ख भी दूर किये। जब पूर्ण की जननी को पता चला कि तेरे पुत्र के बाग को किसी नाथ साधु ने हरा भरा कर दिया है तो ऐसा सुनकर जो पुत्र वियोग में रो–रोकर अन्धी हो गयी थी वह गिरती पड़ती बुरे हाल से टटोलती हुई पूर्ण वाले बाग में आये साधु के पास पहुँची जो कि उसी दुखियारी का ही पुत्र था। पूर्ण ने माता को आती देख प्रथम मानसिक प्रणाम कर खुश हुआ। उठकर अपनी माता का हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया और स्वयं को गुप्त रखकर माता से बोला कि माता जी आपके नेत्र कब से तथा कैसे ज्योतिहीन हो गये हैं! और कमजोर हो! क्या कोई घर में गरीबी है? तब माता जी ने पूर्ण भक्त का ही पूर्णनाथ को सब वृत्तान्त सुना दिया कहा कि यही मेरी सकल बीमारियों का कारण है तब चौरंगीनाथ अपनी जननी के धैर्यार्थ उपदेश करने लगा कि माता दु:ख–सुख सब कर्मों का ही तो फल है। इस मृत्यु रूपी शिकारी के जाल में सब संसार फंस रहा है पूर्ण की बोली तथा बातों

से अच्छरां को सन्देह हुआ तो बोली कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम पूर्ण को कहीं परिपूर्ण ने ही तो नहीं रख (बचा) लिया। तब पूर्णनाथ स्वमाता का दु:ख देखकर न सह सका तो माता के नेत्रों को अपने हाथों के हलके स्पर्श से मसला तो नेत्रों में रुका हुआ मोतियाबिन्द का पानी सब निकलकर नेत्र स्वच्छ गुलाब के फूल की तरह निखर गये। अब नेत्र ज्योति पूर्ण होने पर अपने पुत्र पूर्ण को पहचान लिया अति प्रसन्नता में आकर के पूर्ण के शिर मुख का चुम्बन किया तथा परस्पर पुन: माँ पुत्र को पारस्परिक दर्शन हुए। अब अच्छरां ने बचे रहने का समाचार पुत्र से पूछा तो उसने अपने अलौकिक गुरु गोरक्षनाथ जी की कृपा से जीवित रहना पुन: परमसुन्दर सर्वांगीण होना और सशक्त होना कहा। यह सब देख सुनकर अच्छरां की समस्त यातनायें भूत की भी विस्मृत होकर वर्तमान के भी समस्त कष्ट नष्ट हो गये फिर खुशियों के उद्यान फले फूले।

लूणा समेत शीलवान ने नाथ साधु के दर्शन तथा पुत्र कामना से पूर्ण वाले उद्यान में जाना

अब पूर्ण की विमाता लूणा समेत राजा का नाथ योगी के दर्शन करने के बाद राजा को योगी ने सादर बैठने का आदेश दिया तब राजा ने पुत्र कामना का प्रयोजन योगी के सामने रखा तो योगी ने कहा कि एक पुत्र पहले तेरे घर हुआ था उसे क्या हुआ? तब राजा ने कहा लज्जा विषय में दोषी जानकर उसे कटवाकर जंगल में फैंकवा दिया। तब राजा की बात सुनकर योगी ने पास में बैठी सुन रही लूणा के समक्ष राजा से कहा तुम्हारे घर पुत्र तब होगा जिस बात का उसकी विमाता ने पूर्वपुत्र को

दोष धर कटवाया था। वह दोष सत्य था या असत्य। यदि यह ठीक–ठीक बता देगी तो पुत्र होगा अन्यथा नहीं क्योंकि मैं इसके झूठ सच्च को जानता हूँ तब लोभ के वशीभूत हुई लूणा ने कहा मैंने ही यह सब असत्य रचना रचकर पुत्र मरवाया था पुत्र का कोई दोष न था। तब यह सुनकर राजा लालोलाल कोपान्ध होकर लूणा को खत्म करना चाहा परन्तु नाथ योगी ने राजा को पकड़ कर शान्त कर समझाया कि अब इस को मारने से क्या होगा? अब मैं भी परमेश्वर गुरुदेव से प्रार्थना करता हूँ। तुम भी शंकर की आराधना करो तो तुम्हारे अवश्य पुत्र होगा! किन्तु जिस प्रकार निर्दोष अच्छरां ने पुत्र वियोग का दु:ख सहा है वैसे ही लूणा को भी सहना होगा। इस भावी पुत्र के बाद तुम्हारा कुल आगे बढ़ना बन्द हो जावेगा। ये वर शाप योगी ने विमाता एवं पिता को दे दिये जो सही सिद्ध हुए और योगी के बारे में यह पूर्व पूर्ण ही है यह भेद पूर्ण की निज जननी अच्छरां तक सीमित रहा पूर्ण के बाग में। पूर्णनाथ के चौरंगीनाथ सुचित्रांगनाथ नाम भी हैं। यह नि:सन्देह ही श्री गोरक्षनाथ जी के शिष्य थे न कि मत्स्येन्द्रनाथ जी के क्योंकि यह वृत्तान्त पंजाब देश का है। वहाँ के बच्चों से लेकर वृद्धों तक की और विद्वान से लेकर मूर्ख तक की वाणियों में परम्परा से निकलता आ रहा है कि पूर्णभक्त श्री गोरक्षनाथ जी के ही शिष्य हुए हैं। यही शत प्रतिशत की दृढ़ धारणा है सम्पूर्ण नाथ सम्प्रदाय की भी प्राय: यही धारणा है तथा भक्त पूर्ण के विषय के लेखक पंजाब के तीनों कवि विशेषज्ञों ने भी श्री गोरक्षनाथ जी का शिष्य कहा है। १. कादरयार, २. कालीदास, ३. बालकराम इन तीनों कवियों न

पूर्णभक्त के अलग–२ अपनी–२ कविता में चरित्र लिखे हैं और श्री गोरक्षनाथ जी का ही शिष्य कहा है। पूर्ण को कूप में से निकाल कर सर्वांगीण किया कवि कादरयार का कथन है। इसकी किताब का नाम "कादरयार पूर्ण" है यह लेखक पूर्ण के समय में ही लगभग हुआ है। गुजरांवाला नगर निवासी "कवि कालीदास" है इसकी पूर्ण विषयक पुस्तक का नाम (पूर्ण कालीदास) यह पंजाबी, हिन्दी दोनों में है। "पूर्ण कादरयार" उर्दू में बालकराम के पुस्तक का नाम (पूर्ण बालकराम) है। इन तीनों ने भक्त पूर्ण को गोरक्षनाथ जी का ही शिष्य कहा है यह भी आवश्यक है कि जिस देश में जो घटना घटती है उस देशवासियों को उस घटना की पुष्ट जानकारी होना अन्य देशवासियों से सम्भव है और विकल्प इसमें यह भी है कि ईदृश असम्भव घटना को सम्भव करना भी गुरु गोरक्षनाथ जी की समर्थता हो सकती है। जो कई वर्षों के कटे हाथ पैर फिर निकाले ये सर्वांग पुन: ठीक करने ये अलौकिक असादृश्य कार्य है।

प्राण सांकली पर विचार

ज्ञान रा गुरु अम्हारा शिव मच्छीन्द्रनाथ है।
ता प्रसादे भइला पदा हाथ, त्रिभवने किरत थाकले।
अम्हारो अनदात गुरु श्री गोरक्षनाथ।।१।।
मच्छन्दरनाथ गुरु अम्हारा, गोरक्षनाथ भाई,
विवरी, विचारी चौरंगी आन मना न होरी।।२।।

यहाँ उक्त शब्द में जो अन्नदाता शब्द है जिसका अर्थ अन्न देने वाला है या अन्न का प्रबन्धक है अब विचारना यह है कि अन्न का

आदान प्रदान किसके द्वारा होता है। कहना होगा कि हाथों से होता है। इसलिये अन्नदाता से उपलक्षित हस्तादि जो उसके छिन्नांग थे वे हैं अर्थात् मेरे छिन्न हस्तादि अंगों का दाता गोरक्षनाथ जी है। गोरक्षनाथ भाई यह जो शब्द आया है इसको भी देश भेद से अलग–अलग सम्बन्ध में प्रयुक्त साधारण लोग करते हैं। पंजाब में भाई, भाइया, भा कई बार कई पिता को बड़े बन्धु को बहनोई को भी उक्त भाई आदि तीनों से पुकारते हैं एवं भैया जाँ भाई, गाजियाबाद मेरठ की ओर माता पिता दोनों पुत्र सन्तान को भी प्रेम में आकर पुकारते हैं एवं दादा गुरु को भी "गुरु" केवल इतने से ही अधिकतर पुकारा जाता है। किसी को सम्बन्ध सूचित करते समय ही दादागुरु को दादागुरु अधिकतर कहा जाता है। आगे पीछे व समक्ष उससे बातचीत करते समय तो सब ही केवल 'गुरु' या गुरु जी, इतना ही दादा को भी पुकारते हैं। यह भी विचारणीय है कि एक इतने बड़े महायोगेश्वर का शिष्य तथा स्वयं भी महासिद्ध योगीराज जी फिर राजकुमार परमेश्वर गोरक्षनाथ के परम भक्त इतने गुण सम्पन्न होने पर क्या? यह टूटे–फूटे पाँच सात शब्दों वालीयें; ये शब्दि ही बनानी थीं जिनमें कुछ गम्भीरता भी नहीं है अन्य ही किसी ने उन्हों के नाम से घड़ दी है यह भी एक विकल्प है कि कानीपानाथ जैसे चचेरे गुरु के चेले गुरुभाई श्री गोरक्षनाथ जी के यश शक्ति को देखकर जलते थे किसी ऐसे ने पूर्ण जैसा सुयोग्य शिष्य गुरु गोरक्षनाथ जी का बनाना सहन नहीं करते हों तो ऐसो ने अन्य का पूर्ण को शिष्य दिखाने के लिये यह प्राण सांकली घड़ दी हो इत्यादि उपरोक्त यश गुरु गोरक्षनाथ जी की कलियुग की लीला को प्रमाणित कर सुशोभित कर रहा है।

मरौ वै योगी मरौ, मरण है मीठा तिस मरणी मरौ गोरख मरि डीठा गो० श०

नेपाल में गोरक्षनाथ मेघमालासनीकृत की बड़ी महिमा प्रख्यात है। कहते हैं कि नेपाल के राजा नरेन्द्र देव के शासन काल में श्री मत्स्येन्द्रनाथ के मत अनुयायियों पर कोई अपमान अत्याचार किया गया था तब नेपाल नरेश जैनानुयायी था। वहीं किसी पर्वत पर महासिद्धराज सतोगुणी परमशान्तमूर्ति रूपी मत्स्येन्द्रनाथ जी समाधिस्थ तपोरत थे। उसी समय श्री गोरक्षनाथ जी गुरु जी के दर्शनार्थ गये थे। तब उनके पास न जाकर और कुछ विचार करके मृगस्थली स्थान में ही वर्षा के देवता नागों को एकत्रित कर इनका आसन जमा करके समस्त मेघमालाओं सहित बन्दी कर ऊपर आसीन हो कई वर्षों के लिये समाधिस्थ हो गये। परिणाम यह हुआ कि कई वर्षों तक वर्षा न हुई वर्षा के अभाव से राज्य में हाहाकार मच गया तब राजा प्रजा सब मिलकर मत्स्येन्द्रनाथ जी को लाये तो उनकी कृपा से गोरक्षनाथ जी के आसन के नीचे से वर्षा के देवता कर्कोटादि और मेघमालायें निकली तो वृष्टि हुई एवं सुकाल हुआ तथा पृथ्वी नारायणशाह विशेषकर गोरक्षनाथ जी के कृपा पात्र ही थे। यहाँ के सिक्कों पर "श्री श्री गोरक्षनाथ" जी अंकित रहता आ रहा है। राजमुकुट में श्री गोरक्षनाथ जी के चरणचिन्ह (पादुका के चिन्ह) आ रहे हैं।

नेपाल के एक प्रकाण्ड दांग के राजकुमार

यह राजकुमार रत्न परीक्षक गुरु गोरक्षनाथ जी से दीक्षित शिक्षित होकर महासिद्ध रत्ननाथ नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। यह सिद्धराज सात सौ

वर्षों की आयु तक भी अनेकों के दृष्टिपथ का पथिक बना रहा। इसने एक बार नाथ सिद्धों के भण्डारे में अपने वपु से मैल उतार कर उसका शिशु बुत बनाकर उसे प्राणित कर दिया था। तब काय से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम कायनाथ रखा। कायनाथ सिद्ध विचारनाथ (भर्तृनाथ) के शिष्य बनाये गये थे। कायनाथ जी भी महासिद्ध हुए हैं इनकी समाधी भी भेरे नगर पाकिस्तान में ही है और यहीं ये शिष्य बने थे सिद्ध रत्ननाथ जी अरब के मुसलिम महातीर्थ मक्का में जब गये थे तब से पीर हाजी रत्ननाथ, मुसलमानों में प्रसिद्ध हुए। तभी (पीर हाजी) की उपाधि मुसलिमों ने दी थी। इब्न हजर नामक मुसलिम लेखक के (इशाब) नाम के ग्रन्थ में लिखा है कि पीर हाजी सिद्ध रत्ननाथ का मक्का में पेगम्बर मुहम्मद साहब से भेंट हुई और कई वर्षों तक इनका आपस में विचार विमर्श होता रहा था। यह महासिद्ध जगत प्रसिद्ध गोरक्षनाथ के शिष्य थे। आगे इसका पूरा परिचय देंगे। इस सिद्ध के श्री गोरक्षनाथ जी के फ्रन्टियर तथा काबुल में अनेकों महामठ थे इत्यादि ये गुरु गोरक्षनाथ जी की ही विभूतियें इनके परम विशुद्ध यश को अतिदीर्घकाल से सुशोभित करती आ रही है अब कलियुग में भी प्रसार कर रही है।

हरियाणा प्रदेश स्थल बोहर की उपशाखा रोड़का मुहाना गुरुस्थान के साधु श्री १०८ सूर्यनाथ के शिष्य पंचाल देश के जिला अमृतसर में ग्राम किरलगढ़ दुर्गा मन्दिर स्थानाध्यक्ष योगी वीरनाथ द्वारा रचित श्री नाथचरित का चतुर्थ पुष्प समाप्त।।

—✲—

❋ अथ पञ्चम पुष्प ❋

चारों युगों में श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी की विद्यमानता

श्री आदिनाथ से उत्तर में नाथ योग मार्ग के यह प्रमुख्य आचार्य हैं। ये महासिद्धयोगेश्वर महाज्ञानागार विविध योग सिद्धियों तथा समस्त शक्तियों से सुसज्जित प्रतिष्ठित थे। महामहिम अचिन्तपराक्रम महायोगविद्या की साक्षात् मूर्ति थे। परम योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ ने तान्त्रिक साधना पद्धति का यौगिक करण कर शक्ति उपासना परक योगिनी कौलमत का परिवर्तन कर योग साधना में शिव (अकुल) और शक्ति (कुल) के सामरस्य का सिद्धान्त समझाया और महायोग के माध्यम से शिवैक्यात्मत्व में स्वरूपानुभव की प्राण प्रतिष्ठा की, ये शैव योग के महत्तम गुरु थे निगूढ़ाति गूढ़तत्त्वज्ञ थे। भगवान विष्णुरूप होने से कृष्ण की तरह महाभोग और महायोग दोनों में समर्थ थे। इन्होंने सिद्धमार्ग पोषण कर योगाचार सिखाया इनके शिष्य गुरु गोरक्षनाथ जी ने षंडगयोग हठयोग आसन (मुद्राबन्ध) प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान तथा समाधि आदि सम्बन्धित नाथ सम्प्रदाय की आधार शिला रखी। मत्स्येन्द्रनाथ जी ने बौध अनात्मवाद के विवर्त में ग्रस्त वैदिक विचार आध्यात्मिक चिन्तन का अपने सिद्धमत का आत्मा से परमात्मा का जीव से शिव का शाश्वत योग सिद्ध किया। उनकी शिवमयी योगविभूति परमात्मज्योति साक्षात्कार की प्राणामृत संजीवनी है वह महायोगेन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ जी अकाल योगपुरुष थे उनका महाज्ञान शाश्वत अव्यय है। वे महासिद्ध काल दण्ड को कर्तन कर आज भी ब्रह्माण्ड में मण्डरा रहे हैं। ये सिद्धदेही हो हठयोग

के अतुल्य प्रभाव से स्वदेह का आत्मीकरण कर निर्भय–निभ्रान्त हो यथेच्छाभूत्वा यथेच्छया विचरण कर रहे हैं। यथा–मत्स्येन्द्रनाथ जी, श्री गोरक्षनाथ, आदिनाथ सिद्धों के सन्दर्भ में हठयोग प्रदीपिका में उल्लेख है कि–

[१]इत्यादयो महासिद्धा हठयोगप्रभावतः।
खण्डयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते।।९।।

–यथेच्छा लाभ वाले हैं परमेश्वर की सृष्टि का सर्वोत्तम आनन्द यही है जिसे भोग रहे हैं। [२]आदिनाथ नाती मछेन्द्र नाथ पूता निजतत निहारै गोरष अवधूता। आदिनाथ नाती मछेन्द्रनाथ का मैं शिष्य हूँ निजात्मस्वरूप के दर्शन कर रहा हूँ एवं महासिद्ध योगात्मा मत्स्येन्द्रनाथादिक को शताब्दियों की सीमाओं से सार्वाधिक करना तो साधारण पुरुषों द्वारा गागर में सागर करने वाली ही उक्ति है। मत्स्येन्द्रनाथ जी की विशिष्टता यह है कि नाथ परम्परा में आदिनाथ शिव के उत्तराधिकारी रूप में वे नाथ सम्प्रदाय के प्रमुख्य आचार्य हैं तथा आदिनाथ जी के बाद के गुरु हैं कौलाचार के सिद्धपुरुष हैं। नवनाथ परम्परा में मत्स्येन्द्रनाथ जी को मायास्वरूप करुणामय कहा है यह सिद्धमार्ग के अनुयायी थे। श्री गोरक्षनाथ जी ने उन्हें भवसागर से उतारने वाला नाविक (मल्लाह) कहा है। इसमें उक्ति ये हैं कि–

पूरबदेश पछाहीं घाटी, जन्म हमारा जोग।
गुरु हमारा नावगर कहिये, मेटे भरम विरोग।

१. विशेष जानकारी इसकी हठयोगप्रदीपिका में देखो
२. गो० वा० श० ३७

अर्थ—प्राणपूर्वक हमारा देश है और सूक्ष्मणा (पछाहीं घाटी) आने जाने का मार्ग और जन्म से ही हमारे भाग्य में योग लिखा है। गुरु हमारे भवसागर से पार करने वाले नाविक के समान हैं भ्रम आदि रोगों को मिटा देते हैं।

(नारदविष्णुपुरांक अट्ठाईसवें वर्ष के विशेषांक में मत्स्येन्द्रनाथ का चरित्र है पृ० ५९० से ५९२ तक कल्याण कार्यालय गोरखपुर)

सिद्धनाथ चरित्र सहित कामाक्षा महात्म्य–

मोहिनी बोली—विप्रवर! मैं कामाक्षा देवी का महात्म्य सुनना चाहती हूँ।

पुरोहित वसु ने कहा—हे मोहिनी! कामाक्षा बड़ी उत्कृष्ट देवी वे पूर्व दिशा में रहती हैं। वे कलियुग में मनुष्यों को सिद्धि प्रदा है। भद्रे! जो वहाँ जाकर नियमित भोजन करते हुए कामाक्षा देवी का पूजन करता है। एक आसन से बैठकर एक रात व्यतीत करता है। वह साधक देवी का दर्शन कर लेता है और वह देवी भयंकर रूप से मनुष्यों के सामने प्रकट होती है उस समय उसे देखकर जो विचलित नहीं होता वह मनोवाञ्छित सिद्धि को पा लेता है। वरानने! वहां पार्वती के पुत्र सिद्धनाथ जी हैं जो उग्र तपस्या में रत हैं सत्य त्रेता द्वापर युगों में इस सिद्धनाथ को सभी लोग प्रत्यक्ष देखते हैं और कलियुग में प्रगाढ़ श्रद्धा—विश्वास बिना उनके दर्शन नहीं होते वे अन्तर्ध्यान रहते हैं और जो वहां जाकर भक्ति भाव युक्त हो कामाक्षा देवी की नित्य पूजा करते हुए एक वर्ष तक सिद्धनाथ जी का चिन्तन करता है उसे स्वप्न में उनके दर्शन होते हैं। दर्शन के अन्त में एकाग्रचित्त हो उनके द्वारा सूचित की हुई सिद्धि को पाकर पृथ्वी पर सिद्ध

हो विचरता है। हे शुभे! वह सब लोगों की कामना पूर्ण करता हुआ सर्वत्र यथेच्छया भ्रमण करता है। तीनों लोकों में जो–जो पदार्थ हैं उन सबको वरदान के प्रभाव से खींच लेता है। भद्रे! विज्ञान में पारंगत योगी मत्स्येन्द्रनाथ नाम से वहां विराजमान हैं वे लोगों को अभीष्ट वस्तु पदार्थ देते हुए अत्यन्त घोर तपस्या में रत हैं।

[१]तत्रास्ते पार्वतीपुत्रः सिद्धनाथो वरानने।
उग्रतपसि लोके सः प्रेक्ष्यते वै कदाचन।।
कृतत्रेताद्वापरेषु प्रत्यक्षो दृश्यतेऽखिलैः।

स मत्स्यनाथः किल तत्र संस्थितो विज्ञानपारंगत एवं भद्रे। शिव जी कह रहे हैं कि हे वरानने! तेरे पुत्र सिद्धनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) कामरूप देश में ठहर कर उग्र तप में रत हैं जिसको कलियुग में लोग कदाचित् ही भक्तिभाव से देखते हैं। कृतत्रेता द्वापर युगों में तो सबको प्रत्यक्ष रूप से उनके दर्शन होते हैं। वे मत्स्येन्द्रनाथ जी महाविद्या योगविज्ञान के पारंगत योगविज्ञ हैं।

[२]सुतो ममायं खलु मत्स्यनाथो विज्ञाततत्त्वोऽखिल सिद्धनाथः।।

हे उमे! यह मेरा प्रिय पुत्र मत्स्येन्द्रनाथ महायोगविद्या अमरकथा को श्रवण करके तत्त्व को जानकर महासिद्धनाथ हो गया है। इस सिद्धनाथ ने मणिप्रदीप्त सप्त शृंग पर्वत पर भी अतिदीर्घकाल पर्यन्त महाघोर तप किया था। इसी गिरिवर पर आकर के सिद्धनाथ से गुरु गोरक्षनाथ जी ने

१. ना० पु० उ० भा० अ० ६९। ६ । ७ ।१३।
२. ना० पु० उत्तर भागे अ० ६९। २५ श्लोक।

दीक्षा शिक्षा ली थी। जो ज्ञान पूर्व समय शंकर आदिनाथ जी से उपलब्ध किया था। वही महाज्ञान अब गोरक्षनाथ जी को दिया जिसके वे पूर्व ही अध्यक्ष हैं। एक समय मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ जी अनेक उत्तरीय तीर्थों से भ्रमण करते हुए तीर्थराज प्रयाग में पहुँचे और कुछ समय वहीं स्नान, जप, तप करते रहे बाद में श्री गोरक्षनाथ जी अन्यत्र विचरने के लिये चले गये और नित्यनाथ जी भी कुछ दिन निवास करके वाराणसी को चले गये। वहाँ विश्वनाथ जी के दर्शन करके तो गंगासागर चले गये गोरक्षनाथ जी इस समय गोरक्षवंशी में तप कर रहे थे जिस मठ में पूर्व समय में आकर कपिल मुनि ने गोरक्षनाथ जी से दीक्षा ली थी। मत्स्येन्द्रनाथ जी वहाँ से विचरण करते हुए प्रशिष्य कपिल मुनि के आश्रम में आ गये। दादागुरु को आते देख कपिलनाथ जी ने आगे से जाकर गुरु को आदेश प्रणाम कर आश्रम में ले आये। आसन दिया चरण प्रक्षालन किये तथा कई दिन वहाँ ठहर कर पुनः यहाँ से प्रस्थान करके कामरूप देश में पहुँचे।

मत्स्येन्द्रनाथ जी का कामरूप देश में आना

कामरूप (आज आसाम देश) है यहीं उमानन्द हैं यहाँ ही सिंहल द्वीप था। तब यहाँ सत्यवान नाम का राजा राज्य करता था। इस कामरूप देश की तब राजधानी भी कामरूप नगर ही थी। कामरूप यह नाम देश और नगर दोनों का ही था कामरूप नगर में जो देवी का मन्दिर था वह राजमन्दिर था वह भगवती कामाक्षा का था। मत्स्येन्द्रनाथ जी भ्रमण करते–करते उस मन्दिर में जब प्रविष्ठ होने लगे तो उन्हें भीतर जाने से पुजारियों ने रोका कि सभी दर्शनार्थी बाहर से ही दर्शन करते हैं तुम भी

बाहर से ही करो। भीतर जाने का पुजारी के सिवाये किसी को आदेश नहीं है क्योंकि यह भगवती का राजमन्दिर है इसलिये बाहर से दर्शन करो? तब श्री गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी ने सोचा कि केवल ज्ञान की बातों तथा युक्तिवादों से यहाँ काम नहीं चलेगा तो अपनी विद्याबल से जो रोकने वाले थे उन सबको पत्थर प्रतिमायें बना दीं और स्वयं मन्दिर में जाकर भगवती को धूपित कर वहीं बैठकर कोई जप करने लग गये तब अन्य लोग बाहर खड़े–खड़े देख रहे थे कि पुजारी योगी को रोक नहीं रहे और नहीं कुछ बोल रहे उसको सबके सब मौन हुए खड़े दिखाई दे रहे थे बाहर दूर खड़े लोग यह कौतुक देख रहे थे। पुजारियों के विषय में बातें कर रहे थे कि और तो किसी को भीतर जाने नहीं देते तो इससे अब बोलते तक भी नहीं हैं। तब बाहर वाले लोगों ने एक ब्राह्मण को बोलकर भेजा जाकर पुजारियों को कहो इस योगी को बाहर निकालें। कहीं ये भगवती के जेवरात न ले जावे अत: इसको बाहर निकाल दें यदि कहे से नहीं निकलता तो इसे पकड़कर बाहर निकाल दो। वह ब्राह्मण जब पुजारियों से बोला तो उसकी ओर न तो कोई पुजारी देखे न कोई उससे बोले तब उसने एक खड़े पुजारी के कंधे में हस्त लगाया तो वह भी पत्थर हो गया बाहर खड़े–२ लोग यह सब कुछ देख रहे थे। तब राजा को यह सूचना मिली कि एक योगी आया है वह पुजारियों से मन्दिर से बाहर नहीं निकलता। राजा ने यह सुनकर के पुलिस भेजी तुम जावो उस पाखण्डी योगी को पकड़कर मेरे पास ले आओ मैं उसे आप साफ कर लूंगा कि वह कौन है या कैसा है। तब पुलिस तो रोष विष्ट होकर बड़ी तेजी से गयी जब मन्दिर में प्रविष्ट होकर जो–जो पुलिसिया योगी को क्रूर दृष्टि

से देखता है वहीं जड़ी भूत होता जाता है और आगे पीछे को वह किसी ओर को नहीं जा सकता और नहीं देख सकता है मन्दिर से बाहर खड़े एक राजपुरुष ने यह सब देखकर के पुनः राजा को जाकर सूचित किया कि जो क्रोध में आकर योगी को अपमान की दृष्टि के विचार से मन्दिर की चारदीवारी के भीतर जाता है वह वहीं पत्थर की प्रतिमा बन जाता है तब राजा त्रस्त होकर श्रद्धा भक्तिभाव से दर्शन करने के लिए मन बनाकर चला और विचार करता है कि यह कोई सिद्ध योगी होगा। यह विचारता हुआ मन्दिर के समक्ष जा खड़ा हुआ दुनियाँ एक ओर हो गयी तो बाहर ही खड़ा राजा मन्दिर के भीतर दृष्टिपात कर देखता है कि योगी उत्ताराभिमुख बैठकर कुछ जप कर रहा है मन ही मन में राजा जड़ीभूतों को देख कर त्रस्त हुआ बोला कि हे प्रभो! यदि कोई आपकी मेरी प्रजा से या मेरे से आपको न जानते हुए कोई क्षति त्रुटि हो गई हो तो हम सबको क्षमा करो! क्योंकि मैं ही अपनी और इन सबकी क्षतियों का भी प्रार्थी हूँ। तब महाराजाधिराज मत्स्येन्द्रनाथ ने कृपा दृष्टिपात से उन सबको चेतन सप्राण कर दिया। तब राजा सत्यवान महाराज मत्स्येन्द्रनाथ जी को सविनय प्रार्थना करके अपने महल में ले गये। कई दिनों तक सविनय उनका पूजन सेवा करके बाद में प्रार्थना की कि हे प्रभो! मेरे कई रानियाँ हैं अभी तक मेरे कोई पुत्र सन्तान नहीं हुई। आप कृपा कर मुझे आशीर्वाद दो कि आप और ईश्वर की कृपा से मेरे राज्यवाहक तथा कुलावलम्बी कोई अविलम्ब सुपुत्र उत्पन्न हो और आपका यहां आना ही मेरे लिए सौभाग्यकर हो। तब महासिद्धराज बोले कि मैं कल को जा

मेरी समझ में आवेगा तुझे कहूँगा। योगी ने आने वाली रात्री के उत्तर काल में ध्यान से देखा तो राजा के वर्तमान सजीव शरीर की बनी प्रारब्धता में कोई भी पुत्र सन्तान न थी। तब उत्तर दिन के पूर्वान्ह में राजा को बताया कि तुझे इस सजीव शरीर द्वारा पुत्राप्ति तथा पुत्र के दर्शन व सुख नहीं। योगी की यह बात दोनों बड़ी रानियों मंगलकरा यशोधरा सहित राजा सत्यवान ने सुनी। योगीराज ने यह भी कहा कि एक बात और भी है कि जो मैं तुझ से कहना उचित नहीं समझता हूँ तब पुन: राजा ने सिद्ध योगी जी से कहा कि हे प्रभो! जो कुछ भी आप सर्वज्ञ ने मेरे विषय में जाना है। वह सब कृपा कर मुझे कह दो क्योंकि मेरा ध्यान उसे जानने के लिये बना रहेगा। तब योगी ने कहा कि तेरी शेष आयु ३ वर्ष दो दिन की और है। यह सुनकर राजा दोनों उपस्थित रानियां महाशोकाकुल हो गये कुछ देर बाद तीनों ही अपने होश हवाश कायम करके पुन: राजा योगीराज जी से बोला कि हे महासिद्धराट् योगिन्! आप इतने बड़े बलिष्ठ महाज्ञानी यशस्वी तपस्वी हो तो हमारे कल्याण की कुछ युक्ति रास्ता सोचो जिससे हमारा कोई लाभ हो।

सिद्धराज का राजा सत्यवान को वचन देना

तब पुन: सिद्धराज मत्स्येन्द्रनाथ जी ने कहा कि जाओ! तुम्हारे इस शरीर से तुम्हारे पुत्र हो जावेगा पुन: राजा ने योगीराज जी से पूछा महाराज कितने समय के बाद होगा? योगीराज—छ: वर्ष के बाद होगा। राजा बोला कि तीन वर्ष दो दिन की तो आप मेरी शेष आयु बता रहे हो तो छ: वर्ष में पुत्र कैसे हो जावेगा और छ: वर्ष के भी बाद आप कह रहे हो मैं तीन वर्ष दो दिन के बाद बिस्तरा बंध जाना है यह बात कैसे

बन सकती है और साथ ही आप इसी शरीर से ही अनिवार्य होने को पुष्ट कर रहे हो कोई तथ्य नजर नहीं आ रहा।

सिद्धराज–राजन्! आप यह कहो कि इस कुल के साथ आपके शरीर का सम्बन्ध है या आपका या आपकी जीवात्मा का सम्बन्ध है। राजा–शरीर का है। सिद्धराज–तो बस तेरे इसी शरीर से ही तेरी इन दोनों रानियों से जो सुन रही हैं पूर्वोक्त अवधि के बाद पुत्र होंगे। इसलिये तेरे इस शरीर से जो पुत्र जन्मेगा उसका कुलावलम्बी सम्बन्ध होगा और राज्य से भी होगा।

राजा–जी हां मैं भी तो ऐसा ही चाहता हूँ और कहता हूँ कि जो इन दोनों के ही वाहक हों। तब महासिद्ध बोले कि ऐसा ही होगा और सिद्धराज मत्स्येन्द्रनाथ जी राजा की आयु का शेष समय तो जान ही गये थे। किन्तु राजा को सिद्धनाथ के समक्ष उनकी हां में हां उनसे त्रस्त होते हुए ही मिला दी थी परन्तु मन में पुष्ट विश्वास न था क्योंकि राजा के मन में तब यह संदिग्ध विकल्प था कि या तो मेरी आयु पुत्रोत्पत्ति निकट तक होती हो तो मुझे कुछ विश्वास भी होता। इससे अब यही निष्कर्ष निकलता है कि मेरी आयु तीन वर्ष से अधिक होनी आवश्यक है अथवा मुझे तीन वर्ष दो दिनों के ऊपर न रहने से मेरे शरीर का भी अभाव (विनाश) निश्चित ही है। इसलिए मेरी आयु का विषय भी संदिग्ध वचन ही है, ऐसा ही पुत्र होने का विषय है किन्तु ये अभाव भाव राजा की मनोवृत्ति पर्यन्त ही सीमित थे। कामरूप देश से प्रस्थान करने से एक दिन पूर्व ही सिद्धराज ने नृप सत्यवान और दोनों रानियों को सूचित कर दिया था कि जो वचन हमने तुम्हें दिये हैं पूरे होंगे।

कामरूप से सिद्धराज मत्स्येन्द्रनाथ जी का प्रस्थान

सत्यवान ने बारम्बार रुकने की प्रार्थना करने पर भी वहाँ से प्रस्थान कर कुछ समय बाद बिहार के किसी मिथिला नगर में आ पहुँचे। वहाँ किसी शिव मन्दिर में कुछ दिन रुके तो उसी ओर एक महौला मिथिला नगर के राज सम्मानित तथा राज कर्मचारी शिवदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था जिसके पाँच लड़के थे जिनमें से बड़े तीन आज्ञाकारी सुयोग्य विद्वान हो चुके थे। इनमें से बड़े लड़के की शादी हुए अभी पाँच मास ही हुए थे। वही विवाहित लड़का किसी सन्निपातादि रोग से ग्रसित होकर मृतप्राय सा हो चुका था। परिवार के लोग तथा विशेषकर उसकी पत्नी बिलाप कर रहे थे और उसकी पत्नी ने स्वयं को पीट–२ कर अपना बहुत बुरा हाल कर लिया था। तब किसी व्यक्ति ने शिवदत्त से कहा कि वह जो शिव मन्दिर है उसमें महात्मा जी आये हुए हैं उनको दिखाओ सम्भव है कि उन्हों की ही कृपा हो जावे क्योंकि वह महात्मा भव्य महाशक्ति सम्पन्न प्रतीत हो रहे हैं और निर्लोभी निर्भय वे देखने में बेपरवाह लग रहे हैं। तब उस मृतप्राय का पिता और उसका लड़का गौरवदास दोनों ही शिव मन्दिर में महात्मा के पास गये उस मृतक का समाचार सिद्धनाथ जी को बताकर बोले कि आप कृपा करके हमारे साथ चलो और उस मेरे लड़के को देखो, हो सकता है कि आप जी की कृपा से ही हमारे को लाभ हो जावे क्योंकि मुझे उसकी वाला पत्नी का सन्ताप नहीं सहन हो रहा और नवयुवक सुयोग्य पुत्र का दु:ख पृथक् हो रहा है। तब महात्मा जी ने सुनकर उन्हें उस मृत को अपने पास ले आने को

कहा। तब वे लोग एक चारपाई पर डालकर ऋतदेव को ले आये तो सिद्धराज महात्मा ने देख सोच विचार कर जाना कि यह बिना उचित चिकित्सा के यह अकाल मृत्यु ग्रसित हो रहा है यह जीवित हो सकता है। तब शिवदत्त बोला कि हे महात्मन्! यदि यह मेरा पुत्र पूर्ण स्वस्थ हो जावे तो यह जो मेरा लड़का मेरे साथ है। यह लड़का मैं श्रीमान् की भेंट कर दूंगा क्योंकि इस मृतक की पत्नी ने अपना शिर और वक्ष पीट–२ कर फोड़ लिया है उस बाला अबला का मुझ से दुःख नहीं सहा जा रहा। तब निर्लोभ सिद्धराज जी बोले कि हे ब्राह्मण! मुझे आपके लड़के का कोई लोभ या कांक्षा नहीं है। आपकी मरजी हो देना न देना मुझे तो लेने की कोई खुशी नहीं है न मिलने का कोई गम नहीं है। इस लोभ में आकर मैंने कुछ नहीं करना मैंने तो जो कुछ भी करना स्वेच्छा खुशी से या अपना कर्तव्य समझकर करना है। तब परमेश्वर सन्निद्ध योगीराज ने स्वझोली में से टिल्ला स्थान के श्री आदिनाथ जी के धूने की छोटी चुटकी बभूति लेकर स्वच्छ सलील मंगवाकर उसमें घोलकर संजीवनी विद्या पढ़ करके इसी विद्या द्वारा जो प्राण पास में ही भ्रमण कर रहे थे। पुनः उसी ऋतदेव के शरीर में प्रविष्ट किये। उस जल मिश्रित विभूति को कुछ उस मृत के ऊपर छिड़का और कुछ उसके मुख में डाला तब ऋतदेव मूर्च्छितावस्था में पड़े हुए की तरह या प्रगाढ़ निद्रा में निद्रित की तरह उठकर बैठ गया। तब वह समस्त परिवार और समीपवर्ती लोग सभी सिद्धराज की जय–जयकार करने लगे और मत्स्येन्द्रनाथ जी के वहां से चलने से दो दिन पूर्व ही अनेक पड़ोसियों तथा मृत जीवित लड़के वाले दम्पत्ति परिवार सहित रेवति शिवदत्त दोनों गौरवदास को स्वच्छ वस्त्र पहनाकर के लड़के को भेंट करने के लिए साथ लेकर आये और गुरुदेव

मत्स्येन्द्रनाथ जी के पादपद्मों में चढ़ा दिया और गौरवदास भी माता पिता की आज्ञा मानकर महती प्रसन्नता से गुरुदेव भाव से सिद्धराज के चरणार्विन्दों के अर्पण हो गया। किन्तु फिर भी सिद्ध नित्यनाथ जी ने रेवती शिवदत्त दम्पति से कहा कि आप इस लड़के को भी लेकर घर जाओ हमारे को कोई ऐसी इसकी आवश्यक आवश्यकता नहीं है अत: इसे ले जाओ। तब दोनों दम्पति हाथ जोड़कर बोले कि हे भगवन् जो हमने भी वचन दिया वह हमारे को कृपा करके पूरा करने दो। तब गौरवदास भी बोला कि मुझे जहाँ मेरे माता पिता ने चढ़ा दिया है मैं तो वहीं रहूँगा क्योंकि बारम्बार एक वस्तु की भेंट नहीं होती और इस प्रकार पुन: पुज्य गुरु नहीं बनाये जाते। गुरु के अर्पण करके परिवार अपने घर चले गए और गौरवदास भी बड़ी खुशी से गुरुदेव जी की सेवा में मग्न हो गया। दोनों ने प्रात: उठकर प्रथम स्वयं स्नान कर मन्दिर में आदिनाथ को स्नान कराया।

श्री मत्स्येन्द्रनाथ गौरवदास का मिथिला से प्रस्थान

अब श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी गौरव दास दोनों गढ़ गंगा हरिद्वार स्नान कर यहीं कुछ दिन निवास करके बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमनोत्री आदि तीर्थों का दर्शन भ्रमण करते हुए दोनों हिमालय का दक्षिण भाग पार करते हुए भगवती ज्वाला जी में पहुँचे। तो भगवती ज्वाला जी ने विष्णुरूप मत्स्येन्द्रनाथ जी को शिव शिवा के परम प्रिय शिष्य व सुपुत्र जानकर के परम हर्षोल्लास से आगे जाकर के उनको लाने का स्वागत

किया। उनको साथ लाकर के स्वासन से भी वर आसन दिया उस पर बैठाकर उसका पूर्ण आतिथ्य सत्कार किया तथा पेय भोज्य आदि दिये जब देवी और सिद्ध परस्पर वार्तालाप कर रहे थे तो कुल देश के राजा वीरेन्द्रचन्द्र का लड़का कालेन्द्र कुछ राजकर्मचारियों के साथ ज्वाला जी के दर्शनार्थ आया था। तब महातेजस्वी को ज्वाला के भवन में किसी ओर विराजमान देखकर कालेन्द्र गौरवदास से बाहर कुछ दूरी पर पूछता है यह जो मन्दिर में विराजमान हो रहे हैं ये कौन नाथ हैं? तब गौरवदास जी ने कहा कि नाम तो इनका मैं भी नहीं जानता हूँ मैं भी अभी कुछ दिनों से ही इनके साथ हुआ हूँ क्योंकि मेरा बड़ा बन्धु मृत्युकवल हो चुका था तो मेरे पिता और मैंने उस मृतक को इन्हीं के निर्देश से इनके पास उस शवरूप को ले गये थे तो इन्होंने उसे पुनर्जीवित कर दिया। तब मेरे पिता ने उसके सप्राणित होने से पूर्व ही इस योगीराज को वचन दे दिया था कि मेरा यह पुत्र जीवित होकर पूर्ण स्वस्थ हो गया तो मैं यह अपना पुत्र आपकी भेंट कर दूंगा। तब ऋतदेव के पूर्ण स्वस्थ होने पर मुझे इनकी भेंट में कर दिया तथा मैं भी जनकजननी की आज्ञा से प्रसन्नता पूर्वक इस परमेश्वर तुल्य सिद्धराज के अर्पण हो गया हूँ। तब कालेन्द्र बोला कि यदि इतने शक्तिशाली हैं तो मैं भी इन्हों का ही शिष्य बन जाता हूँ। क्या तुम भी शिष्य होने के लिये ही साथ जा रहे हो जी हाँ अवश्य विचार है। तब कालेन्द्र ने अपने साथ आये हुए राजपुरुषों से कह भेजा कि महाराज जी को कह दियो कि मैं इस राज्य से किसी उत्कट राज्य के अन्वेषण में जा रहा हूँ जो मेरी सुपुरदगी हो वह भी मेरे दूसरे भ्राताओं को सौंप देवें मेरी प्रतीक्षा न करें यह कहकर कालेन्द्र ने राजपुरुषों को लौटा दिया। स्वयं को उस शक्ति के पाने के लिये दृढ़ बना लिया जो गौरवदास

से सुना था। अब तन मन से अपने आपको उन गुरुदेव का बना दिया उक्त शक्ति की प्राप्ति के लिए। इतने में सिद्धनाथ जी ज्वाला भगवती से विदा लेकर बाहर भवन में आ गये। वहां से प्रस्थान कर दिया तो भगवती जी भी कुछ दूर तक सिद्धराज को विदा करने के लिये गयी। किन्तु सिद्धराज के साथ विदा स्वागत वार्तालाप देवी की ओर से सबको अदृश्य ही रहा था। तब सिद्ध नित्यनाथ जी के साथ दोनों कुमार हो लिये। कालेन्द्र को साथ देखकर सिद्धराज ने पूछा कि बेटा! तुम कौन हो? किसके हो? कहाँ जावोगे? कालेन्द्र–प्रभो! मैं कुल देश के महाराज वीरेन्द्र का कालेन्द्र नाम का पुत्र हूँ। वर्तमान में मैं आपके चरणरेणु का दास ही हूँ और श्री चरणों के पीछे जाऊँगा तब श्री सिद्धराज जी ने उसे बहुत कहा कि तुम अपने घर जाओ। हमारे को यहाँ कोई फौज नहीं बनानी तुम दोनों ही अपने–२ घर को जाओ! क्योंकि बिना जिज्ञासुओं तथा श्रद्धालु अविश्वासियों की पूर्ति का कोई प्रोग्राम नहीं है। चलो अपने घर को जाओ! तब कालेन्द्र नेत्रों में नीर भरकर दोनों हाथ बांध कर कहने लगा हे गुरो! हे स्वामिन् वचन, विचार पुन: पुण्य नहीं होते। मैं विचार से आपका बन चुका व्यक्तिछायावत् तथा वचन से भी कह चुका हूँ कि अब छाया व्यक्ति से पृथक् कैसे हो। यह सब कुछ आपकी कृपा से ही तो हो रहा है मैं क्या हूँ यह तो सब कुछ आप ही करा व दिखा रहे हो क्योंकि महाजलाशयों में रहने वाले जलीय प्राणिमात्र स्वभावत: ही अतृषित हो जाते हैं तथा महाज्ञान की सन्निधि कृपारूपी जल में मज्जन एवं पान करने वाला अजिज्ञासु अश्रद्धालु अविश्वासी नहीं रह सकेंगे। कल्पवृक्ष के नीचे रंकता, क्षुधा, पिपासा नहीं रहती। उसके स्वाभाविक

प्रभाव से ही नष्ट हो जाती है एवं श्री चरणसर्वाप्तों के पास अनाप्त कौन रह सकता है? अर्थात् कोई भी नहीं रह सकता क्योंकि पारस पेटी में पड़ा श्रेष्ठायस् (वरलौह) लोह ही नहीं रह सकता अवश्य वह स्वर्ण बनेगा। इसलिये हे गुरुदेव! जिज्ञासु तो श्री चरणों ने ही बनाना है हम क्या बन सकते हैं। तब मत्स्येन्द्रनाथ जी पञ्चाल देश जिला जेहलम टिल्ला स्थान पर जा पहुँचे। दोनों कुमार भी साथ चले गये। सिद्धराज जी वहाँ जाकर दोनों को योग मार्ग दु:साध्य बताते रहे कि निर्बल अन्त:करण वाले से साध्य नहीं है। किन्तु कालेन्द्र ने कहा कि आपकी कृपादृष्टिपात से असाध्य साध्य होना और असम्भव सम्भव होना असम्भव नहीं है। जब हम में कुछ अपनापन है ही नहीं तो बताओ गुरुदेव हम कौन हैं आने–जाने वाले या कुछ करने वाले। वह जो कुछ भी हुआ, हो रहा, होगा, वह सब आपकी कृपा की चेष्टा से ही है एवं कई प्रकार से कहने समझाने पर जब वे दोनों कुमार नहीं गये तो तब एक दिन गुरुदेव जी ने दोनों को नाद जनेऊ तथैव भगवें वस्त्र भी दे दिये। औघड़नाथ बना दिये तथा गौरवनाथ, कालनाथ दोनों कुमारों के श्री नित्यनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) जी ने नामकरण कर दिये। कालनाथ के लिये अल्लामनाथ को गौरवनाथ के लिये प्रभुदेवनाथ को योग क्रियान्वित कराने के लिये नियुक्त कर दिया एवं षणमास के बाद मत्स्येन्द्रनाथ के आदेश से प्रभुदेवनाथ ने दोनों के छिन्नकरण कर दर्शन डाल दिये कालनाथ तथा गौरवनाथ को मत्स्येन्द्रनाथ जी ने गुरु मंत्र से मंत्रित किया। आगे चलकर के ये दोनों चौरासी सिद्धा

में ही महासिद्ध चौरासी के चक्रपाश को काटने वाले महासिद्ध एवं दोनों सिद्ध महाज्ञान तथा विविध विद्याओं से समृद्ध हुए।

मत्स्येन्द्रनाथ जी साबरी मंत्रों की रचना करके पर्वतराज कैलास पर पहुँचे

मत्स्येन्द्रनाथ जी साबरी मंत्रों की सबीज रचना करके अब इनकी सिद्धयर्थ कैलास पर पहुँचे। वहाँ माता–पिता गुरु शिव शिवा को देख प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम आदेश किये। भवभवानी ने अपने प्रिय पुत्र शिष्य जानकर प्रेम पूर्वक उसका स्पर्श कर आशीर्वाद दिया तथा मत्स्येन्द्रनाथ से कौशल्य पूछा तब मत्स्येन्द्रनाथ जी अपने को कुशल बताकर अपनी मानसिक भावना जो साबरी मंत्रों के सजग करने की थी वह कही। उन मंत्रों के अधिष्ठाताओं को सम्बोधित कर सब मंत्र सप्राण करने की कही। उनके यथावत् करने कराने का मुझे आदेश तथा आशीर्वाद देने की कृपा करो! शिव शिवा ने मत्स्येन्द्रनाथ की रचना देखकर कि प्रसिद्ध देवी देवताओं के मंत्र रचित हैं एवं भवभवानी ने लोक कल्याणार्थ समझकर के प्रसिद्ध देवी देवों, प्रख्यात महावीरों, डाकिनी शाकनियों, डायन चुड़ेलों, यक्ष रक्ष किन्नर फनीद्रों भूत प्रेतादियों का यजन आदि करवाकर पृथक–पृथक तो उन सबका वहीं कैलास पर आह्वान किया तब सभी देवी देव इन्द्रादि तथा ऋद्धि सिद्धियों सहित सब गणाध्यक्ष एवं वीर महावीर यक्ष रक्ष किन्नर फनीद्र योगिनी डायन चुड़ेल भूत प्रेत आदि यथाक्रम सभी वहाँ आकर उपस्थित हुए। तब उन सबको यथायोग्य जिस–जिसका जैसा खान–पान था उन–२ को वैसा दिया गया तथा दक्षिणा में पान, इलायची, मेवा, लवंग, सुपारी, धूप, दीप,

गुग्गुल आदि दिये गये। तब क्रमशः सब समुदायों ने यथावार भव-भवानी तथा महासिद्धनाथ नित्यनाथ तीनों से सविनय देवी देवादियों ने कहा कि हे प्रभुवरो! हमारे को किसलिए बुलाया गया? क्या आज्ञा है! जो आज्ञा हो वह कहो? एवं योगिनी डैन चुड़ेल आदि ने आज्ञा ज्ञापित कराई। स्त्रीलिंग वाचिकाओं से भवानी ने तथा पुलिंगवाचकों को भव ने कहा कि देवयक्ष रक्ष आदियों! ये महासिद्धेश्वर विष्णुरूप सिद्धनाथ हमारे शिष्य ने लोक कल्याणार्थ साबरी मंत्रों की सबीज मंत्रों सहित रचना की है। जिस-जिसका जो मंत्र, तंत्र, यंत्र, शस्त्रास्त्र मारण मोहन उच्चाटन वशीकरणादि ये सब लोक कल्याणार्थ हैं, इसलिये तुम्हारे सबको कहना यही है कि जो-जो तुम लोग लोककल्याण करना चाहते हो तो वे सब अपने-अपने मंत्र-तंत्र आदियों द्वारा जिस-जिसको जिस-जिस कार्यार्थ जिस-जिस समय में जिसके मंत्र-तंत्र आदि के द्वारा बुलाया जावेगा वह ही देववीर महावीर आदि उस-उस कार्य को करोगे तो उस-उसका वह मंत्र तंत्रादि चेतन आत्मक माना जावेगा इनको जो-जो चेतनात्मक करना श्रेष्ठ समझता है। वही अपने पूर्ण विचार से स्वीकृतियें (हामियें) भरो कि हाँ ठीक है। तब सर्वप्रथम सर्व प्राणीमात्र के प्राण भगवान प्रचण्डमार्तण्ड ने कहा कि हे महासिद्ध राजेश! आप मेरा जो मंत्र बनाकर उससे मुझे जहाँ भी बुलावोगे मैं वहीं उपस्थित होऊँगा वह कार्य करने के लिये अवश्य बाध्य होऊँगा। अतिरिक्त यदि आपके कोई अनुयायी भी आपकी दर्शित पूर्णविधि से मुझे बुलावेगा तो मुझे अपने दिये वचन वशवर्ती होकर अवश्य उपस्थित होना ही होगा। इसके बाद इसी प्रकार इन्द्रादि सभी पुलिंग वाचकों ने अपनी-अपनी पुष्ट प्रकार से स्वीकृतियें दे दीं। इसके

बाद भगवती भवानी जी ने सर्वप्रथम काली, दुर्गा, लक्ष्मी, सावित्री, इन्द्राणी, ज्वाला, वैष्णवी, हिंगलाज, ऋद्धि–सिद्धि आदियों की स्वीकृतियें भी सिद्धनाथ को दिलायीं। सबने कहा कि पूर्णविधि से जो भी हमारे मंत्र तंत्र आदियों द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ जी की निर्दिष्ट विधि से स्मरण करेगा हम सब अपने–अपने मंत्र तंत्रादि द्वारा जिसको भी स्मरण किया जावेगा अवश्य उपस्थित होवेंगी। इस प्रकार डैन, चुड़ेल, भूतादियों ने सभी ने यथा स्मरण समय में जिस–जिसको विधि पूर्वक बुलाया जावेगा आकर कार्य करना स्वीकार कर लिया एवं सबने अपना–अपना धर्म तथा कर्तव्य समझकर महासिद्धनाथ को वचन दे दिये।

—※—

मत्स्येन्द्रनाथ जी ने इन कार्यों में देवादि वर्गों का ही लाभ दिखाना

मत्स्येन्द्रनाथ जी यह सोचकर कि इन सभी वर्गों के मन में यह सन्देह न रहे कि किसी प्रकार के दबाव में लाकर के अपने स्वार्थार्थ ये स्वीकृतियें लेकर हम सब वर्गों को वचनबद्धता में बांध रहे हैं। तब इस संशय के निवृत्त्यर्थ सिद्धनाथ करुणामय बोले कि भो सर्व देवी–देवादि वर्गों! इन स्वीकृतियों में व मंत्रचेतन कर कार्य करने में मेरा कोई निज स्वार्थ नहीं है। इन सब स्वीकृतियों मंत्र तंत्र चेतनात्मक होने पर उन मंत्रादियों से नर–नारियों के कार्य सिद्ध होने से तुम्हारी सबकी प्रख्याति होगी और तुम्हारे सबको ही भेंटे होंगी लोगों के कार्य सिद्ध होने से। उन्हीं भेंटों (बलियों) से आप सब ही तो पुष्टि को प्राप्त होंगे। इससे मुझे क्या उपलब्धि होगी अर्थात् कुछ भी नहीं। इसलिए मैंने तो तुम्हारे और मनुष्यों

के लिए ही सब कुछ सोचा तथा किया और यह बात मेरे माता–पिता भव–भवानी ने भी सोच कर किया। अब भव–भवानी ने तथा नित्यनाथ ने कहा कि सब अपनी–अपनी इच्छा से जिन्होंने अपने वास को जाना हो वे जावो जिन्होंने ठहरना हो वे ठहरो! इसके बाद सिद्धनाथ ने सपाद वर्ष में मंत्रों को परीक्षित करके देख लिए कि जो सम्यक प्रसिद्ध सिद्ध हुए एवं देवी देवादिकों का स्व–स्व वचनवशवर्ती होने से सबका वशीकरण हुआ। अपने–२ मंत्र द्वारा उपस्थित होना आवश्यक हो गया इस प्रकार सर्व विद्यासिद्ध श्री सिद्धनाथ हुआ। इसके बाद श्री नित्यनाथ जी ने इन सब विद्याओं से अपने समस्त शिष्यों प्रशिष्यों को भी सम्पन्न किया था एवं स्वल्पज्ञों के शिक्षण परीक्षण विशेषज्ञनाथों के अर्पण कर दिए आप पुनः तप योगाभ्यास में तीन वर्ष पर्यन्त रत हो गए। तीन वर्ष के बाद कई एक शिष्यों प्रशिष्यों सहित अनेक तीर्थों में होते हुए एवं उन्हों में स्नान दर्शन करते हुए त्र्यंबकेश्वर में जा पहुँचे यहाँ द्वादश ज्योर्तिलिंगों के दर्शन होते हैं यहीं ब्रह्मगिरि में श्री गोरक्षनाथ जी की गुहा है।

श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी का परकाय प्रवेशार्थ अपने शिष्य श्री गोरक्षनाथ तथा गौरवनाथ से परामर्श

ईश्वरस्वरूप मत्स्येन्द्रनाथ जी ने राजा सत्यवान को पूर्व वचन दिया था कि तेरे इस शरीर से ही किसी भी प्रकार इन मंगलकरा, यशोधरा इन दोनों के गर्भ से पुत्र होंगे वह वचन सिद्धराज को याद ही था उसका समय आ गया था। इससे कुछ पूर्व समय में श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी अपने शिष्यों प्रशिष्यों को जब टिल्लास्थान पर उपदेश कर रहे थे।

तो माया का वर्णन करते हुए कह रहे थे कि यह माया बड़ी प्रबल दुस्तीर्णा है तथा अनिवर्चनीया है इन्द्रजाल वत है। इस प्रकार अनिरूपणीया का निरूपण कर रहे थे तब उनका शिष्य गौरवनाथ बोला कि हे गुरो! जो सदसत् से विलक्षण है वह क्या वस्तु विशेष है पुनः क्या उसका स्वरूप है एवं क्या उसकी प्रबलता है तब गुरु जी को सत्यवान को दिए वचन स्मरण ही थे। तब गुरुदेव जी ने कहा कि वत्स? समय आने पर तुझे उसके विचित्र चरित्र चित्र के सम्मुख होने पर बता देंगे। इसका अस्थिर यह स्वरूप है जिसे सद–सत् कुछ नहीं कहा जा सकता एवं उसकी प्रबलता क्या है।

तब महासिद्धनाथ ने श्री गोरक्षनाथ जी को और गौरवनाथ को यहाँ त्र्यंबम्केश्वर में ही ठहरने को कहा। शेष शिष्य प्रशिष्यों को तीर्थाटन करते हुए संसार में भवमोचिनी महाविद्या का शिक्षण दीक्षण कराओ स्वयं भी इसका प्रतिदिन क्रियान्वित करो! दृढ़ता से यम नियम पूर्वक जप तप योगाभ्यास करो एवं दोनों के अतिरिक्त सबको विदा कर दिया। श्री गोरक्षनाथ गौरवनाथ दोनों को एकान्त में बैठाकर नृप सत्यवान की दुःखभरी कथा को सुनाया कि राजा के बारम्बार प्रार्थना तथा सम्मान पूर्वक रोष करने पर मेरा हृदय दयार्द्रित हो गया तो उसके शरीर से वह स्वयं सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता था। अतिदीर्घ काल तक मैंने उसकी प्रारब्ध पर दृष्टिपात करके देखा कि वह अपने सजीव शरीर से पुत्र उत्पत्ति नहीं कर सकता अर्थात् उसके जीवित पुत्र दर्शन भाग्य में नहीं हैं। जब तीन वर्ष दो दिन की उसकी शेष आयु रह रही उसको बतायी तो उसकी दोनों बड़ी रानियां तथा राजा शोकाकुल हुए गुम हो गये तब कुछ देर में राजा अपने मन को सावधान करके बोला कि मुझ बहुत आस थी कि आपके द्वारा मेरी कांक्षा की पूर्ति होगी किन्तु अब हम क्या करेंगे। सर्व

ओर से बिना पुत्रों के तो हमें महासुनसान श्मशान दिख रहे हैं और सुना है कि साधु रेख में मेख मारते हैं एवं नृप के तथा उसकी रानियों के विल्पने पर मुझे अति दया आई तब मैंने उसे कहा कि तेरे प्राणान्त के बाद तेरे शरीर से ही तेरी इन दोनों रानियों के गर्भों से तेरे पुत्र हो जावेंगे। उन्हों को मेरे इस कथन पर विश्वास न होने पर भी मैंने अपने प्रण को पूरा करना है इसलिये इस गुहा में मैं अपने शरीर को छोड़कर सूक्ष्म शरीर द्वारा उस मृत सत्यवान के शरीर में प्रवेश करना है। कल की निशा के तृतीय पाद में नृप का प्राणान्त हो जाना है तब मैं अह्नमुख से पूर्व ही उसके शरीर में प्रवेश करके अपने प्रण को पूरा करना है क्योंकि राजा के मरने के बाद अराजकता फैल जावेगी राजा सेवक था उसी की रानियों की भी आपत्ति होगी एवं प्रजा में भी बलवान निर्बलों को मारे लूटें काटेंगे। इसलिये हे पुत्रों! तुम दोनों गुरुबन्धु मेरे इस पार्थिव शरीर की देखभाल तथा रक्षा करना और मैं भी वर्ष में एक बार इसको निरीक्षणार्थ आया करूँगा। तब दोनों शिष्यों ने कहा गुरुदेव! यथेच्छा आपकी हो वैसा ही करो। जैसी आज्ञा आपकी होगी ठीक वैसे ही हम करेंगे किन्तु प्रत्यावर्तनार्थ कृपया आप उत्सुक रहना यही हमारी भी प्रार्थना है कृपाकर स्वीकार करना।

सिद्धराज मत्स्येन्द्रनाथ जी का मृत राजा सत्यवान के शरीर में प्रवेश करना

श्री सिद्धनाथ जी ने अपने उक्त दोनों शिष्यों को सावधान कर अपने शवशिष्ट शरीर की रक्षार्थ नियुक्त करके रात्रि के तृतीय याम मध्य में स्वशरीर से प्राणान्त कर उसी निशा के चतुर्थ याम मध्यान्त में तथा प्रगाढ़ उषाकाल में शव सत्यवान में प्रवेश कर दिया अर्थात नृप मृत

श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी का परकाया में प्रवेश तथा
राज दरबार में गोरक्षनाथ जी का मृदङ्ग बजाना

शरीर में मत्स्येन्द्रनाथ जी ने स्वप्राणात्मा को प्रवेश कर दिया। तब जब रानियां मन्दे समाचार विचार में रुदन करती हुई विल्प कल्प रही थीं तथा राजकर्मचारी भी महाशोकाकुल थे तो राजशरीर में मन्द–मन्द श्वास प्रश्वास की गति होने लगी कुछ ही देर में शिर शरीर हिलने डुलने लगे। दो तीन मुहूर्त में शव प्रगाढ़ निद्रा में सोए हुए की तरह ही उठकर के बैठ गया हो वैसे ही नृप शव सजीव हो भूमि पर उठकर बैठ गया। तब दु:खियों के दु:ख सुखों में इस प्रकार परिवर्तित हो गये यथा महासागर मध्य में मज्जित होते हुओं को कोई पार लगाने वाला पुष्टमहापोत मिल गया हो। जब दु:खी रानियों की खुशियों की सीमा न रही तो रानियों ने विविध वस्तुओं के पुण्य ब्राह्मण, गरीबों, यतीमों, विधवाओं, राजकर्मचारियों को किये। अनेक बाजों गाजों से गायकों के उत्सव हुए राज्य तथा रानी प्रजाओं के महाभाग्यशाली दिन रात्रि सभी समय आने लगे यथोचित समय में ही खजलधर (आकाश में मेघ) जल बरसाने लगे जिससे हतभाग्य पशु पक्षियों के भी भाग्योदय होकर अधिक श्रेष्ठ चोगे चारे मिलने लगे रानियों तथा कर्मचारियों को तथा प्रजा को यह विश्वास होने लगा कि यह राजा सत्यवान नहीं है। यह तो किसी अन्य ही भव्य–देवशक्ति ने नृपमृत शरीर में प्रवेश कर लिया है प्रजा के मानसिक धर्मभावनायें स्वयंमेव बनने लग गयी। सब नर–नारी पशु पक्षी निर्वैर निर्भय परम–उल्लसित प्रसन्न–वदन परस्पर दृष्टिपात करने एवं बोलने लगे। सब अपनी–अपनी बिरादरी में नर, पशु, पक्षी हर्षित प्रफुल्लित हुए प्रिय बर्ताव करने लगे। एक दूसरे के दु:ख को देख दु:खी एवं सुख को देख सुखी होने लगे एकात्मभाव दृष्टि की सृष्टि में रहने वाले एक दूसरे को दिखने लगे। दैनन्दिन नवीन नवीनतम प्राणीमात्र के राज्य में भाग्योदय

होने लगे। दुग्धादि अमृत पदार्थों अन्नों वनस्पतियों फलों—फूलों गौओं भैंसों आदि की वृद्धियां होने लगी। अकाल मृत्यु, तस्कर, दस्यु, वञ्चकों का अभाव सा हो गया था परस्पर सबके ह्दयों में प्रेम शुभ उल्लास उद्‌गार होने लगे। प्रतिदिन अनेक प्रकार के मंगल होने से दोनों मंगला करा यशोधरा रानियां समझ गयीं कि यह तो नृप शरीर में वही योगी सम्भव है कि प्रविष्ट हो गया हो। जो महाराज के मृत शरीर को ही जीवित करके अपने दिये वचनों को पूरे करने आये हों। यदि वे भी हैं तो तथापि परमेश्वर गुरुदेव को लाखों धन्यवाद हों तथा उस योगी को भी जो हम असहायों की भी आवाज सुन रहे हों इस प्रकार परस्पर रानियां बारम्बार विचार करती थीं और ईश्वर तथा योगी जी का धन्यवाद करती हुई गम्भीर धीरता में सम्मघ्न हो जाती थीं तब रानियों ने यह बात आपस में अच्छी प्रकार से समझ ली थी कि ये वे ही योगी हैं पूर्व नृप भोगी नहीं है। अत: इसका सम्यक् मन लगाने के लिये इसी से कहलवाकर नित्यप्रति नर्तक नर्तकियों के नाच गान करवाती रहें ताकि इसका चित्त लगा रहे कहीं राजशरीर को छोड़ कर चला न जावे ये लोग निर्मोही होते हैं। नित नये हाव—भाव कर शिव रूप को हम शृंगार कर मोह रखें। इस प्रकार सोचें करती रहती थी तो दो दिन कम तीन वर्ष में मंगलकरा ने मंगलमय एक सुन्दर शिशु को जनन किया।

शिशु निर्मलनाथ का जन्म

इसके जन्म पर राजयोगी तथा रानियों ने बहुत सारा धन लुटाया अनेकों प्रकार के गायकों गायिकाओं गाने नर्तक नर्तकियों के उत्सव हुए।

विशेष ज्योतिर्विदों को बुलाकर पुत्र का मंगलमय भविष्य जाना और नामकरण किया कुछ दिनों के बाद निर्मलनाथ (या नीवनाथ) इस उक्त शिशु के १५ दिन के बाद यशोधरा ने भी देव सन्निभ पुत्र को जन्म दिया इसके भी जनन काल में उक्त प्रकार के प्रसन्नता पूर्वक महान कार्य हुए। ज्योतिर्विदों ने इसका नामकरण पारसनाथ किया दोनों रानियां महान खुशियों में आकर ईश्वर और योगीराज के बारम्बार लाखों–लाखों धन्यवाद देती हैं। जब कुमार पाँच–पाँच वर्ष के हुए तो राजपाठशाला में हिन्दी संस्कृत पढ़ने लगे। जब दोनों आठ वर्ष की आयु वाले हुए तो दोनों ही पूरे किशोर दिखने लगे।

श्रीमहासिद्धराज द्वारा कई बार दोनों शरीरों का परिवर्तन करना

प्रथम बार महासिद्धराज मत्स्येन्द्रनाथ जी जब त्र्यम्बकेश्वर में राज शरीर में गये तब श्री गोरक्षनाथ जी तो जान ही रहे थे। मानसिक गुरु की आत्मा को प्रणाम किया अनन्तर मत्स्येन्द्रनाथ जी ने राज शरीरस्थ में गौरवनाथ जी की जानकारी के लिये परिचय भी दे दिया कि मैं ही मत्स्येन्द्रनाथ अब राज शरीरस्थ हूँ। मैं ही पञ्चदिन पर्यन्त स्वशरीर में प्रवेश करना है। बाद में उस दिन की रात्रि के प्रथम याम में पूरे प्रोग्राम से वहीं गुहा में ही राज शरीर को छोड़कर। स्वशरीर में प्रविष्ट हो गये एवं चार दिन तक सात्विक पयः श्रेष्ठ फलों के रसों का आहार करते रहे। पुनः पाँचवें दिन सब कुछ त्याग करके अपने शरीर को पुनः स्वच्छ निर्मल करके सुरक्षित छोड़कर राजशरीर में उसी समय पुनः प्रवेश कर लिया जिस समय उसको छोड़ा था। फिर स्वशरीर को अपने शिष्यों के

अर्पण कर कामरूपदेश को प्रस्थान कर जा पहुँचे। उक्त रहस्य कामरूप में सबसे गुप्त ही था आने–जाने का जो कार्य हुआ यह दो प्रकार से हो सकता है। एक तो सिद्धसंकल्प से सम्भव है दूसरा लघिमा सिद्धि से अतिसूक्ष्म और वायु प्रधान वेगवान शरीर को करके हो सकता है। ये दोनों ही योगशक्तियां हैं तथा योगगम्य हैं। इस प्रकार अन्तरीक्ष मार्ग से ये आने–जाने का कार्य तो सिद्ध ही है किन्तु भूतजयी योगी के लिए पाँचों भूत बेरोक टोक हो जाते हैं वह पृथ्वी जल अग्नि में घुसकर भी जहाँ चाहे जा सकता है। उनके लिये मार्ग के साफ सुथरे साधारण जन प्राणियों की तरह कोई आवश्यक नहीं होता यथा–[1]स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्त्रयार्थवत्त्वं संयममाद् भूतजय:।

सूत्रार्थ–पाँचों भूतों के स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, अर्थवत्त्व में संयम करने से भूतों पर जय प्राप्त होती है। [2]ततोऽणिमादि प्रादुर्भाव: कायसम्पद्धर्मानभिघातश्च।

सूत्रार्थ–भूतजय केबाद अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है इन दोनों सूत्रों की व्याख्या द्वितीय पुष्प में देखो। इस प्रकार योगी को किसी रास्ते विशेष की आवश्यकता नहीं है, जहाँ से वह चाहे यथेच्छा से जा सकता है। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ जी ने बारह वर्षों में शरीरों का परिवर्तन कई बार किया प्रति वर्ष एक बार करते थे। ऐसा क्यों करते थे? शरीर की अतिसूक्ष्म स्नायु शिरयें इड़ा पिंगला सूक्ष्मणा आदि अति शुष्क होकर सट्ट फट न जावें अथवा सिकुड़कर सन्निरुद्ध न हो जावें तथा शरीर

१–योग द० वि० पा० ३। सू० ४४ है।

२–योग द० वि० पा० ३। सू० ४५ है।

को प्लवित सिक्त करते थे, सबल और हरा भरा रखने के लिये एवं जब बारह वर्ष पूरे होने में शेष सोलह दिन रह रहे थे तो योगेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ जी ने पुनः राजशरीर सहित अपने त्यक्त शरीर के पास गये और श्री गोरक्षनाथ तथा गौरवनाथ दोनों को कहा कि मेरा प्रण पूरा हो गया है। अब मैंने राजशरीर का सर्वदा त्याग कर देना है ना कि पहले की तरह कुछ दिनों के लिये।

गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी ने सर्वदा राजशरीर का त्याग करना तथा गौरवनाथ जी को पूर्व पृष्ट माया का चित्र बताना

श्री सिद्धनाथ ने श्री गोरक्षनाथ, गौरवनाथ दोनों को बैठाकर कहा कि हे प्रिय पुत्रों! मैं तुम दोनों को धन्यवाद देता हूँ तुम्हारे योगसिद्ध होने का आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा योग पूर्ण हो। हे पुत्र गोरक्षनाथ जी! मैं इस राजशरीर को इस शिवरात्रि की रात्रि के चतुर्थ याम में छोड़कर अपने शरीर में आ जाना है। उस रात्रि को सब क्रियाओं के उचित प्रबन्ध कर रखना अब मैंने जाकर उन्हें सब रानियों तथा प्रधान राजपुरुष को अपना परिचय देना है क्योंकि धोखे में नहीं आना प्रत्यक्ष रूप से उन्हें सब कुछ कह देना है कि मैं कौन हूँ इस राजशरीर में मैं अब तक क्यों रहा और यह बात सुनकर रानियों ने तथा दोनों लड़कों ने भी अतिदुःख से व्याकुल होना है। मुझे राजशरीर को न छोड़ने के लिये पूरा प्रयत्न उन्होंने करना है विशेष कर दोनों राजकुमारों ने जब अपने पिता सत्यवान का मरण सुना लिपट–लिपट कर रोयेंगे। इसलिये अन्त के दिन में कामरूप देश की राजधानी कामरूप में आकर उन सबका जो मेरे में मोह है उसे किसी भी

प्रकार वहाँ आकर मेरे से तोड़ना। जब सिद्धनाथ जी श्री गोरक्षनाथ जी से उक्त बातें कह रहे थे तब पास में स्थित गौरवनाथ भी सुनकर गुरु जी से बोला कि महाराज ऐसे समझाने की क्या बाता है। वैसे ही आप छोड़कर सबको तो आ जाना आपको कौन रोक सकता है। तब मत्स्येन्द्रनाथ जी ने गौरवनाथ को कहा कि पुत्र यही तो माया है जिसे पूर्व तुमने पूछा था कि सदसत् से विलक्षण है वह क्या वस्तु है, यह वह वस्तु माया है जिसने सबको फांद रखा है। यह वही माया जो इन्द्रजालवत् प्रतीत होते हुए भी असत् है इसी फांसी ने समस्त प्राणी वर्गों को फांस रखा है मुझ विष्णु रूप की माया का उत्तीरण अति दुस्तर है यही माया का विचित्र चित्र है जो मैं तुझे बता रहा हूँ क्योंकि जिससे किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध हो गया हो अथवा जिन्हों के पास दीर्घ समय पर्यन्त रहे हों उनकी कुछ अनुमति या उनके विचार के बिना ही आ जाना उचित नहीं है। क्योंकि वैसे ही आ जाने से उनकी आत्मायें दुःख मानेगी किसी युक्ति से ही आना ठीक होगा। यही तो माया है जिसमें न रहने से सुख न छोड़ियाँ सुख है अब सम्यक् इसे समझे हो! जी हाँ; गुरु जी–तुझे इसका बोध कराने के लिए तथा सत्यवान के दिये वचन को पूरा करने के लिये इसमें लिप्त हुआ हूँ। तब गोरक्षनाथ जी अपने गुरु जी से बोले कि गुरुदेव जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसे ही आपका दास करेगा। आपने आज से चौहदवें दिन की रात्रि के तीसरे पहर में राजशरीर का त्याग करना है उसी रात्रि के पूर्व में मैं कामरूप देश की राजधानी कामरूप के राजमहल में जिस किसी प्रकार भी अवश्य पहुँचूंगा। यह सन्देश मत्स्येन्द्रनाथ अपने शिष्य श्री गोरक्षनाथ जी को देकर के उसी दिन प्रत्यावर्तित होकर रात्रि को ही रानियों को अपना पूर्व वर्तमान भविष्यत् में अब जो कुछ और करना है

कह दिया कि आज की निशा को छोड़कर जो चौहदवीं निशा शिवरात्रि की आनी है मैंने इस राजशरीर को छोड़कर के अपने पूर्व शरीर में ही जा प्रवेश होना है। उक्त निशा के तीसरे प्रहर में मैंने इसे छोड़ जाना है मैंने तुम्हारे समक्ष नृप को कहा था कि तेरे सजीव शरीर से पुत्र उत्पत्ति नहीं है किन्तु तेरे ही शरीर से तेरी दोनों रानियों से पुत्रोत्पत्ति होगी वह वचन हमने पूरा कर दिया है अब कुछ समय दोनों ही युवराज युवावस्था में प्रविष्ट होने वाले हैं और राज्यधुर को भी धारण करने वाले ही हैं, अब मैंने अपना प्रण निभा दिया है। उधर मेरे पार्थिव शरीर की सुरक्षा के लिये मैं प्रिय शिष्यों को नियुक्त कर बारह वर्ष का निश्चय किया था अब हो सकता है कि उन्हों में से ही कोई मुझे लेने के लिये आ जावेगा। मैं वही योगी हूँ जिसकी बात में तब तुम तीनों को ही कोई विश्वास नहीं था यह मेरे पार्थिव शरीर की रक्षा करने वाले मेरे शिष्यों की कृपा से तुम्हारा कार्य सिद्ध हुआ है उनमें से कोई न कोई अब आने ही वाला है। क्यों बहुत देर होने के कारण वे भी उत्तेजित हो चुके होंगे यह उनका ही धन्यवाद है। अब उन्होंने मुझे राजशरीर छुड़ाने का भरसक प्रयत्न करना है, तुम भी अधिक लोभ मोह में तथा स्वार्थ में न पड़ो सब्र सन्तोष को धारण करो! यह बात तब सारी प्रजा में फैल गयी कि जिसे हम पहिले कोई दिव्यदेव शक्ति राजशरीर में प्रविष्ट हुई समझ रहे थे वह सत्य ही था। यह वही योगी था जो पूर्व समय में मन्दिर में आकर के अनेकों को जड़ीभूत किया था राजमहल में भी कई दिन रुका था उसका ही जीवात्मा मृत सत्यवान के शरीर में किसी अपने राजा से कृत प्रण को पूरा करने के लिये ही आकर घुसा था जो अपना प्रण पूरा करके अब राजशरीर से निकलने की

तैयारी में है। यदि यही राजशरीर में रहे अथवा अपने शरीर में प्रविष्ट होकर उसी के द्वारा राज्य करता रहे तो इस राज्य की जनता तथा समस्त प्राणी वर्ग महाभाग्यशाली तथा सुखों से स्वर्गादिक को भी अतिक्रमण करने वाला राज्य व देश होगा क्योंकि जब से इस कल्पवृक्ष रूपी योगी ने यहाँ निवास किया है तभी से इस राज्य के प्राणीमात्र को अनायास ही सब सुख उपलब्ध हो रहे हैं। इस प्रकार की वार्तायें परस्पर जनता कर रही थी रानियों से इस निकले रहस्य को सुनकर जो प्रधान राजकर्मी थे वे भी महाराज सत्यवान के शरीर निष्ठ योगी के चरणों में प्रार्थना करने लग रहे थे कि हे प्रभो! हम सबको स्वर्ग में से भयंकर वन में न छोड़ जाना यह हमारी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करना।

—❋—

कामरूप देश की राजधानी के नगर में मुद्रों वाले योगी का आना बन्द

नृपकाय प्रविष्ट योगी की बातें सुनकर कि मुझे लेने के लिये मेरा कोई शिष्य आने ही वाला है तो रानियों ने परस्पर विमर्श करा कि और तो कोई चारा नहीं चलता दीखता तो राजयोगी से गुप्त रूप से सुधीरचन्द मन्त्री को अपना परामर्श और आगे होने वाला समाचार बताकर के नगर के चारों ओर दिन रात की सी.आई.डी. (गुप्तचर) नियुक्त कर दिये जायें कि कोई मुद्रों वाला योगी कामरूप नगर या इसकी सीमा में प्रविष्ट न होवे यदि वह न रुके तो गिरफ्तार कर लो। मत्स्येन्द्रनाथ योगी से चोरी–चोरी प्रबन्ध किया किन्तु वे सब कुछ जानते हुए भी मौन ही

रहे थे। अभी तक उनका निर्देश समर्थ था जैसे भी चाहते कर सकते थे किन्तु वे इसलिये मस्त मौन थे उनको सब ज्ञात था कि इनके प्रतिबन्ध गोरक्षनाथ जी को आने के लिये नहीं रोक सकेंगे क्योंकि यदि छोटे हथियारों से रोका गया तो बड़े हथियारों (शक्तियों) का प्रयोग करके अवश्य आ जावेगा। उधर से पुन: रानियां आकर राजा योगी के पास विनम्रभाव से प्रार्थना करती हैं कि हे प्रभो! हमारे आजीवन पर्यन्त आप इस राजशरीर से पृथक न होना अजान कुमार असमर्थ हैं इसलिये हम क्या करेंगे कैसे जीवन पूरा करेंगे। राज्य भार कैसे वहन होगा इत्यादि देखो! राजा योगी–यदि मैं न आता तो तब जीवन कैसे पूरा होता और राज्य भार कैसे वहन होता अब तो आदिनाथ भगवान ने राजकुमार दे दिये हैं। अभी निकट भविष्य में पूर्ण समर्थ होने वाले हैं। इतना कुछ करने पर भी तुम्हारे को सन्तोष नहीं हुआ। मैं तो किये प्रण को पूरा करने का पाबन्द हूँ न कि माया जालान्धकार में बेफायदा फंसे रहने के लिये भी पाबन्द हूँ क्योंकि राजा से किये वचन पूरे हो गये हैं अब और बढ़ती हुई नि:सीम आशाओं को विचार से रोको तथा सन्तोष करो!

राजयोगी के वियोग विराग में रानियों को न सुध बुध

बिना सूझबूझ हुए रानियां योगीराज के होने वाले वियोग विराग में उन्मत्तता सी हुई जिधर देखती हैं उधर ही देखती रहती हैं। जहाँ खड़ी होती हैं वहीं खड़ी रहती हैं जहाँ बैठती हैं वहीं बैठी रहती हैं कर्तव्याविमूढ़ सी हो गयी थीं। बैठी–बैठी सोच शोकार्णव में मज्जित हो जाती थीं

कभी–२ हे भगवान आदिनाथ! नाथों और अनाथों के नाथ! हमारी इच्छा को पूर्ण करना कि यह राजशरीरविष्ट योगी इस शरीर को छोड़कर न जावे।

श्री गोरक्षनाथ जी का सिंगल द्वीप में आना

ब्रह्मगिरि से अपने योगबल यान (वाहन) में आरुढ़ होकर अदृश्य हुए अन्तरिक्ष मार्ग से आना, दिन के प्रथम याम में जब कामरूप नगर के कुछ दूर नीचे उतरे तो वहीं से थोड़ी दूरी पर नट जाति के नर–नारी बैठकर साथ लिये किसी खाद्य पदार्थ को खा रहे थे तब श्री नाथ जी भी उनके पास रुक गये तब अन्तर्यामी जानते हुए भी उनसे पूछते हैं कि "भले लोगों तुम कहाँ जा रहे हो", तब उनमें से उनके प्रधान नट ने कहा कि हम कामरूप देश की कामरूप राजधानी में राजा सत्यवान के राज दरबार में जा रहे हैं। नाथ जी– वहाँ क्या करोगे? नट–गायें बजाएंगे तथा नृत्य कला राजा आदि को दिखायेंगे। तब महानाथ गोरक्षनाथ–मुझे भी साथ ले चलो तो मैं तुम्हारे साथ चलूंगा और तुम्हारे काम में मदद करूँगा। प्रधान नट–क्या आप कोई गाना तथा साज भी जानते हो? गोरक्षनाथ जी–गाना तथा बजाना दोनों ही जानता हूँ। नट–कौन सा साज बजाना जानते हो? गोरक्षनाथ जी–जो भी तुम कहोगे वही बजा दूंगा। नट–तो यहीं देख लें, लो मृदंग बजाकर दिखाओ अभी पता चल जाता है। जब गोरक्षनाथ जी ने किसी भजन को बोलते हुए मृदंग बजाया तो मृदंग की ध्वनि और गाने के स्वर को सुनकर नट–नटी दंग रह गये और अपने गाने बजाने को उनके समक्ष तुच्छ समझने लगे। साथ ले जाने के लिये बहुत खुश हुए, पुन: नट–तो आमदनी में से

कितना हिस्सा लोगे। गोरक्षनाथ जी—हिस्सा मैंने तुम्हारे देने पर भी कोई नहीं लेना मैं तो केवल मनोरंजनार्थ ही गाता बजाता हूँ। यह सुनकर नट—नटी और अधिक प्रसन्न हुए। गोरक्षनाथ जी ने नटों की बातचीत करने से पूर्व स्वरूपाकार का परिवर्तन कर तथा बाने (वेषभूषा) के चिन्हों को भी सूक्ष्म करके और पुलिस की रोक—टोक जान उसका भी उपाय करके तत्पर हुए नटों के साथ चल पड़े सिर में साफा बांध लिया चलते—२ सत्यवान दरबार में जा पहुँचे तो कुछ ही देर में राजा मत्स्येन्द्रनाथ जी के निर्देश से सवा याम दिनोदय के बाद गाना—बजाना प्रारम्भ हो गया।

नटों के साथ गोरक्षनाथ जी का दरबार में मृदंग बजाना

श्री गोरक्षनाथ जी का मृदंग वादन करना जो समस्त वाद्य वादकों के महाराज हैं उनकी मृदंगध्वनि ने जो चेतन थे वे जड़वत् कर दिये और जो जड़ थे वे चेतनवत कर दिये। जिसके गाम्भीर्य को जानने न जानने वाले दोनों ही श्रेणियों के मुग्ध हो गये थे। सभी रानियां तथा सभासद आदि मृदंग की मधुर ध्वनिरूपी मध्य से मादक (नशई) हो गये। कुछ ही देर के बाद मृदंगध्वनि होने लगी कि "उठ जाग मत्स्येन्द्र गोरक्ष आया" जब यह मृदंग की ध्वनि मत्स्येन्द्रनांथ जी ने सुनी समझी तो दोनों रानियों से बोले कि मुझे लेने के लिये मेरे परम प्रिय शिष्य श्री गोरक्षनाथ जी आ गये हैं। तब रानियां बोली कि कहाँ हैं तब मत्स्येन्द्रनाथ ने कहा कि मृदंग की आवाज को ध्यान से सुनो क्या कह रही है। तब रानियों को भी वही सुनाई दिया कि उठ जाग मत्स्येन्द्र गोरक्ष आया। तब राजयोगी ने कहा

कि हे गोरक्ष! यदि आप आ ही गये हो तो प्रकट हो जाओ। तब गुरु गोरक्षनाथ जी ने जो योगमाया द्वारा अपने शरीर को तिरोहित रखा था वह जाहिर कर दिया तब गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी श्री गोरक्षनाथ जी को भुज पञ्जर में लेकर स्ववक्षस्थल से आलिंगन चुम्बन किया तो दोनों गुरु शिष्यों को परम प्रसन्नता हुई। उधर राज्य में उदासीनता छा गयी यह रहस्योद्घाटन से पूर्व ही नट–नटनियों को बहुत माया मिल चुकी थी वे लेकर अपने वास पर चले गये।

अपनी माताओं से राजकुमारों का अपने पिता के विषय में परिचित होना

मंगलाकरा यशोधरा को जब यह निश्चय हो गया कि योगी ने राजशरीर को छोड़ जाना है तब रानियों ने अपने–अपने कुमार को पास बैठाकर कहा कि हे पुत्रों! आज हम तुम्हारे को सच्ची कथा सुनाने लगी हैं कि तुम्हारे पिता तुम्हारे जन्मों से तीन वर्ष पूर्व ही अपने प्राणान्त कर चुके थे अर्थात् मृत्यु के ग्रास हो चुके थे तो तुम्हारे इस सत्यवान पिता के शरीर को जो योगीराज का जीवात्मा अपना जीवन देकर चला रहा है। इसने वचन दिया था कि तुम्हारे भाग्यों में पुत्र और पुत्र दर्शन नहीं है परन्तु तुम्हारे इस शरीर से तुम्हारे इन दोनों रानियों के गर्भ से पुत्र कुलावलम्बी तथा राज्यवाहक होंगे। अब वह भी तुम्हारे पिता के शरीर को छोड़कर जाने ही वाला है। अपने पूर्व शरीर में जिसमें से निकलकर के आया था तब राजा का मृत शरीर ही शेष रह जावेगा। जब कुमारों ने वृत्तान्त सुना तो पितृमृत्यु से होने वाले वियोग रूप दुःखशोकाकुल हुए बीमार हो गये क्योंकि उनके लिये दुःख शोक का पहला ही समय था जिसे सहन करना उन्हें दुःसह हो

रहा था। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ जी जहाँ विराजमान थे वहीं दोनों रानियां और दोनों राजकुमार आ गये। तब गुरु जी के निदेश से गोरक्षनाथ जी उन्हें कह रहे थे कि महाराज योगी ने जो तुम्हारे से तथा सत्यवान से प्रण किया था वह पूरा कर दिया है। अब तुम कुशल से रहो और हम इनको ले जा रहे हैं, ऐसे कह ही रहे थे। तब रात्रि के प्रथम यामान्त का समय हो चुका था तथा दोनों कुमार पूर्व वृत्त सुनकर बीमार हो चुके थे। अब पुन: वही बात सुनकर और दु:खी हुए तो अपनी माताओं से बोले कि हमने शौच जाना है तब एक रानी नौकर को बुलाने चली कि कुमारों को शौच करा लावे। रानियों को राजयोगी बोले कि ठहरो! तब गोरक्षनाथ जी से कहा कि तुम जाओ इन दोनों कुमारों को बाहर साथ ले जाकर साफ कर लाओ–

श्री गोरक्षनाथ जी ने कुमारों को साफ करके लाना

मत्स्येन्द्रनाथ जी के कहने से कि बेटा! इन दोनों राजकुमारों को बाहर ले जाकर साफ करा लाओ। तब श्री गोरक्षनाथ जी गुरु का वचन मानकर दोनों कुमारों को लेकर बाहर चले गये। एक जलाशय पर ले गये जोकि आते समय उन्होंने देखा था साफ करने का आशय भी दोनों ही गुरु शिष्य एक दूसरे को समझ ही रहे थे किन्तु फिर भी रानियों तथा राजकुमारों को कुछ दिखाकर और बोधित कर मोह तोड़ना था या कुछ मोह हल्का करना था। तब कुमारों को कहा टट्टी कर लो जब उन्होंने शौच कर लिये तो शौच के हाथ भी साफ कर लिये। तब कुमारों को बोले कि आओ मैं तुम्हारे को साफ कर दूं। तब दोनों की गुल्फों के पास टांगें

पकड़कर पास में पड़े धोबी घाट के पटड़े पर मारकर निष्प्राण करके और हड्डियों नाड़ियों से भी शून्य कर केवल त्वक् (खाल) मात्र शेष लेकर आ गये। जहाँ ठहरे हुए थे वहीं बाहर एक भीत पर दोनों कुमारों की खाल को बिछाकर भीतर चले गये जहाँ गुरु जी तथा दोनों रानियां बैठी हुई थी। वहीं आप भी आकर बैठ गये तो गुरु जी ने पूछा कि बेटा कुमारों को साफ कर लाये हो क्या? गोरक्षनाथ जी–जी हाँ कर लाया हूँ। रानियां जो कुमारों की ही प्रतीक्षा में थी किन्तु डर के मारे पूछ नहीं रही थीं, राजयोगी–तो अब वे कहाँ हैं? गोरक्षनाथ जी–जी दिवार पर वे साफ करके फैला दिये सूखने के लिये। रानियां मत्स्येन्द्रनाथ जी से यह क्या कुछ समझ नहीं आयी। पुन: मत्स्येन्द्रनाथ जी–बेटा गोरक्षनाथ क्या वे वस्त्र हैं जो दीवार पर सूखने बिछा आये हो! गोरक्षनाथ जी–जी आपने बोला था कि इनको साफ कर लाओं तो जब मैंने वे साफ किये तो बाघम्बर के रूप में चौड़े हो गये वस्त्र जैसे ही बन गये तो गीले भी थे ही, इसलिये दिवार पर फैला दिये यहीं जो बाहर दिवार है। तब रानियां न रुक सकीं तो दौड़ कर दिवार पर पड़ी दोनों कुमारों की खाल ही फटी टूटी देखी तो–

कुमारों की केवल खालमात्र ही शेष देखकर रानियों का अति दुःखपूर्ण विलाप तथा राजपुरुष क्रूरभावना युक्त तथा गोरक्षनाथ जी को अनिष्ट पहुँचाने की भावना में तत्पर

दोनों हाथों से अपने–अपने वक्षस्थलों सिर कपोलों को पीटती हुई ऊँची–ऊँची आवाज से रुदन विलाप करने लगीं, मूर्छित हुई भूमि पर

गिर पड़ी तब रोती हुई कह रही हैं हे योगीराज! यदि सत्य सन्तोषरूपी दोनों बाग लगाकर फल आने खाने से पूर्व ही कटवा देने थे तो इससे कहीं अच्छा यही था कि लगाते ही नहीं। यदि आप चाहते तो हमारे समूल का विच्छेद करने वाला ऐसा आपका यह शिष्य यहाँ आता ही नहीं इस प्रकार महारानियां विलाप कर रही थीं तो राजकर्मचारी राजमहल में तथा नगर निवासी लोग भी बाहर भीतर से आकर एकत्रित हो गये जब उन लोगों ने समाचार जाना कि यह जो राजशरीरविष्ट योगी है, इसके ही शिष्य ने इसे भी ले जाना है और दोनों राजकुमारों को खत्म कर दिया है। यह सब कुछ जानकर राजपुरुषों और नगरवासियों से यह दु:ख अनिष्ट न सहन हो सका, तब बिना ही किसी विचार परामर्श के श्री गोरक्षनाथ को अनिष्ट पहुँचाने में जब कोई देर न रही। तब सबके सब खड़े चलते बैठे जिस अवस्था में जो भी अनिष्ट करने के विचार में थे वे सबके सब ही बिना रानियों के जुड़ गये तथा उन्हों के शरीरों में असह्य वेदनायें उत्पन्न कर दीं, जिनको सहने के लिये वे असमर्थ हो चुके थे तथा जिस ओर पड़े थे उसी ओर पड़े हाहाकार कर रहे थे। श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने जब उनकी दशा देखी तो दयार्द्रित हो गये तब मत्स्येन्द्रनाथ जी ने लोगों से पूछ रहे थे कि तुमने गोरक्षनाथ जी के प्रति कोई बुरी भावना तो नहीं की थी। तब वे जुड़े हुए बोले कि उसके द्वारा मारे गये राजकुमारों को सुनकर के अति दु:खी हुए हम सबकी भी उसे मारने की भावना थी। तो अब हम जो–जो इस भावना वाले थे उन सबकी ही यह दयनीय दशा हो रही है जो आप देख रहे हो। अब न तो हम लोग उनके पास जाकर क्षमा ही मांग सकते ह क्योंकि हम सब हिलने डुलने में असमर्थ हैं। वहाँ

उसके पास कैसे पहुँचे? हम सभी असह्य व्यथा से व्यथित हो रहे हैं अब आप ही हे दयामय! हमारे पर दया करने वाले हो तब मत्स्येन्द्रनाथ जी ने कहा कि गोरक्षनाथ जी दयालु सर्वसमर्थ भी हैं यदि उन्होंने राजकुमार मार दिये हैं तो वे पुन: उन्हें जीवित करने में सक्षम भी हैं, यह उनका स्वभाव ही है कि वे इस प्रकार के खेल करते रहते हैं। जैसा उनका विचार होवे वह असम्भव को सम्भव और सम्भव को असम्भव करना ही उनके खेल तथा लीला है इसके बाद मत्स्येन्द्रनाथ जी ने गोरक्षनाथ से कहा कि बेटा! उन दु:खियों पर दया करो! उचित दण्ड देना ही ठीक होता है क्योंकि उनको भी राजकुमारों के मरने का अति दु:ख था तो उन्होंने तुम्हारे अनिष्ट की भावना बनाई थी सर्वथा सदोषी तो वे भी नहीं हैं क्योंकि जिसकी हानि की जावे, वह अपनी हानि का बदला तो चुकाना चाहता ही है। यदि कमजोरी से न चुकाया जा सके तो वह दूसरी बात है। हे गुरो! जो आपने दया करने को कहा वह तो होगी किन्तु जो अकस्मात् आक्रमण होने वाला था उसे तो रोकना ही था। अब श्री गोरक्षनाथ जी ने जल लेकर उस पर गुरु का नाम पढ़कर उस जल को दायें हाथ में लेकर उन जकड़े हुओं पर फैंका तो वे सब पूर्व की तरह ठीक ठाक हो गये। तब वे सब श्री गोरक्षनाथ जी के चरणों पर गिरकर क्षमा मांगने लगे तब गोरक्षनाथ जी एक कदम पीछे को हो गये उन्हें अधिक नमस्कारें कराने की पसंदगी न थी और न ही मान बढ़ाई की चाहना रखते थे। वे उचित व्यवहार ही करते थे दूसरे के भी उचित को अच्छा समझते थे। पहले किसी बिना दोषी पर वार नहीं करते थे यदि कोई करे तो फिर आसानी से बख्शते भी नहीं थे।

तब सभी हाथ बांध कर बोले कि हे प्रभो! हमारे सबके कुत्सित भावों को क्षमा रखना हम अल्पज्ञ जीव पशु बुद्धि हैं। आप तो परमेश्वर तुल्य हमारे पिता हो, हम तो सदा ही भूलने वाले हैं। हमारी क्षति त्रुटियों को क्षमा करने योग्य हो। फिर गुरु गोरक्षनाथ जी बोले अब क्या चाहते हो? मत्स्येन्द्रनाथ जी की जीवात्मा को इस राजशरीर में रोके बिना और मांगों क्या चाहिये? सर्वप्रथम रानियां बोली कि हमारे राजकुमार कृपा करके बख्शो। पुरवासियों की ओर दृष्टि फेर पूछा कि तुम्हारे को क्या दु:ख था जो क्रूर भाव से भावित हुए थे। पुरवासियों ने भी यही कहा कि हमारे को कुमारों के वियोग का ही दु:ख था वे यथा थे तथैव चाहिये। अनेकों मुसीबतों से हम सबने राजयोगी की कृपा से राजकुमार प्राप्त किये।

पुनः गोरक्षनाथ जी ने राजकुमारों को जीवित करना तथा रानियों पुरवासियों को खुशियों में लाना

हे प्रभो! बिना मालिक रक्षा करने वाले के कोई वस्तु नहीं रह सकती एवं बिना राजा के यह देश तथा हम सब कैसे रहेंगे आप ही कृपा करके कहो! यदि राजकुमार होते तो अब राजा बनने वाले ही थे। श्री गोरक्षनाथ जी—मैंने तो राजयोगी के कहने से साफ कर दिये यदि वे कहेंगे कि तुम फिर मैले कर दो, तो मैं फिर पहले की तरह मैले कर दूंगा। पास बैठे हुए राजयोगी की ओर सभी लोग देखने लगे कि क्या बोलते हैं? इनकी प्रतीक्षा में सबके समक्ष राजयोगी ने कहा कि बेटा! मैंने तुम्हें कहा था कि इन्हें साफ (शौच करा) कर के ले आओ न कि इन कुमारों की

मृत्यु को ले आओ। श्री गोरक्षनाथ—हे गुरो! यथा आज्ञा हो आप जी के कहने से मैंने तो इनकी पूरी सफाई की थी। यदि इनकी पूरी सफाई नहीं चाहिए तो मैं इनको श्रीमान के निर्देशानुसार मैं पुन: मैले कर देता हूँ। तब पुन: श्री गोरक्षनाथ आदिस्वरूप ने उन दोनों खालों को उन लोगों से मंगवाकर पास—पास में रख वाली और उन्हों को ऊपर से एक स्वच्छ वस्त्र से आच्छादित करा दीं एवं कमण्डलु में जल लेकर उस पर कुछ पढ़कर के तीन फूत्कार किये। बाद में उस जल को दक्षिण चुल्लु में लेकर स्वात्मा सर्वव्यापक सर्वसमर्थ का ध्यान कर उस वस्त्र पर चुल्लू वाला जल फेंका जिसके नीचे दोनों खालें ढांक रखी थीं। उन खालों में से वस्त्र के नीचे से इस प्रकार दोनों कुमार पूर्वाभिमुख हुए उठकर बैठ गये यथा कहीं अत्यन्त निद्रा में सोते हुए उठकर बैठ गये हो और स्वयं ही ऊपर से वस्त्र हटाकर अपने पिता को श्री गोरक्षनाथ जी को प्रणाम किये। तब राजयोगी के निर्देशानुसार निर्दिष्ट वेत्रासन पर बैठ गये।

राजयोगी ने दोनों कुमारों से पूछा कि बेटों ! जब के गये तुम कहाँ रहे

कुमार—जब इस महाराज ने हमें साफ करने को कहा तो हमारी दोनों टांगों को पकड़ धोबी की शिला पर पटक—२ कर मारा था तब हमारे को महान कष्ट हुआ था। इसके बाद का हमारे को कोई ज्ञान नहीं कि हम इतनी देर कहां रहे कैसे रहे और अब पुन: कैसे बनकर फिर आ गये हैं। पिता—तो तुमने आकर हमारे को जीवित होकर बताया क्यों न कि इस

महाराज ने हमारे को इस प्रकार मार डाला था तब दोनों ने कहा कि हमने इनसे डर कर नहीं कहा कि फिर न मार दें। जब यह चले जाते फिर हमने कहना था उक्त दोनों ने एक सी ही बातें बताई। राजयोगी—बेटों! जो मारकर फिर जीवित कर देवे वह मारने वाला नहीं होता वह समझाने वाला होता है और जो दु:ख देकर पुन: सुखी कर देवे वह दु:ख देने वाला नहीं होता वह तो सुखकारी होता है। यह सब कार्य तो परमेश्वर के ही अधिकार में हैं वह किसी का वैरी दुश्मन तो है नहीं वह जो कुछ भी करता है प्राणीमात्र के कर्मानुसार दण्ड अदण्ड का निर्देश जीवमात्र के हितार्थ ही करता है उसका जीवों के कर्मों का दण्ड अदण्ड देने में कोई निजी स्वार्थ निहित नहीं होता वह सब कुछ प्राणीमात्र को समझाने के लिये ही होता है।

श्री गोरक्षनाथ जी का दो शब्दों में सबको समझाना

गोरक्षनाथ जी—हे प्रिय जनों! जिस सीमा में जाकर अपना कार्य सिद्ध हो चुका हो सिद्ध कराने वाले का भी कार्य क्षतिग्रस्त न होता हो, उस सीमा पर्यन्त ही सज्जन से आग्रह करना व कराना उचित होता है अन्यथा उसका फल अनुचित होता है। जैसे आप सब पूर्वानुभव कर चुके होंगे, जिसका अभी सुधार हुआ है इस समय रात्रि के साढ़े ढाई याम व्यतीत हो चुके हैं अर्थात् रात्रि का डेढ़ बजा है अब तुम सब अपने—अपने निवास पर जाकर विश्राम करो अब जिस मकान में हम ठहर रहे हैं। दिन निकलने से पूर्व इस मकान में कोई न आवे! तब दोनों

रानियां अलग हों कुछ विचार करके बोली कि महाराज एक बार हमारे को अपने महल में से होकर आ लेने दो फिर यह आज्ञा लागू करना। तब राजयोगी ने उन्हें कहा जाओ महल में से होकर शीघ्र आ जाओ तब दोनों रानियां दोनों कुमारों को साथ लेकर प्रणाम कराकर चली गयी कुमारों को घर में ही छोड़कर एक सोने की ईंट एक थैले में रखकर के राजयोगी के आगे रख प्रणाम करके लौट गयीं। तब मत्स्येन्द्रनाथ जी ने श्री गोरक्षनाथ से कहा कि बेटा! यह स्वर्ण ईंट है इसको चलते समय साथ ले लेना कहीं माया की आवश्यकता पड़ जाती है। श्री गोरक्षनाथ जी गुरु की यह बात सुनकर के मौन रहे। अब रात्रि के चतुर्थ यामादि में श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी को विस्मृत हुई कुछ काय प्रवेश की क्रिया गोरक्षनाथ जी ने स्मरण करायी, बाद में–

मत्स्येन्द्रनाथ ने राज शरीर का त्याग करना दोनों गुरु शिष्यों का कामरूप देश से प्रस्थान करना

भूमि पर सिद्धासनस्थ होकर अपने जीवात्मा (सूक्ष्म शरीर) को राजशरीर से नि:सार कर अर्थात् निकालकर अन्तरिक्ष मार्ग से चलते हुए और गोरक्षनाथ जी स्वर्ण ईंट वाले थैले को वहीं महल में ही छोड़कर के गुरु के पीछे–पीछे स्वसंकल्परूप यान में आरुह्य। दोनों करुणा कर महासिद्धेश्वर योगेश्वर अन्तरिक्ष में चलते हुए वहाँ आकर नीचे उतरे जहाँ त्र्यम्बकेश्वर की गुहा में श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी का निर्जीव शरीर था। वहाँ

शरीर रक्षार्थ स्थित गौरवनाथ जी ने श्री गोरक्षनाथ जी को आदेश–२ प्रणाम किया। तब दोनों गुरुबन्धुओं ने गुरु शव शरीर को ठीक प्रकार से रखकर के गुरु जी से प्रार्थना कि हे गुरुदेव! हमारे पर कृपा करके अपने सद्मशरीर में प्रवेश करो! अब मत्स्येन्द्रनाथ की आत्मा ने अपने शरीर में प्रवेश किया तो शरीर में चेतना आने लगी तथा श्वास प्रश्वास की भी आगति गति होने लगी कुछ समय में पेय आदि पान कर पूर्ण सबल हो गये। गोरक्षनाथ जी इनके शेष सब गुरुभ्राता बहुत प्रसन्न हुए गुरु जी के दर्शन करके अब गौरवनाथादि शिष्य गुरु जी से शेष विद्यायें सीखने लगे।

शंकर दिग्विजय के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ जी का परकाय प्रवेश

[1]मत्स्येन्द्रनामा हि पुरा महात्मा,
गोरक्षमादिश्य निजाङ्गगुप्त्यै।
नृपस्य कस्यापि तनुं परासोः
प्रविश्य तत्पत्तनमाससाद।।

शंकराचार्य के सनन्दन नाम के शिष्य सूचित करते हुए हे आचार्य! आप भले ही अमरुक राजा के शरीर में प्रवेश करो! मैं आप श्रीमान को निषेध नहीं करता किन्तु मुझे जो सन्देह चक्र में डाल रहा वह यह है कि विषयवासना बहुत प्रबल होती है। विद्वानों को भी नीचा दिखा देती है न जाने कि आप उस शरीर से ही मोह कर बैठे तो वेदान्त शास्त्र के प्रचार में ही बाधा पड़ जाये और संसार आपके अमृतमय उपदेश से वंचित ही रह जावे। मैं आपसे सविनय प्रार्थना करता हूँ कि पूर्व काल में

१. शंकर दिग्विजय सर्ग ९

मत्स्येन्द्रनाथ जी, गोरक्षनाथ जी प्रसिद्ध महात्मा योगीराज हुए हैं। श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने अपने शिष्य गोरक्षनाथ को स्वशरीर संरक्षण का भार देकर किसी मृत राजा के शरीर में प्रविष्ट हो गये। उसी राजा के शरीर से उस राजा का राज्य करने लग गये। ये सब पद्य नवमें सर्ग शंकर दिग्विजय में है। श्लोक संख्या ८१–८२–८३ से आरम्भ होती है यह ग्रन्थ पूना के प्रेस से प्रकाशित है। विद्यारण्य स्वामी इस ग्रन्थ के कर्ता हैं इस श्लोक से पूर्व और श्लोक भी इस विषय की पुष्टिकारक हैं। उनका भावार्थ इस श्लोक की टीका में कह दिया है।

[1]भद्रासनाध्यासिनि योगिवर्ये,
भद्राण्यनिद्राण्यभवन् प्रजानाम्
ववर्ष कालेषु बलाहकोपि।
सस्यानि चाऽऽशास्य फलान्यभूवन्।

सनन्दन बोले हे आचार्य जी! श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी के अतुल्य योग प्रभाव से उस देश में प्रजा पूर्व राजा की अपेक्षा परमानन्द पूर्वक रहने लगी। समय–२ पर उचित वृष्टि होने लगी। खेतियां सम्यक् फलने फूलने लगी। प्रजा समाज विभ्राजमान हो गया।

[1]विज्ञाय विज्ञाः सचिवा नृपस्य,
काये प्रविष्टं कमपीह दिव्यम्।
समादिशन् राजसरोरुहाक्षीः,
सर्वात्मना तस्य वशीक्रियायै।।

१. शंकर दिग्विजय सर्ग ९

बुद्धिमान मंत्रियों ने जान लिया कि यह वह राजा नहीं है जो पहले था यह तो कोई और ही दिव्य शक्ति ने नृपशरीर में आ प्रवेश किया है। अब यहाँ से इसे न जाने दिया जावे एवं विचारकर सुन्दर राज रमणियों को मत्स्येन्द्रनाथ जी को वश में करने के लिये नियुक्त कर दिया।

[१]संगीतलास्याभिनयादिमेषु,
संसक्तचेताः ललितेषु तासाम्।
स एष विस्मृत्य मुनिः समाधिम्,
सर्वात्मना प्राकृत वद् बभूव।।

और नाच, गाने, बजाने, हाव, भाव, संगीत आदि अनुकूल चेष्टाओं द्वारा उन राज रमणियों ने मत्स्येन्द्रनाथ जी को वश में कर लिया। समाधि का अनुभव जीवात्मा को दूसरे शरीर में ले जाने की विधि को भी भूल गये। प्राकृत न होकर प्राकृत सदृश हो गये।

[१]गोरक्षनाथोऽथगुरोः प्रवृत्तिम्,
विज्ञाय रक्षन् बहुधास्य देहम्।
निशान्तकान्ता नटनोपदेष्टा,
नितान्तमस्याभवदन्तरङ्गः।।

भगवान गोरक्षनाथ इस वृतान्त को जानकर के गायक, शिक्षक का वेश धरकर और गुरु के देह की रक्षा का प्रबन्ध कर उसके नितान्त पास आ गये।

---
१. शंकर दिग्विजय सर्ग ९

[१]अथैकदा तत्त्वनिबोधनेन
निवृत्तरागं निजदेशिक सः।
योगानुपूर्वीमुपदिश्य नित्ये,
यथापुरं प्राक्तनमेव देहम्।

इसके बाद एकान्त स्थान में राजशरीरस्थ गुरु जी को विस्मृत हुए योगक्रम नियम का आनुपूर्वी से उसे बोध कराया यथा परकाय प्रवेश से उसे पूर्व देह में था।

हरियाणा प्रदेशस्थ रोड का मुहाना गुरु स्थान के साधु श्री १०८ श्री सूर्यनाथ के शिष्य पञ्चाल देश के जिला अमृतसर में ग्राम किरलगढ़ दुर्गा मन्दिर स्थानाध्यक्ष योगी वीरनाथ द्वारा रचित श्री नाथ चरित का पंचम पुष्प समाप्त।

१. ये श्री० श० दि० वि० सर्ग ९ के श्लोक हैं। श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने राजशरीर में प्रवेश करना पुनः स्वशिष्य की सहकारिता से अपने पूर्व शरीर में ही आना, ये श्लोक शंकराचार्य से कहीं सुदुर पूर्व होना मत्स्येन्द्रनाथ तथा श्री गोरक्षनाथ जी को प्रमाणित करते हैं।

❊ षष्टम पुष्प ❊

महाज्ञान के

अध्यक्ष आदिनाथ (शिव) और श्री गोरक्षनाथ (सदाशिव) हैं। महाज्ञान, महाविद्या, महायोगविद्या, महायोगज्ञान ये पर्याय हैं। महाज्ञान के अध्यक्ष या आचार्यों ने जिस मार्ग द्वारा यह महाज्ञान प्राप्तव्य है उस मार्ग के आचार्यों की भाषा में उस मार्ग के नाम ये हैं। नाथ सम्प्रदाय, नाथ मार्ग, योग मार्ग, सिद्धसम्प्रदाय, सिद्धमार्ग इत्यादि पर्याय नाम है। इस सम्प्रदाय के अर्थात् नाथ सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य श्री आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ जी हैं और मुख्य आचार्य तो नाथमार्ग के नौ नाथ तथा चौरासी सिद्ध भी प्रचारक और प्रसारक तथा सेवी हैं। चौरासीनाथ सिद्धों से भिन्न भी अनेक योगी महायोगविद्या के सेवी हुए हैं।

नाथ सम्प्रदाय के बारह पन्थ

यद्यपि नाथ सम्प्रदाय के बारह पंथों के प्रमुख्य बारह ही आचार्य हैं तथापि उन सबके प्रधानाचार्य आदिनाथ और गुरु गोरक्षनाथ जी ही हैं। प्राचीन समय में त्र्यम्बकेश्वर नासिक के कुम्भ पर्व पर आये बारह पन्थों के योगियों में किसी विषय पर वाद–विवाद छिड़ा। जिन्हें बारह पन्थों में से आदिनाथ (शिव) के भोग योगयुक्त योगियों में तथा श्री गोरक्षनाथ के केवल शुद्ध योगयुक्त योगियों में किसी सम्मान श्रेणी के विषय सम्बन्धित विवाद ने युद्ध रूप धार लिया और उक्त दोनों दलों में भयानक युद्ध आरम्भ हुआ और गोरक्षनाथ के अवधूत योगियों ने भोगी योगियों का सफाया कर दिया। तब जो कुछ भोगयुक्त योगी लुक छिप कर शेष प्राण बच रहे थे उन्होंने आदिनाथ (शिव) को अकस्मात् पुकारा तो भगवान

आदिनाथ जी वहाँ प्रकट हुए। तब आदिनाथ जी ने अपने शेष बचे शिष्यों से पूछा कि तुमने मुझे अकस्मात् आरतनाद से किसलिये पुकारा। तब उन्होंने कहा कि गोरक्षनाथ के शिष्यों ने आपके जो बारह पन्थों में शिष्य हैं उनका सफाया कर दिया है। तब यह सुनकर आदिनाथ ने श्री गोरक्षनाथ जी को स्मरण किया तो गोरक्षनाथ जी भी वहीं तत्काल उपस्थित हुए तो दोनों महादेवों ने परस्पर आदेश प्रणाम किये। तब आदिनाथ जी ने श्री गोरक्षनाथ जी से कहा कि आपके अनुयायी शिष्यों ने मेरे समस्त शिष्यों को प्राय: नाश सा ही कर दिया है कोई एक शेष प्राण होने से लुक छिपकर बच गये हैं। यह काम अच्छा नहीं है क्योंकि पारस्परिक वैर–भाव क्या कभी अच्छा हुआ है। गोरक्षनाथ जी--हे आदिनाथ जी! वैर–भाव का क्या काम वे तो जो भोगी योगी थे वे ही केवल योगयुक्तों द्वारा बराबर का मान चाहते हुय मारे गये हैं। अब केवल अवधूत योगियों के ही बारह पन्थ हैं उनमें छ: आपके होंगे और छ: मेरे होंगे। आदिनाथ जी–अकाल मृत्यु से जो ग्रस्त हो चुके हैं उनका अब क्या होगा उनका तो नामोनिशान गया। गोरक्षनाथ जी–हे आदिनाथ जी! जो अवधूत नाथ योगियों के बारह पन्थ हैं उनमें से छ: पंथ आपके कहे जा चुके हैं वे छ: ही बारह पन्थों के नाम से कहे जाते हैं और जो भोग योग वाले छ: मर चुके हैं छ: ही वे बारह और छ: मृत अठारह आपके पुकारे जावेंगे और उन मूल बारह पन्थ अवधूतों में जो छ: पन्थ मेरे हैं वे छ: भी बारह ही के नाम से कहे जावेगें। इस प्रकार छ:–छ: के और अठारह के व्यवहार में भी बारह पन्थ ही रहेंगे। यही बारह अठारह के योगी हैं। यह तो एक व्यर्थ का ही

व्यवहार साधुओं ने चला रखा है। वास्तव में जो वर्तमान में बारह पन्थ आदिनाथ जी के हैं, वे बारह ही गुरु गोरक्षनाथ के हैं। कई नाथ साधुओं का यह भी कहना हैं कि बारह पन्थों से अधिक जो पन्थ भोग योग युक्त थे वे ही श्री गुरु गोरक्षनाथ जी ने तोड़े थे। यथा–पाव, वन आदि थे। आई पन्थ–यह विमला देवी से पूर्व उदयनाथ जी से सम्बद्ध था बाद में विमलादेवी के नाम से भी प्रख्यात हुआ।

अठारह प्रकार का भोग योग नष्ट कर दिया जिस समय उमा भवानी ने सुना नष्ट हुए भोग योग को तब भवानी आदिनाथ जी से बोली कि अब मेरा सम्बन्ध नाथ सम्प्रदाय=सिद्धमार्ग से कोई नहीं रहा है न ही मेरी सहकारिता की तदर्थ आवश्यकता रही, उमा के ये रुष्ट वचन सुनकर–

नं० १–शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रारम्भ नाथ सम्प्रदाय में आई पन्थ

आदिनाथ ने आदिपन्थ को आई पन्थ नाम से परिवर्तन कर भवानी आई पन्थ की आचार्या प्रसिद्ध कर दी। आई, यह पारिभाषिक शब्द है। 'आ' से आदिनाथ, आदिशक्ति जगदम्बा का ग्रहण है। प्रदेश भेद से स्वमाता को भी 'आई', इस नाम से कहते हैं। इस आई=आदिशक्ति भवानी की ही यावद् देवीपद वाच्य शक्तियां हैं वे सब भवानी जी का ही नाम रूपान्तर है एवं आई पन्थ शिवशक्ति दोनों का उपासक होने पर भी विशेष कर शाक्त ही हैं एवं नाथ सम्प्रदाय ही शैव शाक्त है अर्थात् अभिन्नरूप से दोनों का उपासक है आगे चलकर आई पन्थ की संचालिका विमला भगवती हुई।

आई पन्थ में विमला की संक्षेप से कथा

विमला यह किसी सूझबूझ वाले राजघराने की महिला थी। इनके इलाके में किसी समय दैवयोग से गुरु गोरक्षनाथ जी गये तो वहीं किसी जगह कुछ समय ठहरे विमला दम्पति ने श्री गोरक्षनाथ जी की प्रसिद्धि की चर्चा सुनी तो ये दम्पति सन्तानहीन थे। तब विमला दम्पति ने सन्तानार्थ जाकर विनम्र भाव से उनसे सवाल किया। तब उनका सवाल सुनकर गोरक्षनाथ जी ने पास में पड़े धान जो कि कोई भावुक तभी धान चढ़ाकर गया था। उसमें से एक दोनों हाथों की अञ्जली (बुक) भर विमला की झोली में डाल दी और उससे बोले इनको कूट–कूट कर साफ करो जब इनको कूट–कूट कर अलग–अलग चावल भुस हो जावेंगे तब मुझे बताना। वे दम्पति धानों को कूटने के लिये अपने घर को ले गये और विमलादेवी ने उनको कूटना छानना प्रारम्भ कर दिया। वह जैसे ही उन्हें कूटने तथा साफ करने लगी तो कूटते साफ करते–२ उनके घर में चावलों के एक ओर भुस्स (फक) के एक ओर ढेर से लग गये तो धान अभी भी उतने ही थे जितने सदाशिव रूप श्री गोरक्षनाथ जी ने दिये थे। जब पुन: कई वर्षों के बाद आकर गुरु गोरक्षनाथ पूर्व जगह ही में विराजमामन हुए तो विमला भी सुनकर के गोरक्षनाथ जी के पास आई। आकर के बोली कि महाराज चावल (कनक) और भुस्स के तो ढेर लग गये हैं और धान जो आपने अञ्जली भर कर दी थी वह तो अब भी उतने के उतने ही हैं। तब आदिनाथ रूप गोरक्षनाथ जी शान्त स्वभाव से दोनों दम्पति को बोले कि जो कूट कर साफ किये हैं चलो मुझे दिखाओ, जब ले जाकर कनक (चावल) भुस्स (फुक) के अलग–अलग ढेर दिखाये तो प्रथम कनक के ढेर में हाथ दिया तो अघटित घटना पटीयसी अपनी

यौगिक माया लीला से एक बालक निकाल दिया बाजू से पकड़कर और भुस्स में हाथ देकर उसमें से भी एक बालक निकाल दिया और जो कनक में से निकाला उसका नाम कनकाई और भुस्स में से निकाला उसका नाम भुस्सकाई रख दिया। टूटे चावलों को देश भेद से कहीं कनियाँ कहीं कनक भी कहते हैं। यह देखकर विमला चकित रह गई तब विमला ने भगवान जी की यह अपार शक्ति देखकर संसार तथा सांसारिक पदार्थों को तुच्छ समझती हुई दोनों बालकों को जो अभी कृपा करके उन्होंने दिये थे। वे उन्हीं के चरणों में प्रत्यर्पण कर दिये और आप भी असार संसार को जानकर सर्व सम्पत्ति को कूड़ा समझकर परमेश्वर गोरक्षनाथ जी की शरण में आकर महासिद्धी होकर विमला देवी नाम से प्रसिद्ध हुई। उक्त दोनों बालक विमला को दिये तथा विमला तीनों ने एक ही समय में श्री गुरु गोरक्षनाथ जी से दीक्षा ली थी। गुरु जी–हे विमले! तुम भी आदिशक्ति की मतानुयायिनी हो इसलिये आई यह नाम आदिशक्ति भवानी का द्योतक है वह आई तेरा भी द्योतक होगा तथा आई पन्थ वाली प्रख्यात व संचालिका होगी। इसके बाद में तपोयोग बल से महासिद्धा योगिनी परम प्रभावशालिनी हुई। कई नाथों का कहना है कि दीक्षित होने के बाद इसी का नाम चोलिपानाथ हुआ था। संसार दुःख दावानल से मुक्त हुई एवं इसी पन्थ में महासिद्धराज श्री बाबा मस्तनाथ जी गुरु गोरक्षनाथ जी का ही नाम रूपान्तर हुए हैं। इसकी कथा बहुत विशाल है जो मस्तनाथ चरित्र में इनकी लीला चमत्कृतियों से पूर्ण है और किसी भक्त भावुक की भावना में ही गोरक्षनाथ जी ने बालरूप धारण किया था। इनकी परम्परा शिष्य प्रणाली का नाम आई न लगाकर केवल नाथ उपाधि से होता है। इस पन्थ के हरियाणा रोहतक में बोहर महामठ है।

बलंबा खोतादि प्रसिद्ध स्थान है आर प्रदशों में भी इस पन्थ के अनेकों मठ हैं।

नं० २–शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ सम्प्रदाय में सत्यनाथ पन्थ

महाज्ञान या महायोगविद्या का प्रचार प्रसार आदिनाथ एवं सदा शिवरूप गोरक्षनाथ जी से हुआ और ये ही इस महाज्ञान के अध्यक्ष हैं। इस महायोगविद्या के ही नाथ सम्प्रदाय में बारह शाखा (पन्थ) हैं जिनके प्रवर्तक त्रिदेव आदिशक्ति भवानी मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ अन्य देवर्षि ब्रह्मार्षि महासिद्ध योगी एवं राजर्षि हैं इन बारहों पन्थों के प्रथम अध्यक्ष आदिनाथ शिव तथा सदाशिवरूप गुरु गोरक्षनाथ ही हैं। इन्हीं में से सतनाथ (सत्यनाथ) पन्थ का प्रवर्तक ब्रह्मदेव हैं। इसे दिखाते हैं–

[1]प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरम्।
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषु मृष्यस्य वपुषा।।
धनुष्पाणे र्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुम्।
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृग व्याधरभस:।।२२।।

हे नाथ! अमुक कामुक पिता की व्यभिचार की प्रवृत्ति को देखकर अधर्म के भय से हरिणीरूप को धारण की हुई स्वपुत्री से व्यभिचार की इच्छा से मृगरूप धारण किये हुए पिता के पीछे–पीछे आज भी आपका व्याधरूपी बाण उसके डर जाने पर भी आकाश में उनका पीछा नहीं छोड़ रहा है। अर्थात् मृगशिरा नक्षत्र के नाम से ब्रह्मा तथा आर्द्रा

१. शिव म० स्तो० का श्लोक २२। यह पौराणिक कथा के आधार पर पुष्पदन्त आचार्य कृत महिम्न स्तोत्र का श्लोक

नक्षत्र के रूप से उनके पीछे—पीछे रहने वाला आपका बाण आज भी आकाश में उसका पीछा करता दिखाई पड़ रहा है। यह पुराणों की कथा है। अत्यन्त सुन्दरी अपनी कन्या को देखकर विधिदेव ने बल पूर्वक बलात्कार करना चाहा तो शतरूपा डर कर मृगी बनकर भागी और विधि ने मृगरूप बन व्यभिचार करना चाहा तो तभी व्याधरूप को धारण कर शिवबाण अन्याय जानकर मृग के पीछे पड़ा जो अभी तक भी पीछा न छोड़कर मृगशिरा आर्द्रा नक्षत्रों के रूप में ही वर्तमान हैं। तब विधाता अन्याय और बाण के भय से तथा पूर्व त्रिदेव कृत परामर्श के किये वचनरूपी प्रण के वशवर्ती हुआ। विधिदेव सत्यलोक नाथ ने, आदिनाथ शिव की शरण आकर क्षमा प्रार्थना की और मानसिक पाप निवृत्त्यार्थ शिष्यरूप में होकर आदिनाथ से आशीर्वाद चाहा। तब शिवरूप आदिनाथ ने ब्रह्मदेव को नाथमार्ग में दीक्षित कर आशीर्वाद देकर कृपा दृष्टिपात कर निष्पाप किया एवं परम पावन कर तथा सर्व प्रकार से दीक्षित चिन्हित करके सत्यनाथ विधिदेव का नामकरण हुआ। सत्य से यहाँ ग्रहण है सत्यलोक का और यथागुणानुसार जगन्नाथ भी इसी का अन्य नाम है। विशेष ज्ञातव्य—भगवान आदिनाथ तथा गुरु गोरक्षनाथ के महाज्ञान का मार्ग जो नाथ सम्प्रदाय है उसके बारह पन्थों में से सत्यनाथ नाम के पन्थ (शाखा) का प्रवर्तक सत्यनाथ ब्रह्मा है और इस शाखा का प्रथम पुरुष या आचार्य ब्रह्मा हुआ और उसके नाम से ही उसकी प्रणाली तथा सन्तति बोली जाती है। यथा—ब्रह्मा के, सत्यनाथ के, सत्यनाथी (योगी) हैं। इसी प्रकार शेष ग्यारह पन्थों के आचार्यों के नामों से सम्बन्धित ही नाम योगियों के बोले जाते हैं यथा राम के वैराग के इत्यादि से ही उस—उस पन्थ के योगी जाने जाते हैं।

नं० ३–शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धी धर्मनाथ पन्थ

बहुत प्राचीन समय में अणिमाण्डवयर्षि किसी वन में समाधिस्थ थे तब किसी राजदरबार को तोड़कर लूटने के विचार से तस्कर जा रहे थे। उन्होंने देखा कि झोपड़ी में कोई महात्मा नजर आया तो वे उसकी ओर हो लिये। महात्मा को ध्यान में बैठा देख कर उसे बिना बुलाए ही उन्हें मौन प्रणाम करके तो यह भेटा (सुखना) सुखी कि यदि हमारा काम सिद्ध हो गया तो हमारे को जो प्रथम उपलब्धि होगी वह हम आपकी भेटा देंगे एवं मानसिक भाव बना चोर चले गये, तब उन्होंने राजदरबार तोड़कर जब भीतर प्रविष्ट हुए तो उन्हें किसी खूंटी से टंगा हुआ रानी का हार प्रथम दृष्टिगोचर हुआ वह उन्होंने ले लिया और भी उन सबने जितनी माया उठाई गयी ले करके चल दिये रातों रात ही जिस जगह पर महात्मा को भेंट देनी कह कर आये थे जब वे महात्मा के पास वापिस आये तो वह अभी भी उसी प्रकार ही बैठा हुआ योगनिद्रा में लय था। उन्हें किसी के आने जाने का कोई भी पता न था और न ही उस महात्मा को यह पता था कि कौन भेंट देनी कर गया था और कौन देने के लिये आ रहा है। वह अपने प्रगाढ़ानन्द में आनन्दित थे तब भेंट देते समय भी उन्होंने महात्मा को नहीं बताया उनके आगे हार की भेंट रख करके सब तस्करों ने महात्मा को प्रणाम किया। वह हार उठाकर के जो कोई वृक्ष महात्मा के अति–निकटतम था उसकी किसी टहनी में लटकाकर चले गये कि जब उठेंगे आप ले लेंगे यह सोच कर चले गये। उधर जब राजा को दिन निकले चोरी हुई का पता चला तो राजा ने तत्काल पुलिस खोजी छोड़

दिये चोरी का शीघ्र पता करो तब खोजी ओर पुलिस चलते–चलते खुरा लेकर वहीं आ गये जहाँ पर वह महात्मा समाधिस्थ थे और महात्मा अभी भी समाधि में ही विराजमान थे। पुलिस राजकर्मियों ने देखा कि सन्त के निकट वृक्ष की टहनी में हार लटक रहा है जो रानी का था। तब पुलिस ने सन्त से पूछना प्रारम्भ किया तो वे समाधि में ही थे तो बोलते कहाँ कैसे। तब पुलिस ने मारपीट की तो वह तब भी कुछ नहीं बोले पुलिस कहने लगी कि रात्रि को चोरी करते हैं और दिन में सन्त बनकर समाधि लगा लेते हैं। इस प्रकार मारने पीटने पर भी वह समाधि ही में रहा कुछ नहीं बोला मुसीबत में पड़ा परमेश्वर की लीला देख रहा था। तब राजा के आदेश से पुलिस मुनि को उठाकर उसके पास ले गयी वहाँ भी बुलाने पर किसी से कुछ भी नहीं बोला। तब बुद्धि से अन्धे राजा ने कहा कि यह बहुत पक्का चोर है। यह बनावटी मौनी है इसे शूली पर आरोपित कर नष्ट कर दो। इसे पूछताछ की आवश्यकता नहीं है तब क्या था मुनि को शूली पर आरोपित कर दिया मुनि वहां भी समाधिस्थ रहा एवं कई दिन शूली पर व्यतीत होने पर भी मुनि का जब प्राणान्त न हुआ तब राजा के कहने से शूली पर से मुनि को उतारने लगे तो शूली शरीर में जाम हो गयी थी। तब मुनि के शरीरस्थ ही शूली को तोड़कर फिर नीचे उतार कर शूली को नौवें दिन मुनि के शरीर से अलग किया तो मुनि ने भी शरीर त्याग दिया। तब ईश्वर कृपा से दिव्य वपुयुत हो सीधा धर्मराज के राजदरबार में गया वहीं उपस्थित धर्मराज को देख बोला कि अरे तुमने मुझे किस कर्म का यह दण्ड दिया है? सौ जन्म तक का मुझे सम्यक् स्मरण है कि मैंने कोई भी अपराध नहीं किया। तब धर्मराज

सोच–विचार में पड़ गये अपने प्राणिकर्म रजिस्टर देखने लगे तो ठीक एक सौ जन्म तक उस मुनि का कोई भी अपराध दृग्गोचर न हुआ। जब एक सौ से ऊपर वाले जन्म में धर्मराज ने दृष्टिपात किया तो उस जन्म की बाल्य अवस्था में वर्तमान मुनि ने एक कीट (बीडा) के पंख में शूल चुभोई थी उस समय में आप बालक थे उसका अब आपको दण्ड मिला है। तब महात्मा बोले कि एक तो मैं तब नासमझ बालक था, दूसरा शूल भी बेजान पंख में मैंने चुभोई थी, तीसरा उस पाप से यह [१]दण्डनीय दण्ड भी कई गुना अधिक है क्योंकि यह शूल की शूली दण्ड अन्याय है। इस त्रुटि का दण्ड तुम्हें भी भोगना होगा जाओ अपने पद ये च्युत होकर मृत्युलोक में जाकर गर्भयोनि का दु:ख सहन कर पुन: अनेक दु:खों को भोगोगे एवं मेरे दिये शाप का फल भोगकर के मुझे दिये दण्ड के पाप को तपोयोग बल से धोवोगे क्योंकि जितनी मात्रा में मेरा पाप था उसके योग्य ही मुझे दण्डित करते तो ठीक था किन्तु बिना विचारे दण्ड का स्वाद आप चखोगे। उधर से महातपस्विनी कुन्ती देवी ने भी मंत्र से धर्मराज को आमन्त्रित किया। महायशस्विनी के गर्भ में वास कर धर्मराज ने जन्म धारण किया। जन्म के बाद बहुत उत्तर काल में जब इन पाँचों भ्राताओं को वनवास हुआ था तब गोरखपुर में जहाँ अब गोरक्षनाथ जी का मन्दिर है यहीं योगरत गुरु गोरक्षनाथ जी से महाराज युधिष्ठर ने शिक्षा–दीक्षा द्वापरान्त में ली थी। वनवास के अन्तिम गुप्त वर्ष में यहीं सिद्धमार्ग में गुप्त रूप से कुछ काल रहे थे। तब इसीसे नाथ सम्प्रदाय में धर्मनाथ नाम पन्थ (शाखा) चल रहा है तब इसका नामकरण गुरु ने धर्मनाथ किया ओर

१. यह अणिमाण्डव्यर्षि की कथा भा० पु० महाभारतादि ग्रन्थों में है।

नाम भी इसके नाथों में प्रसिद्ध हैं कर्मनाथ, दण्डनाथ, न्यायनाथ इसकी प्रणाली के नाथयोगी धर्मनाथी नाम से बोधित होते हैं।

नं० ४–शिव गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धी वैराग्य पन्थ

इस पन्थ के सम्बन्ध श्री गोरक्षनाथ के शिष्य सिद्ध विचारनाथ ([1]भर्तृहरि राजा) से है। वे कौन थे? ये नृप विक्रमादित्य के बड़े भ्राता थे। जब इसको वैराग्य हुआ तो इसने राज्य तथा राज्यभोगों को तृणवत् समझकर छोड़ दिये और स्वराज्य को अपने छोटे भ्राता विक्रमादित्य के अर्पण कर दिया। स्वयं वैराग्यरूप महासागर में मञ्जन कर महायोगेश्वर

---

१ टिप्पणी–प्राचीन भारत के इतिहास के पृष्ठ २३५ में भर्तृहरि के छोटे भ्राता विक्रमादित्य का समय इस प्रकार है कि कई शताब्दियों से शक भारतीय राजनीति की विकट समस्या थी। उन शकों को हराने वाले का बड़ा यश माना जाता था। ५७ सतोंजा ईसवी से पूर्व में उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य ने शकों को हराकर सम्वत् का प्रवर्तन किया था तथा उज्जैन के विक्रमादित्य के तकरीबन ३५० वर्ष बाद में हुए। उपलब्ध विक्रम उपाधि वाले अर्थात् चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य ने भी शकों को परास्त करके उज्जयिनी के विक्रमादित्य के विरूद्ध (प्रतिद्वन्द्वता) में विक्रम उपाधि को धारण किया अर्थात् चन्द्रगुप्त ने विक्रमादित्य यह नाम अपना प्रसिद्ध किया। लेखक उक्त ग्रन्थ का प्रोफेसर एस० सी० गुप्ता बी०ए० (ऑनर्स) एम०ए० इतिहास विभाग, एम०डी० कॉलिज, सहारनपुर। चतुर्थ संस्करण १९६९ में छपा।

सदाशिव रूप गोरक्षनाथ जी के पादपद्मों के अर्पण हो गया तब श्री गोरक्षनाथ जी ने दीक्षित किया और गुरुदेव ने इनका नाम विचारनाथ रखा। यह अपने समय में भारत में अद्वितीय व्याकरण और अतुल्यस्पधी साहित्य आदि अनेक विषयों का अवारपारीण विद्वान था तथा नीति, श्रृंगार, वैराग्य तीनों शतकों का कर्ता एवं वाक्य पदीयकार भी यही हैं। मेरे विचार में उक्त ग्रन्थों की रचना श्री गोरक्षनाथ जी से दीक्षा लेने से पूर्व ही कर चुका था। यह बहुत बुद्धिमान प्रतिभाशाली विचारशील था। इसी विचार से ही गुरु जी ने यथागुण तथा नाम रखा था। निर्भीक ऊहवान इस महाविद्यारण्य ने अपनी वाक्यपदीय में यह श्लोक दिया है कि—

अहोभाष्यमहो भाष्यमहो वयमहोवयम्।
मामदृष्टवा गतः स्वर्गमकृतार्थः पतञ्जलिः।।

भावार्थ—भाष्य क्या है अचम्भा है? हम भी जो इस वाक्यपदीय को लिखने वाले हैं? अचम्भा ही हैं—२ अथवा यह वाक्यपदीय ही क्या है? अचम्भा ही है—२ किन्तु दुःख व न्यूनता इस बात की है कि आज हमारे को व हमारे वाक्य पदीय ग्रन्थ को न देखकर के ही महर्षि पतञ्जलि जो स्वर्ग को चला गया है। वह कृतार्थ होकर नहीं गया यदि आज होता तो हमारी कृति वाक्यपदीय को तथा हमारे को देखकर जाता तो कृतार्थ होकर जाता क्योंकि उसे यह ज्ञान हो जाता कि मैंने जो व्याकरण पर महाभाष्य लिखा है उस पर और भी कोई कुछ लिख सकता है न कि महाभाष्य पर अलेख्य ही हो गया न कि सब समाधानों की इतिश्री हो गयी है। यदि आज इसे देखकर जाता तो उसे भी अपने

मन में यह विचार होता कि इस गहन विषयक भाष्य को केवल मैं ही लिख सकता हूँ या इस महाभाष्य को भी ग्रसित कर किसी की प्रतिभा इसके आगे सैकड़ों मीलों तक भ्रमण कर सकती है इसका भी उसे ज्ञान हो जाता। यदि इसको अभिमान समझा जावे तो यह दोनों की ओर बराबर का ही है। यदि राजा अपने को राजा समझे तो यह कोई अभिमान नहीं होता क्योंकि यह तो सत्य ही है एवं जो जैसा है उस सीमा पर्यन्त वह अपने को वैसा ही समझे तो वह सत्य है अभिमान नहीं है जो सत्य होता है वह अभिमान नहीं होता किन्तु बड़े–बड़े व्याकरण के विद्वानों से सुना है कि उक्त श्लोक का तो बहाना था किन्तु जलन यह था कि हम ब्राह्मणवर्ग को तिरस्कृत्य यह क्षत्रिय होकर आगे पहुंच रहा है क्योंकि यह आगे का ठेका तो हमारा ही था यह कैसे आगे पहुँचा। तब परामर्श कर तदानीम् के विद्वान ब्राह्मणवर्ग ने इस वाक्यपदीय का पठन पाठन बन्द कर दिया था इस ग्रन्थ की लक्षकारिकायें तब थीं जो अब हजारों की संख्या में प्राप्त हैं इन शेष कारिकाओं को पुन: किसी विद्वान ने मुद्रित करवाया और जिनकी उनको पढ़ने समझने की पहुँच है उनके काम में आने लगीं। वे ही कुछ एक विद्वान पुन: उनको पढ़ने पढ़ाने लगे तात्पर्य यह है कि श्री गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ सम्प्रदाय के वैराग्य के प्रवर्तक यही सिद्ध विचारनाथ (राजा भर्तृहरि) थे यही गुरु गोरक्षनाथ के शिष्य बने उज्जैन के अधिपति थे। इस बात को भारत के नन्हें (छोटे) बच्चे से लेकर प्रौढ़ विद्वान तक तथा महामूर्ख से लेकर महाबुद्धिमान तक एकमत्य तथा एक विश्वास है तथापि उन्हों के मस्तिष्कों में न जाने क्या रड़कता है जो कोई दत्तात्रेय का शिष्य कोई किसी का ऐसा अन्ट सन्ट कहना कोई बुद्धिमत्ता प्रतीत नहीं होती प्रत्युत जो कुछ प्रतीत होता है उसे सभी जानते

ही हैं जो कि समझ वाला उसे कहना भी उचित नहीं समझता जब इस भर्तृहरि ने राज–साज सब छोटे सहोदरार्पण कर दिये तो अब कुछ कालानन्तर राज्य पदस्थ होने पर विक्रमादित्य ने अपने नाम पर शकों को परास्त कर विक्रमी सम्वत् चलाया था अब जितना है उसे सभी जानते हैं।

—✻—

इस नृपराज भर्तृहरि के वैराग्य होने के कई कारण थे

उनमें से जो हमारी समझ में हैं उन्हों को कहते हैं। प्रथम समय इनका २०५० दो हजार पचास वर्ष से भी ऊपर बैठता है क्योंकि इसी के प्रकरण की टिप्पणी में पूर्व इसके छोटे भ्राता का समय ५७ सतोंजा ईसवी से पूर्व का है क्योंकि प्राचीन भारत का इतिहास कहता है कि सतोंजा सतावन ५७ ईसवी से [1]पूर्व में शकों को परास्त कर उज्जयिनी के विक्रमादित्य ने सम्वत् का प्रवर्तन किया था। इससे यह भी सिद्ध है

टि० १—सतावन ईसवी सन् से जो पूर्व कहा है इससे कई शताब्दियों तक पूर्व समय का ग्रहण हो सकता है, किन्तु वैसे ग्रहण न करके कम से कम ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के प्रथम दिन से ६० वर्ष पूर्व से ले सकते हैं क्योंकि विक्रमादित्य ने जब शकों को परास्त किया होगा तब विक्रमादित्य की आयु कम से कम भी होगी तो पैंतालीस ४५ वर्ष की तो अवश्य ही होनी चाहिए युद्ध ज्ञानार्थ और भर्तृहरि से चौदह पन्द्रह वर्ष छोटी भर्तृहरि की बहन मैनावती थी और मैनावती से भी कई वर्ष छोटा नृप विक्रमादित्य था। इस प्रकार भर्तृहरि का समय विक्रमी सम्वत् के प्रथम दिन से भी पूर्व कम से कम छियासठ वर्ष पूर्व जन्में सिद्ध होते हैं।

कि इस विक्रमादित्य की यह उपाधि नहीं है इस विक्रमादित्य का यह जन्म नाम ही विक्रमादित्य है। यह चन्द्रगुप्त की तरह जन्म के बाद की उपलब्ध उपाधि नहीं हैं। अब विक्रमादित्य भर्तृहरि से छोटे के समय का निश्चय होने से भर्तृहरि विक्रमी सम्वत् के प्रथम दिन से भी ६६ छियासठ वर्ष कम से कम पूर्व में जन्में सिद्ध होते हैं। देखो टिप्पणी में अब नृप भर्तृहरि के नाथ योगी बनने के अनेक कारण है, उनमें से जो हमारे को ज्ञात है, उनको दर्शित करते हैं।

नं० १–प्रथम श्रेणी का वैराग्य

नृप भर्तृहरि की कई रानियां थीं जिनमें से एक पिंगला नाम वाली थी जो रोग से ग्रस्त थी। इसके विषय में एक कथा यह है कि प्राचीन समय में किसी महात्मा को अमरफल (कायकल्प) अर्थात् कुछ समय के लिये जरारोग से मुक्त करने वाली औषधि विशेष रूप फल मिला तो मुनि ने सोचा कि मैं उसे खाकर क्या करूँगा। राजा भर्तृहरि को देता हूँ कि वह निरोग दीर्घजीवी होकर प्रजा का पालन पोषण कर अनेकों को सुख पहुँचावेगा एवं विचार कर मुनि अमरफल राजा के पास लाकर उस फल के गुण वर्णन कर नृप भर्तृहरि को वह फल दे दिया तो राजा ने परम हर्षपूर्वक ग्रहण कर मुनि को सत्कृत किया और बाद में नृप ने मन में यह सोचा कि मैं तो ठीक ठाक हूँ यह फल पिंगला रानी को दूँगा कि वह निरोग जरा मुक्त रहेगी एवं विचार कर राजा ने ले जाकर वही फल रानी पिंगला को दे दिया तथा उसके गुण भी पिंगला को कह सुनाये। तब पिंगला ने सोचा कि मैं तो जैसी हूँ वैसे ही ठीक हूँ यह फल मैं अपने मित्र हाथीवान को दूंगी कि वह इसको खाकर जराव्याधि मुक्त रहेगा एवं

फल हाथीवान को दे दिया और हाथीवान किसी वेश्या से सम्बन्धित था उसने वह फल वेश्या को दे दिया तब वेश्या ने भी हाथीवान से उसके गुण श्रवण करके फल महती प्रसन्नता से ले लिया तब वेश्या ने भी मन में विचार किया कि इस फल से तेरी कौन सी सदा के लिये कंगाली दूर हो जावेगी। तू यह फल महाराज भर्तृ को दे दो तो हो सकता है कि इसके गुण श्रवण करके मुझे अधिक धन देकर के सदा के लिये मेरी कंगाली खत्म कर देवेगा।

इस प्रकार वह फल पुनः नृप भर्तृहरि के पास आया वेश्या ने वह फल राजा के दे दिया। किन्तु इस वेश्या तक फल कहां से आया यह निर्णय एक दूसरे से किसी ने भी नहीं किया था सबने ही फल के गुण श्रवण करके एक दूसरे से लेने की करी और न ही देने वाले ने एक दूसरे को बताया किन्तु वही फल अब पुनः इनाम लेने के लोभ से जब राजा के हाथ में गया तो राजा ने फौरन पहचान लिया कि यह वही फल है जो पिंगला को मैंने दिया था एवं मन में विमृश्य राजा ने वेश्या से अलग होकर पूछा कि सत्य–सत्य कहो कि यह फल तुझे कहां से मिला और तुझे किसने दिया। यदि तुम असत्य बोलोगी तो तुझ पर सख्ती करी जावेगी और फल का भी तुझे कुछ नहीं मिलेगा। वेश्या ने कहा आपके नौकर हाथीवान से मिला हाथीवान को पुनः बुलाकर पूछा ठीक–२ बता तुमने जो फल वेश्या को दिया था वह फल तुम्हें किसने दिया ठीक बता वरना तेरे साथ बहुत सख्ती पेश आवेगी। वेश्या तो उसका पूरा ईनाम पाकर चली गयी। तब नौकर ने कहा कि मुझे महारानी पिंगला ने दिया था और कहा था कि यह फल तुम खालो मुझे अच्छा नहीं प्रतीत होता। तब मेरा भी इसे खाने के लिये मन न माना तो वेश्या को दे दिया था।

तब राजा बीच का सब रहस्य समझ गया कि यह बात पक्की यारी की है। अब से राजा भर्तृहरि का पिंगला से प्रेम उठ गया था और फल को धोकर स्वयं खा लिया। तब राजा जिस–जिस जगह से होकर के वह फल नृप के पास आया वह सब नृपवर जानकर के यह श्लोक कहा कि इस मदन की बड़ी विचित्र लीला है।

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्तन्यजनमिच्छति सजनोऽन्यसक्त:।
अस्मत्कृते च परितुष्यसि काचिदन्या,
धिक्तां च तञ्च मदनञ्च इमां च मां च।।१।।

अर्थ–राजा भर्तृहरि–जिसकी मैं हर समय प्रिय चिन्ता कर रहा वह मेरे से विरक्त और जिसकी वह चाहना करती रही वह उससे विरक्त है और जिसकी वह हाथीवान चिन्ता करता था वह उससे विरक्त है। वही वेश्या मेरे से पुरस्कार पाने की इच्छा से संतुष्ट हो रही है इसलिये मेरी स्त्री, नौकर, वेश्या, मेरे, कामदेव को सबको धिक्कार है। इससे राजा को यह बोध हुआ कि जिसको मैं अपने प्राणों से भी प्रिय समझ रहा था वह मुझमें कितना चाहवान है एवं यह सब पुत्र कलत्रादि मिथ्या ही अपना जाल फांस बना रखा है। इससे नृप भर्तृ को प्रथम श्रेणी का संसार से वैराग्य हुआ।

नं० २–राजा भर्तृहरि के वैराग्य होने में और वृद्धिरूप सहायक होना

उज्जैन के राज्य में किसी भयंकर, वन में गुरु गोरक्षनाथ जी यथेच्छया निवास कर रहे थे। उस महायोगेश्वर समदर्शी दयार्णव के पास

इधर—उधर के अनेक वन्य प्राणी रहा करते थे जो कि उस ब्रह्मज्ञानी के प्रभाव से अपने को निर्भयवासी जानकर रह रहे थे। एक दिन एक कृष्णवरण मृग वन से कुछ दूरी पर भक्ष्य अन्वेषण करता हुआ चला गया तो नीचे को मुख किये अपने किसी खाद्य तृणादि को तोड़ रहा था। इतने में किसी ओर से धनुष बाण धारण किये कुछ साथी कर्मचारियों के साथ अश्वारूढ़ भर्तृहरि भी आ रहे थे। तब नृप ने देखा कि बहुत हृष्ट—पुष्ट मृग चर रहा है। उस पर नृप ने बाण छोड़ा तो मृग में से पार कर गया तब अन्धा बोला हुआ कहीं वन में जा गिरा और और निष्प्राण हो गया। अश्वों से नीचे उतर सनृप शिकारी भी वन में मृग अन्वेषणार्थ जा घुसे। इतने में उसी वन में कोई जगह उनको बहुत दूर तक साफ सुथरी पाई तो उन्होंने सोचा कि यहां कोई रह रहा है तब राजाज्ञा से किसी ने आवाज दी कि 'भो यहां कौन है' किन्तु आगे से जब कोई नहीं बोला तो और आगे बढ़े तो वास और सुन्दर साफ पाया तब पर्वत के पास चले गये कुछ अश्वों को रोके दूर खड़े रहे कुछ मृग के पीछे गए हुए थे। नृप और कर्मचारी क्या देखते हैं कि उस गिरि में अति सुन्दर दो गुहा हैं गिरिपाद में ही एक वन वृक्ष है उसके मूल में सर्वत: एक उच्चस्थण्डिल है अर्थात् गोलाकार उच्चासन है उस पर एक परम दिव्य महायोगेश्वर यतीन्द्र किशोर अवस्थास्थित अवधूत विराजमान हैं जो बेपरवाह (परम स्वतन्त्र) सदा निर्भीक प्रसन्नवदन प्रतीत हो रहे हैं और वन्य प्राणियों से बातें कर समझ रहे हैं। उनकी बातों को सुनकर तथा उन्हों को समझा पुचकार कर दयार्द्रित हो रहे हैं वन्यों पर एक ओर से एक कामधेनु सन्निभ धेनु भ्रमण करती हुई वही दिव्यदेव के आसन के पास जाकर नीचे ग्रीवा यतिवर के चरण सूंघकर गुफा में जा विराजी। यथेच्छया दुग्धकरणार्थ सामर्थ्यवती थी

इतने में गुरुदेव के विहरण स्थल में से होता हुआ एक मध्यम वायु वेग का समुदाय जो विहार स्थल में धूली तृणतिनकों को वन की ओर सुदुर ले गया यह कौतुक देखकर सनृप कर्मचारी यह चर्चा कर रहे हैं कि यहां के अखिल कार्य भी देवता लोग ही कर रहे हों ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि कामधेनु ही पेय पयस (क्षीर) देने को आ रही प्रतीत होती है और पवन ही सफाई कर गया है एक ओर कहीं ओट में यह सब कौतुक देखकर मिथ: कह रहे हैं कि यह नि:शंक, नि:कलंक, निर्भय, निस्प्रयोजन पर प्रभाव शून्य सबको स्वप्रभावाधिकार के अधिकरण में करने वाले प्रतीत होते हैं यह जानकर पुरोवर्ती नृप सहित कर्मचारियों ने उस परम सदाशिव रूप गोरक्षनाथ जी के पादपद्मों पर अपने—२ क्रमवार नत मस्तक अर्पण किये फिर उनके किये इङ्गित पर सभी बैठ गये। अब योगेश्वर के पूछने पर अपना—२ परिचय देने लगे जो मृग के पीछे गये हुए थे वे भी मृत मृग को वहीं लिये आ रहे थे जहाँ पर उनको अपने साथी बैठे हुए दीखे तब उनमें से किसी ने योगेश्वर की दृष्टि बचाकर कहा कि इस मृत पिंड को यहां न लाओ दूर से ले जाकर उसको वहीं रखकर ठहरो तो हम भी नृप के साथ आ रहे हैं किन्तु पापी का पाप कभी परमेश्वर से गुप्त नहीं रह सकता अर्थात् श्री नाथ जी ने मृत मृग को भी देख लिया तो उनके चोरी चातूर्य को भी समझ गये।

श्री योगेश्वर गोरक्षनाथ जी का मृत मृग को जीवित करना

जब योगेश्वर ने उन्हें दूर—२ ही मृत मृग को लिये जाते देखा तो उनके क्रुद्ध हुये नेत्रों से इस प्रकार की ज्योति निकली कि यथा

श्री गोरक्षनाथ जी द्वारा मृत मृग जीवन दान से भर्तृहरि को मध्यम श्रेणी का वैराग्य होना

वडवानलरूपी महाप्रलयकालिक द्वादश प्रचण्ड मार्तण्डरूपी महाकालानल रुद्रदेव का तृतीय नेत्र खुलने को हो? एवं कुपित हुए महायोगेश्वर ने कहा—अरे दुष्टों! यह पाशविकता कुकृत्यता तुम्हारी है क्या? बोलो? तुम्हारे सहित उन दुष्टों को तुम्हारी प्रसन्नता का स्वाद चखावें जिससे तुम्हारी समझ में आ जावे कि इस संसार में रहने तथा जीने के अधिकार का प्रमाण पत्र तुम्हारे को ही मिला है क्या? रे स्वार्थियों दु:खदायकों व्यर्थो बोलो? यह सुनकर अतित्रस्त हुए सनृप सब जहां तहां स्थितों ने हाथ बांधकर नतमस्तक हुए बोले हे प्रभो! हम पापियों की क्षति को क्षमा कर दो! और इस मृत पिण्ड को जीवित कर दो भविष्यत् में पुन: न होगा। हे परमेश्वर! हम लोग पशु ठहरे आप सर्व समर्थ पशुपति हो? क्षमा कर दो! नृप के स्वलप श्रद्धा सहित इनमें निहित परीक्षा वचन सुनकर योगेश्वर—अच्छा तो क्या तुम लोग चतुर बनते हो? स्वल्पश्रद्धामिश्रित परीक्षा वचन बोलते हो मैं चाहता हूँ कि बच जाओ? नृप सहित—प्रभो? क्षमा करो! हम आपकी आज्ञा बिना श्वास भी नहीं ले सकते जो हो गया सो हो गया। हमारी क्या शक्ति है जो हम आप अगाधार्णव की गम्भीरता का पता लगा सकें। हमारी गलती को ठीक करना या न करना यह सब भी आपकी ही इच्छा पर निर्भर है। कुछ सोचकर योगेश्वर—अरे? अच्छा जाओ उस मृत मृग पिण्ड को यहाँ उठा लाओ? तब उन्हों के लाने पर योगेश्वर ने स्वल्प जल पर संजीवनी विद्या पढ़कर स्वात्मा का ही ध्यान (संयम) कर वह मन्त्रित जल का छींटा मृत मृग पर फैंका तो पड़ते ही जैसे निद्रा में पड़ा हुआ त्रस्त होकर उठा हो, इस प्रकार अकस्मात् उठ करके मालिक को देखकर निर्भय हुआ। उसके चरणों को सूंघकर उनके पास ही विराजमान हो गया और उनको अपना आश्रय जान करके परम

प्रसन्न करुणादीन दृष्टि से उनकी ओर देख रहा था। वह मृग मृत्यु से पूर्व भी और प्राणियों के साथ वहीं रहता हुआ अपने आश्रयदाता योगेश्वर को पहचानता था। मृग का पुर्नजीवन देखकर नृप भर्तृहरि पर श्री गोरक्षनाथ का बहुत प्रभाव पड़ा तथा राजपुरुषों को भी अति आश्चर्य हुआ। नृप भर्तृ मन ही मन में विचार करता है कि मैं अपने राज्य को शक्तिशाली समझता हूँ किन्तु मेरी शक्ति इस योगेश्वर परमेश्वर की शक्ति के समक्ष राई पर्वत की समानता करना है। इस दृश्य को देखकर नृप भर्तृहरि वैराग्य की मध्यम कक्षा में जा पहुँचा अर्थात् मध्यम श्रेणी का वैराग्य हो गया था। अपने मन में विचारता है कि सांसारिक शक्तियों में व्यर्थ ही आशक्तियां हैं यह राज्यादि शक्तियां स्वयं राजा को जीवित नहीं रख सकती हैं अन्य मृतकों को ये क्या बचावेंगी तथा जीवित रखेंगी। अब इस महाशक्ति सम्पन्न से दीक्षा के लिये परिचय करना आवश्यक है। इससे अन्य शक्तियां सब तुच्छ हैं, अभी यह रजोगुणाधिक वैराग्य था आगे तीसरा कारण कहते हैं।

नृप भर्तृहरि के वैराग्य होने का महाकारण यह है कि चिता में मृतदग्ध भानुमती को पुनः चिताभस्म में से गुरु गोरक्षनाथ द्वारा जीवित करना

किसी व्यक्ति के मनोभावों की असत्यता सत्यता का उस व्यक्ति के समयानुकूल कार्यान्वित हुए बिना निश्चय केवल उसकी बातें सुनने से नहीं हो सकता यथा किसी ने कहा कि राह पड़े जानियें या वाह पड़े जानियें अर्थात् जब उससे कोई सम्बन्ध या प्रयोजन हो तो उसकी

अच्छाई–बुराई का प्रमाण स्वयं ही मिल जाता है राजा भर्तृहरि अपनी रानी पिंगला को जिसे अपने में अत्यन्त आशक्त प्रिय श्रेष्ठ जानता मानता था वह अधम से भी अधमतम सिद्ध हुई और जिस रानी भानुमती को साधारण जानता था वह परमोत्तमतमों से भी परमोत्तमतम सिद्ध हुई। यह महापतिव्रता सती साध्वी मैदान में सिद्ध निकली।

महाराज भर्तृहरि के खानदानी पुरोहित के हस्तलिखित श्री भर्तृहरि निर्वेदनाटक से कुछ सारांश दिखाते हैं

एक समय भर्तृहरि और उसकी रानी दोनों रनिवास की ऊपर की मंजिल में बैठे–बैठे मनोरञ्जन की बातें कर रहे थे तो इतने में एक स्त्री का पति जो मर चुका था उसे उसकी बिरादरी के तथा रिस्तेदार पारिवारिकजन उसके शव को श्मशान में दाहार्थ लिये जा रहे थे। मृत की पत्नी भी पीछे–२ रुदन करती हुई पति की चिता में बैठ सती होने के लिये जा रही थी जो बहुत विलाप करती हुई मुख कपोलों तथा वक्षस्थल का ताड़न कर उठती गिरती हुई जा रही थी तो दोनों राजा–रानी इस कौतुक को गवक्षों से देख रहे थे और दोनों ही सोच में हो गये तब नृप भर्तृ बोला कि धन्य है तथा विशाल है इसका हौसला (धैर्य) जो अपने पति के साथ जीते जीव उसके शव के साथ चिता में दग्ध हो जावेगी। राजा की यह वार्ता सुनकर रानी भानुमती से जब न रहा गया तो बोली कि हे आर्य पुत्र! क्या यही देखकर आपने धन्य–धन्य की ध्वनि लगा रखी है। राजा–तो क्या यह कार्य करना कोई सबके वश का और सुकर ही है? भानुमती अपने सच्चे प्रेम तथा साहस के बल पर बोल उठी कि

यह सती होना क्या है? वास्तविक सती होना तो पीछे रह गया है उसका समय तो निकल गया अब तो वेवशी या लोक दिखावा है। राजा—पीछे कहाँ रह गया? और कौन सा समय निकल गया है? भानुमति—जब इसको पति का मरन ज्ञात हो चुका था तो तत्क्षण विरह शोकानलरूप में प्राणविरहवती हो जाती। तो अब चिता में भी जलने की दोनों की साम्यावस्था हो जाती अब चिता में एक शव ओर एक जीवित जल रहे होंगे यह विषमावस्था हो गयी सच्ची पतिव्रता तो ऐसी होती है यह सती होना तो पराधीनता से है। राजा ने मन ही मन में सोचा कि इसका यह कथन कुछ सत्य भी है क्या? कि कहीं पिंगला वाला ड्रामा है? राजा मन ही मन में अच्छा तो इसके इस कथन का परीक्षण करेंगे। ऐसा विचार कर नृप पुन: अन्य बातों में व्यस्त हो गया। अधिक समय के बाद नृप भर्तृहरि भानुमती के पूर्व सती होने के वचन को अपने मन में परीक्षण के विचार को रखकर पुन: जब रात्रि के शयनकाल में मनोरंजन में होकर रानी भानुमती से कहते हैं कल मैंने कुछ कर्मचारी साथ लेकर शेर के शिकार को जाना है मैं शीघ्र ही वापिस लौट आऊँगा। रानी—कब तक लौटेंगे? दो याम दिन के व्यतीत होने से पूर्व ही एवं कहकर दो तीन पुलिस कर्मचारी साथ लेकर अश्व पर आरुह्य बाहर कहीं दूर जाकर अन्दाजन दो याम दिन से भी ऊपर व्यतीत होने पर राजा ने अपने साथ गये एक राजपुरुष से बनावटी बात बनाकर कहा कि तुम अपना ऐसा समाचार बनाकर जाओ तो सीधे रनिवास में ही चले जाना और वहाँ रानी भानुमती को कह देना कि नृप को शेर का शिकार करते को टकराव में शेर ने ही मार डाला है एवं जाकर उसे कहो कि जो उसे सही लगे।

इधर स राजपुरुष जा रहा है और उधर जब से राजा रनिवास से निकलकर शिकार के लिये गया था तो तभी से भानुमती बाहर द्वार के भीतरी स्तम्भ के सहारे अन्य लोगों से ओट लिये हुए पति की वापिसी की प्रतीक्षा कर रही थी। इतने में राजपुरुष मन्द रुदनयुक्त नेत्रों में आंसू भरे हुए तथा धूली धूसरित हुआ वहाँ आ पहुँचा जहाँ द्वार स्तम्भ के सहारे खड़ी हुई रानी भानुमती पति की प्रतीक्षा कर रही थी। सिपाही ने रोना शुरु कर दिया तो रानी ने पूछा–क्या हुआ? सिपाही–मर गया। रानी भानुमती–कौन मरा? सिपाही–महाराज भर्तृहरि। यह आवाज कान में पड़ते ही सती–साध्वी भानुमती दो प्रहर से पति प्रतीक्षा में बाहर द्वार स्तम्भ के सहारे लगी खड़ी हुई थी उसके विरह शोकानल में सुनते ही प्राणदग्ध हो गये अर्थात् शरीर से प्राण पखेरु हो गये तो उसका शव भूमि पर गिर गया। जब रानी की यह दशा राजपुरुष ने देखी तो तत्क्षण ही चिल्ला कर बोला कि मैं झूठ बोल रहा हूँ एवं तीन बार उसने कहा किन्तु उस सती ने एक बार भी यह वाक्य नहीं सुना वह तो इतना ही सुनकर के प्रस्थान कर गयी थी कि महाराज मरा। आगे किसने मारा कैसे मरा यह सब कुछ समीक्षण का उसे समय ही नहीं मिल सका। राजपुरुष जो झूठे मरने का सन्देश लेकर के आया था। अब डर के मारे वही राजपुरुष पुन: वन की ओर राजा को रानी के मरने का सच्चा सन्देश लेकर वापिस जा रहा है। उधर राजा भी वन से लौट रहा है राजा को विविध अमंगल दीखने सुनने लगे शृगालों के रोने उल्लुओं व कौवों के बोलने के इत्यादि लौटते हुए राजा को कुसगन हो रहे थे और अपने मन में कोई क्षति हुई या होने वाली है मन में विचार करता हुआ चला आ रहा था तो नगर के बाहर ही राजा और राजपुरुष का मेल हो गया।

राजा को भानुमती के मरने का समाचार मिलना

राजपुरुष को हतप्रभ परमोदासीन देख राजा बोला कि जल्दी कहो! क्या हुआ? राजपुरुष–जी उसने तो केवल इतना ही सुना कि महाराज मर गया उसकी दयनीय दशा देखकर मैं चिल्लाने लग गया कि मैं झूठ बोल रहा हूँ तीन बार मैंने इस वाक्य की पुनरावृत्ति की किन्तु उसने एक बार भी नहीं सुनी केवल आपका मरना ही कान में पड़ना सुना था तत्क्षण ही शरीर से प्राण गमन कर गये। मैंने तो उसका समाचार देख तत्क्षण झूठ कहता हूँ कहना शुरु कर दिया किन्तु सती ने मरनें के लिये एक पलक झपकने का भी समय नहीं लिया इतनी जल्दी चली गयी। अब राजा भर्तृहरि हाल बेहाल हुआ अपने को धिक्कारता है कि जो मेरा झूठा मरना सुनकर मर गयी। मरने वाली ने क्षण भी नहीं लगने दिया तो मैं उसका सच्चा मरना सुनकर भी नहीं मर रहा हूँ मुझे पौन:पुन्य धिक्कार है। जब पुरवासियों ने एवं परिवार के और कर्मचारियों ने महारानी की मृत्यु तथा तथा राजा का बुरा हाल देखा सुना तो सभी दु:ख और अचम्भे में पड़ गये जब रानी की अर्थी को लेकर मन्त्री आदि पारिवारिक जन श्मशान की ओर चलते हैं तो राजा उन्हें ले जाने के लिये रोकता है उन्मत्त हुआ परिवारजनों, कर्मचारियों को कहता है कि तुम हमारे दुश्मन हो जो मेरी प्राण–प्रिया को जलाना चाहते हो। तब लोगों और कर्मचारियों ने राजा को कहीं एक ओर करके चिता को अग्नि दे दी। कुछ देर में नृप भी ऊँचा–२ विलापता हुआ वहीं जा पहुँचा चिता की ओर चक्कर

काटता हुआ उसके शव को देखना चाहता है किन्तु जब शव दग्ध हो गया तो सभी लोग नगर को लौटे तो नृप को भी नाती तथा कर्मचारी लोग नगर को ले गये फिर कुछ ही देर बाद राजा श्मशान में चला जाता है। पागल सा हुआ कभी बैठता उठता विलाप करता है। श्री गोरक्षनाथ जी ने जिस वन में जहाँ पहले मृत मृग को जीवन दान दिया था वहीं तीर्थाटन करते हुए आकर ठहरे हुए थे और वर्तमान भर्तृहरि के समाचार को जानी जान, जान ही रहे थे। दयार्णव को विचार आया कि पूर्व इसको मृग वृत्त में जो समझाया था पुन: तब से इसने कोई ऐसा कुकृत्य नहीं किया इसलिये इसका महाभाग्योदय धर्मात्मा को हो रहा प्रतीत होता है। इसके बोधनार्थ यह और हेतु आ गया है प्रथम तो इसकी भानुमती इसको देकर राज्य में ही प्रेरित करेंगे। इस प्रकार योगेश्वर उसके सन्दर्भ में विचार रहे थे तो इतने में मन्त्री तिलकराज जो मृत मृग के जीवन काल में राजा के साथ था उसे विचार आया कि मैं उसी महात्मा से राजा के बोधार्थ प्रार्थना करता हूँ यदि वे आकर कृपा कर देवें तो उनकी महान कृपा होगी। अपने ही मन से विचार कर अश्व पर आरुढ़ होकर अतिशीघ्रता से वहाँ पहुँचा जहाँ अन्तर्यामी पूर्व ही उस नृप के विषय में विचार रहे थे। तब मन्त्री अश्व को पीछे ही बांधकर के तो योगेश्वर को विराजमान देख प्रणाम कर दोनों हाथ बांध राजा का सर्व समाचार निवेदन कर दिया कि हे योगेश्वर! उसे किसी भी प्रकार से सुबोध में लाओ! जिससे उसका मोह अज्ञान दूर होवे। तब गुरु गोरक्षनाथ जी ने कहा कि तुम जाओ हमारे वहाँ आने न आने का किसी से भी कुछ नहीं कहना हम तेरे कहने से पूर्व ही उसके सम्बन्ध में कुछ करने को तत्पर हो रहे हैं। वह जिधर जाता है जाने दो!

जो करता है करने दो! तुम निश्चिन्त होकर जाओ अपना काम देखो! नृप भर्तृ को विरह शोक विह्वल देखकर दया ज्ञानबलार्णव परोपकार विग्रहरूप श्री गोरक्षनाथ जी वहाँ आ गये जहाँ शोक मोहान्धकार श्मशान भूमि में विभ्रान्त हुआ नृप भ्रमण कर रहा था। कुछ दूरी पर आकर ठहर गये तब रात्रि का समय हो गया था और योगेश्वर ने नृप परिचित पूर्व शरीर को संकल्पमात्र से क्षण में ही परिवर्तन कर लिया। वसन्तर्तु की चौदश की चान्दनी निशा थी अपनी खर्परी को तोड़कर ऊँचे शब्द से तीन बार अलख–लख–अलख कहकर कुछ क्षण मौन हो गये। तब राजा जिस ओर से आवाज आई थी उधर को बढ़ा तो पास ही में पुनः अलख–लख–अलख की तीन बार आवाज हुई तो एक झाड़ की स्वल्प ओट में खड़ा हो शब्द करने वाले को देखना चाहता है कि इस प्रकार अलख शब्द का जाप सिद्धयोगी–महात्मा पुरुष किया करते हैं। यदि यह महात्मा हुए तो हो सकता है कि उन्हें अपना दुःख शोक निवेदन करने से मेरे दुःख का भी कुछ अपहरण कर दें अपने मानसिक विचार बनाये उन्हें देखना चाहता है तब योगेश्वर–सत्य ही है कि जो बना है वह नष्ट होना अवश्यंभावी है जो आया है उसे जाना भी है यह अकाट्य (अच्छेद्य) न्याय और निश्चय है। किन्तु कालान्तर हो जाना अलग वार्ता है यावन्नामरूप दृश्यमान है यह गमनागमन का चक्र है यदि यह टूट गई है तो टूट जावे जब चक्र ही यातायात का है तो पुनः चिन्ता किस बात की हो? राजा भर्तृहरि–यह कोई प्रभावहीन (बेपरवाह) निःस्पृही पूर्ण ब्रह्मज्ञानी प्रतीत होता है। न जाने यह किसे बोधित कर रहा है जिसका

बोधरूप लाभ मुझे हो रहा है क्योंकि इनके स्पष्ट दर्शन न होने पर भी मेरा आधा शोक–मोहान्धकार मानसिक नष्ट हो चुका है। इनके प्रत्यक्षतया दर्शनों के लिये तथा इनसे उपदेशामृतपान करने के लिये मेरा विचार बन चुका है कि जो अब से पूर्व विरहशोक–मोहान्धकार द्वारा मेरी दु:खपूर्ण दीन दशा थी इनके प्रत्यक्ष दर्शन करने पर वह कभी स्वप्न में भी न रहेगी। योगीश–अलख का यही तो नियम (नेम=कानून) है तथा क्रीडा है कि प्रकृति के क्रीड़न बनाना और ढ़ाना इस विषय में जो शोक–रोष करना दोष देखना समझना तो उस अखिलनाम रूपात्मक तथा नाम रूपातीत महासम्राट के नियम को भंग करना ही है नियम भङ्गी को फिर दण्ड भी अवश्यंभावी ही है तो फिर दु:ख या कोई क्षति होने पर रोना किस बात का अर्थात् व्यर्थ है। जिसकी कोई कहीं भी सुनवाई नहीं कर सकता है क्योंकि कर्म किये का फल तो करने वाले को ही चखना है अत: यह किसी सूझबूझ वाले प्राणी न्यायाधीश का बना नियम और किया फैसला नहीं है कि करे कोई भरे (भुगते) कोई। राजा–मन ही मन में पूर्ण सत्य ही है कि जान–बूझकर मैंने ही किया तो मैं ही दु:ख शोक मोहान्धकार रूप जाल में छटपटा रहा हूँ। योगेश्वर–क्या आश्चर्य है कि चन्द्रमा की चान्दनी से भी यह किसी एक का मोह–शोकान्धकार दूर नहीं हो रहा है। राजा–यह प्रश्न–तो ऐसे लगता है कि जैसे साक्षात् मेरी ही ओर से उपस्थित हो रहा हो! एवं मन ही मन में विमृश्य। योगेश्वर–वाह–वाह क्या कहना है एक चन्द्र की चन्द्रिका से शोक मोहान्धकार का नाश कर रहे हो? कि ब्रह्माण्ड को ही अपने फूत्कार से उड़ा रहे हो। जो कोटि

प्रचण्डमार्तण्डोदय से भी प्रगाढतम ही रहता है उसे एक चन्द्र की चन्द्रिका से उठा रहे हो! जो वस्तु गयी सो जावे शोक–मोह किस बात का। किन्तु फिर भी यह शोक–मोहान्धकार अपने दुःखरूपी जाल में बड़ों–बड़ों को जकड़कर विद्वानों ज्ञानियों पर भी आक्रमण कर देता है। राजा–सब वाक्यों को मन ही मन में सत्यता की हुँकार भरता हुआ विचारमग्न। योगेश्वर–यही तो प्रकृति अविद्या का खेल है जिसका समयान्तर में ही फेल है। राजा–समक्ष होकर के प्रणाम कर। हे महातीब्रह्वत्तिमरहर! महासिद्ध साधो! महाराज! आप किसको उपदिष्ट कर रहे हो! योगेश्वर तुम कौन हो? तेरा पूछने का क्या प्रयोजन है? राजा–महाराज! मैं हूँ राजा इस देश का भर्तृहरि। योगेश्वर–सब कुछ जानते हुए जाओ अपना काम देखो राजा हो तो फिर क्या हो? राजा–कुछ त्रस्त होकर पुनः सोचकर हे देवाधिदेव प्रभो! मैं राज्य में जहाँ तक मेरे वश की बात है मैं किसी को पदार्थ कृत त्रुटि व दुःख नहीं होने देता हूँ क्योंकि आपने पीछे कहा था कि यदि टूट गयी है तो टूट जावे। आप कृपा कर मुझ पर वह सेवा दो जो टूटा या क्षतिग्रस्त हुआ हो! यह देव के समक्ष मेरी कर जोड़ प्रार्थना है। आपकी यदि कोई यहाँ क्षति हुई तो उसका दोषी मैं ही ठहरूँगा अतएव मैं बारम्बार आपसे पूछने की धृष्टता कर रहा हूँ मेरी धृष्टता की दास पर क्षमा हो! महायोगेश्वर–अरे अच्छा तो यह मेरी खर्परी (खप्परी) टूट गयी थी और जानकर इसकी मजबूती परीक्षणार्थ मैंने इसको कठिन भूमि पर पटक कर जमाया तो यह सब बिखर गयी अब मैं अपने मन को समझा रहा था जो बना है उसको एक दिन टूटना है यह मन बुद्धि का झगड़ा चल रहा था।

राजा ने सेवा मांगी हठ कर पुनः करने में असमर्थता

राजा—हे देव! मैंने तो सोचा कि न जाने कितना बड़ा आपका नुकसान हो गया कि विचार करते—२ जो आप इतनी गहराई में चले गये थे। ये तो जितनी भी कहो मैं दे सकता हूँ यदि स्वर्णरजत की इसी आकार की कहो तो तैयार करवा देता हूँ यह कौन सी पैदा करनी असम्भव है। योगेश्वर—अरे वीर! मुझे रजत स्वर्ण की बनी हुई या इसी ही जाति विशेष से बनी हुई और से मुझे आवश्यकता नहीं है। मेरा तो इसी के साथ प्रेम था जिसने मुझे इतना सुख दिया इसी में पाकर हम खाते—पीते थे और शेष वस्तु को इसमें पाकर रख लेते थे और सोते समय इसकी ही तकिया उलट कर बना लेते थे इसलिये इसी को यथा पूर्व थी वैसी ही बना दो। राजा भर्तृ—हे योगेश्वर! यह वैसी नहीं बन सकती और इसी के साथ की आ सकती है। अरे इसीलिये मैं तुझे पूर्व ही कहा था कि जाओ अपना काम देखो तो तुमने बार—२ हठ करके सेवा माँगी तो यह छोटी सी सेवा तेरे से नहीं बन पाई और बड़ी तुम क्या करोगे। केवल सूखे ही कि मैं इस देश का राजा हूँ इस अभिमान से भरपूर चूर हो! राजा—हे प्रभो! क्षमा करो यह भी त्रुटि (गलती) हुई है। महायोगेश्वर—अच्छा तो राजन्! तुमने रात्रि के समय श्मशानों में क्यों रुदन कोलाहल मचा रखा था। किसी भूत—प्रेत, पिचाश आदि से डर लगा है कि उनकी कोई सिद्धि कर रहे हो! तुम राजा लोगों का इतनी निशा गत होने पर भी जो श्मशान में हो बोलो क्या रहस्य है? राजा—ह योगेश्वर मेरी आपत्ति का समाधान

होना सर्वदा असम्भव है। यदि कोई किञ्चित् भी उसके सिद्ध होने की सम्भावना होती तो बताने का भी मैं कुछ साहस करता किन्तु अब तो मेरी विपत् का किसी से निवृत्त होना सम्भव नहीं है। योगेश्वर–सब कुछ जानते हुए भी क्या किसी बलवान नृप की क्रूर दृष्टि है? व आक्रमण की शंका है? राजा–हे योगेश्वर! आप सब कुछ जानते हो किन्तु पुनः मुझसे कहाना चाहते हो। मेरी रानी जो भानुमती थी उसके प्रेम आसक्ति का अपने में अन्दाजा लगाने के लिये मैंने उससे कहा कि मैं शेर का शिकार करने जा रहा हूँ और मैंने दो–तीन कर्मचारी साथ लेकर कुछ दूरी पर भ्रमण करते रहे तो दो याम दिन बीतने पर मैंने एक नौकर को कहा जो मेरे साथ ही था कि जाकर मेरी अमुक रानी को कह दो कि शेर का शिकार करते हुए राजा को शेर ने मार दिया है तो जब उसने आकर उससे कहा तो वह सुनते ही तत्क्षण अपने शरीर को तृणवत् छोड़कर कहाँ चली गयी। मुझे महादुःख इस बात का है कि जो मेरा झूठा मरन श्रवण कर चली गयी है तो मैं उसका सच्चा मरन सुनकर भी नहीं मरा। अभी जी रहा हूँ और बेदोषी को मार मैं महापापी बना हूँ यह सब वृत्त है और अब मैं कहुँ कि मेरी रानी को मुझे दे दो जैसी थी वैसी ही बना दो तो यह कहना केवल अनुचित ही नहीं होगा साथ ही असम्भव और मेरी मन्दबुद्धि का भी परिचय होगा क्योंकि अब यह सबसे ही सर्वदा असम्भव (न होनी) है क्योंकि बात वही करनी चाहिये जो योग्य हो।

—❊—

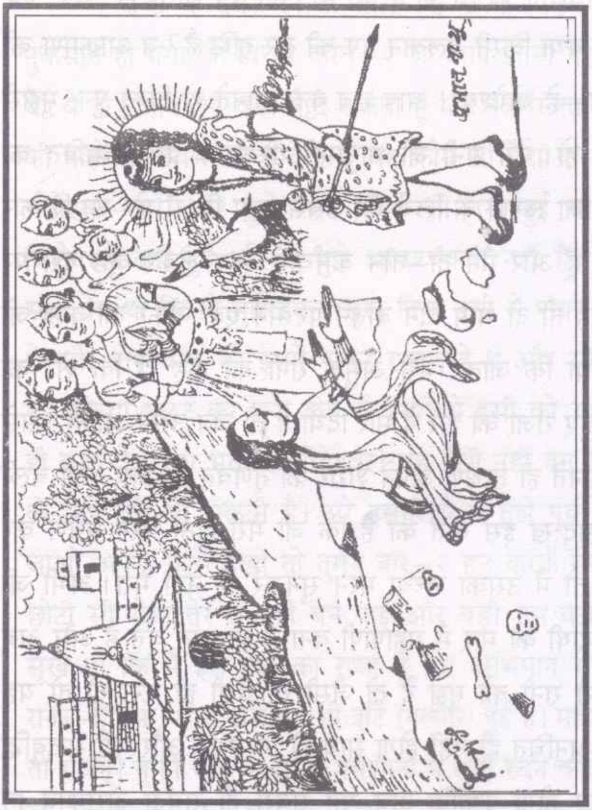

श्री गोरक्षनाथ जी ने चिता में भस्मीभूता हुई भानुमती को पुनः
जीवित कर भर्तृहरि को एक से अनेक दिखाना

नृप भर्तृहरि की मृत रानी भानुमती चिता में दग्ध हुई को पुनः उज्जीवित कर देना

महायोगेश्वर परमेश्वर तो क्या तुम को भानुमती चाहिये बोलो! राजा–बस प्रभो! मैं किसी को या आपको असम्भव बात करने को कहकर किसी को झूठा करना नहीं चाहता हूँ। योगेश्वर–अरे तू अधिक न्यायकारक (कानून पालक) न बन जो हम तुझ से पूछ रहे हैं उसे कहो तू सृष्टिक्रम की बातें दनाई की मुझे अधिक न बता क्योंकि मैं तेरी दनाई और न्याय को जानता हूँ कि जैसा तुमने अपनी भानुमती पर दनाई और इन्साफ किया है वैसे ही औरों पर भी करते होंगे। राजा–हे प्रभो! ऐसी न होनी बातें कहने या कहाने से कहीं चन्द्र, सूर्यादि ग्रह गण ऊपर से गिरकर कहीं हम सबकी तबाही न कर देवें। कहीं समस्त आकाश को ज्वाला न जला देवे? कहीं स्काई की कोई सफाई न कर देवे। कहीं आकाश का अवकाश बन्द न हो जावे? समुद्र को कोई जला न देवे? कहीं वायु को कोई उड़ा न लेवे? कहीं समस्त ज्वाला को कोई खा न जावे? इत्यादि बातों में मैं उन्मत हुआ कदाचित् मान सकता हूँ क्योंकि इन सब पदार्थों का अपनी–२ जगह पर इनका अस्तित्व है इसलिये किन्तु भानुमती का तो अब नामो–निशान का ही सर्वथा अभाव हो गया है। उसको मैं किसकी वाणी से कह दूँ। कोई किसी भी वाणी यह कहने का सामर्थ्य नहीं रख सकती की भानुमती दे दो! व जीवित कर दो! और मेरी वाणी तो मुझे किसी भी दशा में उक्त बात कहने में असमर्थ कर रही है एवं निरर्थक कहने कहाने से क्या लाभ हो सकता है? महायोगेश्वर–अरे

तेरा कहने में क्या लगता है? जो तेरा लगेगा वह भी मैं लगा दूंगा! भर्तृहरि–हे योगीश! यदि अभावी भाव्य हो जावे तो पुन: अभावी को अस्तित्व क्या हुआ? अर्थात् न होनी ही होनी हो जावे तो पुन: न होनहार क्या वस्तु होगी? एवं यदि भावी ही अभाव्य हो जावे या हो सकती हो? तो फिर अवश्यंभावी क्या वस्तु होगी? ये सब बातें मैं उल्ट कहना अपनी कोई बड़ी समझ या बढ़ाई नहीं समझता हूँ। मुझ पर कृपा करके मुझसे कहाने के लिये मुझे विवश न करो! और जो आप श्रीमान ने मुझसे वही टूटी खप्परी को ही पुन: वैसी ही बनाने को कहा था। मैं उस अड़चन के प्रतिकार में कि आप भी मेरी भानुमती को वैसी ही बना दो यथा वह पूर्व थी मरने से इन बातों से प्रतिकार करना मैं आपसे नहीं चाहता हूँ क्योंकि जो कोई इस संसार की अवस्था त्रयकर्ता है उससे भी यह कार्य (पुन: भानुमती वैसी ही करके) मुझे दे देना असम्भव है अत: मैं आपको न होने वाले कार्य करने के लिये कहकर लज्जित करना नहीं चाहता हूँ क्योंकि आप मेरे लिये आदरणीय माननीय हो। आपके दर्शन और आपके अमृतरूपी पूर्व वाक्यों से ही मेरा विरहशोक–मोहान्धकार बहुत नष्ट हो गया है। मैं अधिक न होनी बात का लोभ न कर इतने में ही आपकी कृपा प्रसाद से सन्तुष्ट हूँ क्योंकि यदि उसका शव या कोई शेष अंग होता तो मुझसे भी श्रीमान के बारम्बार कहने से सम्भवत: कुछ कहा जाता और अब तो उस महासती साध्वी की पूर्णतम निराशा ही कह सकता हूँ। महायोगेश्वर–मैं सब कुछ समझ रहा हूँ नैयायिक (कानूनी) बातें बना रहे हो क्योंकि अतिशङ्कित, अतिचतुर विपुल यौक्तिक बाज का यही समाचार कभी हुआ करता है जिसका कि तुम अब अनुभव कर रहे हो? क्योंकि शुष्क नुकता चीनियों से कि यह सृष्टिक्रमानुकूल यह प्रतिकूल है इत्यादि

वाग जालमात्र से कुछ सिद्ध (हल) नहीं होता जब तक क्रियान्वित की कसौटी पर न घिसा जावे। न्याय परतन्त्रतार्थ होते हैं सर्वस्वतन्त्र के लिये कोई भी न्याय नहीं है। वे सर्वन्यायों का जनक है जब चाहे तोड़ दे जब चाहे जोड़ दे नियम (न्याय कानून) का परिवर्तन कर दे। मूर्ख का हठ भी पक्का होता है किसी ने गर्मी से व्याकुल मूर्ख से कहा भैया छाया में हो जाओ! तो मूर्ख बोला कि मुझे छाया में होने का क्या दोगे? बस इस बात से तुम ठीक तुलित हो। यह आखिर कथन है तुम्हें उसकी चाहना है तो कहो? आगे उसे रखना या न रखना वह तेरी इच्छा है। भर्तृहरि–यदि ऐसा हो सकता है तो कृपा कर दो।

भर्तृहरि से कहलवाकर मृतदग्ध भस्मीभूत हुई भानुमती को पहले की तरह ही श्री गोरक्षनाथ जी ने बनाना

महायोगेश्वर–जो आप स्वयं अलख स्वरूप ही हैं। उन्होंने अपने कमण्डलु में से किसी लघुपात्र में थोड़ा जल पाकर उस पर संजीवनी विद्या को पढ़कर मन्त्रित जल दक्षिण कर में ले "ओ३म अलख" इस मन्त्र को पाँच बार उच्चारण करके जल को चिता के भस्मी ढेर में फेंक दिया तो पुन: यह शब्द उच्चारण किया कि "भवन्तु एकाया अनेका:" अर्थात् एक से अनेक हो जाओ। इसके बाद चिताभस्मी में से यथा कोई लेटी हुई उठ–२ कर बाहर होती गयी हों अनेकों भानुमती वहाँ एकत्रित हो गयी थी जिन्हों में भूतपूर्व जीवित भानुमती से शरीर रंगरूप वस्त्राभूषणों में राजिका (राई) भर भी न्यूनाधिक्य न था सब एक सदृशी

थी। वाणी भी मधुर– सुन्दरतादृशी ही थी यह देखकर नृपवर भर्तृ के तौर–पौर भ्रमित हो गये अब भर्तृ की प्रेमोल्लास से ठीक वही अवस्था हो गयी जो अर्जुन की विश्वरूप के दर्शन करके हो गयी थी। उस समय में श्मशान घाट का सब पंडाल उन्हीं परम सुन्दरियों से भरा तथा घिरा हुआ था जो उस समय में श्मशान घाट न रहकर महायोगेश्वर गुरु गोरक्षनाथ जी की महायोगमाया से तथा उनकी दक्षिणकर की अनामिका परिमाण परिमित कठिनी के इंगन से परम दिव्य अमरपुर बन गया था। जहाँ एक ओर दिवि दिव्य आसनों पर भानुमतियों के समुदाय समाहित हो रहे हैं। एक ओर महासुन्दरियों रम्भा मेनकादियों के नृत्यगान हो रहे हैं जहाँ किन्नर गन्धर्व दिव्य साजों--बाजों के तालों में ताल दे रहे हैं। कुछ ही देर में महायोगेश्वर गोरक्षनाथ जी ने नृप की दृष्टि से पूर्व दृश्य को तिरोहित करके अब तपोलोक का उत्तार भर्तृहरि के दृग्गोचर कर दिया। जहाँ महातेजस्वी तपस्वी योगीराज महासिद्धराज आदि विराजमान हैं जो नया ब्रह्माण्ड रचने में सामर्थ्यवान हैं कोई समाधिस्थ हैं कोई घोर तप में संतप्त हो रहे हैं। कई ओर से महातापस अन्य लोकों से जाकर वहाँ प्रविष्ट हो रहे थे इस दृश्य को देखते हुए नृप से योगेश्वर बोले –अरे नृप भर्तृहरे! इस प्रसाद की ओट में भानुमतियों के समुदाय तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं उनको ले जाकर अपना राजकाज का कार्य देखो! यहाँ क्या देख रहे हो? यहाँ तो महासिद्ध योगीश्वरों तपस्वियों का वास है जाओ तुम अपना ही घास देखो! यहाँ तुम्हारे देखने वाली कोई मूर्ति नहीं है। जाओ राजरमणियों के समुदाय तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा में वहाँ खड़े हैं जिन्हें तुम देख चुके हो वे इस प्रसाद की ओट में तेरा इन्तजार कर रहे हैं फौरन जाओ! राजा–हे महायोगेश्वर! मेरी मूर्खता को क्षमा करो और किये वाद

विवाद मेरी धृष्टता को! योगेश्वर– अरे यदि सभी से तुझे नफरत या डर लगता है! तो जो तेरी सही है वह तो वापिस शेष आयु व्यतीत हुए बिना नहीं जावेगी! क्योंकि उसकी प्राप्ति के लिये तेरी मांग है बाकी जो तेरी मांग से अन्य हैं उन्हें ले जाने को अवश्य नहीं कहता हूँ जाओ अब तुम्हारी ही एकाकिनी है उसे ले जाओ! राजा–हे प्रभो! जहाँ जाना था वहाँ मैं पहुँच गया हूँ। योगेश्वर–अरे तो इसके लिये क्यों विलाप करता था? इतने में भानुमती भी आकर पास में बैठने लगी तो राजा उठकर पीछे हो गया। तो रानी–यह क्या कभी भुज पञ्जर में भी डर न था अब हाथ के स्पर्श से भी पूर्व ही त्रस्त हो रहे हो! हमारा कोई कसूर? राजा–कसूर कोई नहीं है अब चित्तवृत्ति ही ऐसी बन चुकी है। भानुमती–अब चित्तवृत्ति क्या कहती है! राजा–जिस इस परमेश्वर ने तुझ नामो–निशानविहीन हुई को मुझ लिये दिया है उस इस परमेश्वर के चरणों में सीमित हो गई है। भानुमती–योगेश्वर को प्रणाम कर पति से बोली कि राजाजनकवत् यहाँ सीमित हुई वृत्ति से ही राजकाज करते रहो एवं हे पतिदेव! आपके वैराग्य और मोक्ष मार्ग में कोई विघ्न नहीं हो सकता। राजा–हे प्रिय! राजा विदेह तो अनेकों जन्मों के सिद्ध थे पक्वकषाय जीवन मुक्तावस्था में विराजमान थे हमारे जैसे अपक्व कषायों को उनका अनुकरण करना हानिकर सिद्ध होगा। वड़वानल को तो महार्णवगर्भ वास युक्त ही है। हे सती साध्वी! यदि मेरे कृतान्त का अन्त होगा तो आपका भी निश्चित ही है। जिस भी पद की मुझे प्राप्ति होगी वह आप सती साध्वी के लिये भी निश्चित ही होगी एवं विचार कर अब आग्रह को छोड़ दो! अब आपके सब आग्रह विफल होंगे। भानुमती मन में कुछ विचार कर अरिदहन कुमार को लाकर

आगे करूँ कि कहीं उस पर दया आ जाये। राजा—जाओ घर में जैसा मिले वर्तकर परमेश्वर शिव का भजन करो! भानुमती—रनिवास से कुमार अरिदहन को साथ लेकर दूसरे महल में पहुँची कि जहाँ गुरु गोरक्षनाथ जी थे उनकी प्रसिद्धि को सुनकर बहुत संसार का आना जाना प्रणाम पूर्वक हो रहा था। तब भानुमती ने राजकुमार से राजा को साथ के कमरे में बुलवाकर कहा इस कुमार की रक्षा पालन कौन करेगा। भर्तृहरि—इस कुमार अरिदहन की तथा तेरी आप चलो! मैं अपने छोटे बन्धु आपके देवर और कुमार के चाचा विक्रमादित्य को रक्षा करनी कह देता हूँ वह यथा मैं कहूँगा वैसे ही करेगा। उसी समय राजपुरुष को भेजकर विक्रमादित्य तथा मन्त्रियों को बुलवाकर सम्बोधित किया। हे मेरे लघु प्रियबन्धु! तथा मन्त्रीवर्ग! यह राज्य तथा गद्दी कल से अपने इस लघुबन्धु विक्रमादित्य के मैंने अर्पण कर दी और अरिदहन का पालन आदि कार्य तथा इसकी माता भानुमती के जीवन की इसके जीवन पर्यन्त सब सुविधायें तुम्हें इसे देने का मेरे समक्ष प्रण करो! कि मैं इस माँ—पुत्र के साथ—साथ शेष रानियों की भी पूर्ण सम्मान के साथ इनकी सेवायें करूँगा। विक्रमादित्य—हे मेरे परम पूजनीय प्रियबन्धु! मैं परमेश्वर शिव को तथा अपने धर्म को और कुल के वृद्धपूर्व पुरुषों का साक्षी कर कहता हूँ कि मैं विक्रमादित्य अपने परम माननीय महाराजाधिराज भर्तृहरि की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करूँगा। इनकी महारानियों को स्वमाता समान समझकर और अरिदहन कुमार को मैं अपना छोटा भाई समझकर इनकी सब यथा योग्य सेवायें करूँगा। महाराज भर्तृ—हे गुरो! मैंने भानुमती तथा शेष रानियों अरिदहन कुमार इनकी व्यवस्था, बन्धु विक्रमादित्य ने सादर से करनी स्वीकार कर ली है। हे राजन वैराग्य रूप यह योग का पन्थ बहुत कठिन है। इसलिये सचेत हो यहीं भजन तथा राज्य भी करो! यहाँ जो सुविधा

आपको है वे बाहर नहीं मिलेंगी। राजा—गुरुदेव! अब तक मैं अल्पज्ञ होने से अवज्ञा में था अब आपकी कृपा से मैं समझता हूँ कि आप साक्षात्परमेश्वर हो क्योंकि आपकी अपार असदृशी अमोघ ज्ञान शक्ति क्रियायें हैं मैं समझता हूँ कि पूर्व मृत मृग को प्राणदान भी आपने ही दिये थे। हे प्रभो! इस असार संसार के मोह मेरापन आदि से मेरा विच्छेद हुआ। महामोहान्धकार से आज मुझे प्रकाश हुआ और आपके पाद—पद्मरेणुरूप परमलोक में मेरा अभिषेक हुआ। यह भानुमती तथा उसका कृत्य व दृश्य उसका पुर्नजीवन ये नृप भर्तृहरि के परम उत्तम वैराग्य के कारण हैं। योगेश्वर—राजन हम अब जा रहे हैं, नृप—हे महाराजधिराज! एक दो दिन और रूको मैं भी साथ ही चलूंगा। योगेश्वर—हम अभी वहीं ठहरेंगे जहाँ मृत मृग को जीवन मिला था। पुन: नृप हाथ बांधकर दासों पर कृपा और क्षमा रहे। गुरु गोरक्षनाथ जी चले गये दो दिन के बाद नृप भर्तृहरि ने जो जिसको कहना सुनना था कह सुनकर वहीं आ पहुँचा जहाँ पूर्व योगेश्वर ने मृत मृग जीवित किया था। वहाँ कुछ दिन रुककर भगवान गुरु गोरक्षनाथ जी नृप भर्तृहरि सहित पञ्चाल देश में टिल्ला शिवपुर पर चले गये जो जिला जेहलम में है जो आदिनाथ गोरक्षनाथ दोनों का ही तपस्थल है। जहाँ पर जाकर बहुत काल तक शुश्रुषा करने के बाद नृप भर्तृ ने कहा कि गुरो! मुझे भी अब बाणे से अलंकृत करो अब गुरु गोरक्षनाथ जी ने स्वेच्छा से जब चाहा तभी बाणा देकर छिन्नकरण करके कुण्डल (मुद्रा) डाल दिये। भर्तृहरि ने शिष्य बनने के बाद बहुत समय पर्यन्त खूब तप योगसाधना किया तथा महा योगशक्ति प्राप्त की। गुरुदेव जी ने देखा कि यह बहुत बुद्धिमान नृप है इसके यथागुण तथा गुरु जी ने विचारनाथ नाम रख दिया और इन्हें भर्तृनाथ भी कहते हैं। गुरु गोरक्षनाथ जी के नाथ

सम्प्रदाय की वैराग्य पन्थ (शाखा) के आदि प्रवर्तक व पुरुष विचारनाथ जी हैं बैराग पन्थ इसका तथा इसकी शिष्य परम्परा का बोधक है। भर्तृहरि के वैराग्य होने के चार कारण हैं क्रमशः १. पिंगला, २. मृत मृग जीवन, ३. भानुमती पुनः बनाना, ४. गुरु गोरक्षनाथ जी की अपार शक्ति के चमत्कार हैं प्रथममध्यमोत्तमपरमोत्तम रूप से हैं।

भर्तृहरि (विचारनाथ) को गुरुदेव ने दीक्षित कर उपदेशामृत मंगल किया

प्रणवाभ्यास—

[१]पद्मासनं समारुह्य समकाय शिरोधरः।
नासग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदोङ्कारमव्ययम्।।८३।।

अब प्रणव के अभ्यास की विधि कहते हैं कि एकान्त स्थान में बैठ दृढ़—पद्मासन लगाकर शरीर कण्ठ सिर सम (सरल) करके नासाग्रदृष्टि निरंतर कर प्रणव जप करे।

[१]भूर्भुवः स्वरिमेलोकाः सोमसूर्याग्निदेवताः।
यस्य मात्रासु तिष्ठान्ति तत्परं ज्योतिरोमिति।।८४।।

जिस प्रणव के अकार, उकार, मकार रूप तीन मात्राओं (वर्णो) में भूः भुवः स्वः ये लोक तथा चन्द्र सूर्य अग्नि देवता रहते हैं वह प्रणव परम कारण रूप ज्योतिर्मय चैतन्य ओ३म् स्वरूप है।

[१]त्रयःकालास्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयःस्वराः।
त्रयोदेवाः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति।।८५।।

जिस प्रणव में भूत, वर्तमान, भविष्य ३ काल। ऋक् यजु साम

१. गोरक्षपद्धति प्र० श० श्लोकाः

तीनों वेद, विधि, हरि, हर ये तीनों देव रहते हैं वही प्रणव (ओङ्कार) स्वरूप परब्रह्म ज्योति स्वरूप है।

क्रिया इच्छा तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी।
त्रिधा: शक्ति स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति।।८६।।

जिस प्रणव की अ उ म ये तीन मात्रा ॐ हैं क्रिया, इच्छा तथा ज्ञान तीन प्रकार की ब्रह्मी, रौद्री, वैष्णवी ये शक्तियां जिसमें स्थित हैं वह प्रणव ओङ्कार स्वरूप ज्योति है।

अकारश्च उकारश्च मकारो विन्दुसंज्ञक:।
त्रिधा, मात्रा स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति।।८७।।

त्रिलोकात्मा अकार उकार बिन्दु स्वरूप मकार ये तीनों मात्रा जिसमें रहती हैं वह परम ज्योति स्वरूप प्रणव है।

वचसा तज्जपेद्बीजं वपुषा समाभ्यसेत्।
मनसा तत्स्मरेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति।।८८।।

इस प्रणव को सर्वजगत्कारण भूतभावन जान वचन से जप करना शरीर से सिद्धासनादि से सगुण ब्रह्म की भावना करके प्रणवार्थ समझ अभ्यास करना तथा मन से परब्रह्म स्वरूप चैतन्य समझकर सर्वदा स्मरण करे।

शुचिर्वाप्यशिचिर्वापि यो जपेत्प्रणवं सदा।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।८९।।

जो त्रिविध बाह्याभ्यन्तर शौचयुक्त व अयुक्त हो अर्थ से युक्त (ज्ञात) हो जप करता है उसे उसके पाप स्पर्श नहीं कर सकते यथा जल कमल पत्र को स्पर्श नहीं कर सकता वैसे ही प्रणवाभ्यासी को भी पाप स्पर्श नहीं कर सकते।

अथ प्राणायाम की महत्ता

[१]चले वाते चलो बिन्दुर्निश्चले निश्चलोभवेत्।
योगी स्थाणुत्वमान्पोति ततोवायुं निरुंधयेत्।।९०।।

प्राण वायु के निश्वासोश्वास होते रहने से बिन्दु भी चलायमान ही रहता है प्राण की स्थिरता से वीर्य की स्थिरता होती है। जब प्राणायाम से प्राण वायु स्थिर हो जाता है तो योगी योगाभ्यास से दीर्घजीवी ईश (शिव) भाव को प्राप्त होता है इसलिये योगी का वायु निरोध मुख्य कार्य है।

[१]यावद्वायु: स्थितोदेहे तावज्जीवं न मुञ्चति।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्।।९१।।

जीवन मरण प्राण वायु के अधीन है अत: वायु का निरोधन आवश्यक है।

यावब्दद्धो मरुद्देहे यावच्चित्तं निरामयम्।
यावद्दृष्टिर्भ्रवोर्मध्ये तावत्कालभयं कुत:।। अर्थसरल
अत: कालभयाद् ब्रह्मा प्राणायामपरायण:।
योगिनो मनश्यचैव ततो वायुं निरोधयेत्।।९२।९३।।

जिस कारण से जीवन मरण प्राण वायु के अधीन है इसी हेतु ब्रह्मा एवं सनकादि सिद्ध मुनि दत्तात्रेयादि प्राणायाम में तत्पर हैं। इसी प्रकार अन्य योगियों को भी काल का भय प्राणायाम द्वारा नहीं रहता।

हे प्रभो! पूर्व श्मशान में जब मुझे बोधित किया था उससे भी पूर्व आपने (अलख लख अलख) ये शब्द तीन बार उच्चारण किये थे।

१. ये सब श्लोक श्री गो० प० के हैं।

कृपा कर मुझ दास पर उनका भी संक्षिप्त प्रकाश कर दो! हे सौम्य! तेरा शोक मोहान्धकार दूर करने के लिये तब मैंने स्वयं खर्पर को तोड़ा था और मन को उद्दिष्ट कर तुझे तथा अन्यों के बोधार्थ कहा था कि जो बना है उसे नष्ट भी होना है तुम किसी के आने जाने के ही शोका–शोक में क्यों जकड़ा है। हे मन! अलख लख अलख। अलख लख अर्थात् अलख को लख (जान) प्रश्न–जो है ही अलख (न जाने जाने वाला) है। उसे कैसे जाने? उत्तर–दूसरा अलख, यह अलख है (न जानने में आने वाला है) यही तो उस अलख का जानना है अर्थात् प्राणियों के समस्त पराक्रमान्तर्गत यावत् साधनों द्वारा अलख्य=अगम्य है, यही उसका जानना है। यथाश्रुति–यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः, इत्यादि जिसका वह तत्त्व नहीं जाना हुआ उसका जाना (माना) है और जो उस परमतत्त्व को अपना माना (जाना) समझता है उसका वह परब्रह्म तत्त्व नहीं माना (जाना) हुआ है। यह भी एक गहन रहस्य है एवं मन को सम्बोधित करके लोगों को तथा तुम्हें समझा रहे थे।

नं० ५–शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रारम्भ नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धित कपलानी पन्थ

इन पन्थ (शाखा) के आदि पुरुष देवहुति के सुपुत्र सांख्य–शास्त्रकार कपिल मुनि व कपिलदेव जी थे जिन्होंने राजा सगर के साठ ६० हजार पुत्र भस्म करने के बाद स्वशक्ति के अत्यन्त ह्रास तथा वृद्ध हुए पाप सन्ताप से चित्तास्थिरता (अन्तःकरण की बैचेनी) के कारण दुःखित हुए ने पुनः ह्रसित शक्ति लाभार्थ एवं चित्त शान्ति की उपलब्धि के लिये सर्व योगाध्यक्ष सदाशिवरूप श्री गोरक्षनाथ जी की शरण में आये, इन्हीं के द्वारा गोरक्षवंशी मठ में दीक्षित हो महाज्ञान योग

विद्या का शिक्षण ले महामुद्रा महाबन्धों आदिक का ज्ञान प्राप्त कर क्रियान्वित द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को उद्‌बोधित कर तथा महायोगानल को प्रज्वलित करके अखिल पाप सन्ताप को दग्ध निर्बीज करके परम शुद्ध सुन्दर कुन्दन होकर पूर्वावस्था से भी उच्च व्यवस्थित हुआ तथा परमानन्दानुभव किया एवं श्री गोरक्षनाथ द्वारा दर्शित मार्ग को परम श्रद्धा विश्वास से सेवन करता हुआ आगे इस विद्या का विस्तार करने का इच्छुक होकर अजयपाल नाम के महाशूरवीर को इसने ही दीक्षित करके अजयपालनाथ नाम का शिष्य किया और [१]कपिलनाथ यह तो इसके नाम

टि० १. महामति हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने ग्रन्थ नाथ सम्प्रदाय के पृ० १५५ में लिखते हैं कि यदि ध्यान से देखा जावे तो गोरक्षनाथ सम्प्रदाय में कई नाम परिचित बहुत पुराने हैं यथा कपलानी शाखा वाले कपिलमुनि से सम्बन्धित हैं। इस शाखा का प्रमुख्य स्थान गंगासागर में है जहाँ कपिलमुनि का आश्रम था यही कपिलमुनि साख्यशास्त्र के कर्ता माने जाते हैं। सांख्य तथा योग का मिथ: घनिष्ट सम्बन्ध है अत: भागवत में कपिलमुनि योग और वैराग्य के उपदेष्टा के रूप में प्रसिद्ध है। सांख्य को निरीश्वरयोग कहते हैं योग दर्शन को सेश्वर सांख्य कहते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि कपिलमुनि के अनुयायी जो निरीश्वरवादी योगी थे वे भी श्री गोरक्षनाथ के मार्ग में आकर मिल गये थे। चाँदनाथ सम्भवत: वह सिद्ध थे जिसने श्री गोरक्षनाथ मत को स्वीकार किया था। इसी शाखा के नीमनाथी और पारसनाथी नेमीनाथ तथा पार्श्वनाथ नामक जैनतीर्थङ्करों के अनुयायी जान पड़ते हैं जैन साधन में योग का महत्त्व पूर्ण स्थान है। उनका यह सम्प्रदाय गोरक्षनाथ जी के योगियों में अन्तर्भुक्त हुआ है एवं डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह लेख है।

के साथ नाथ जुड़ने से बना किन्तु दीक्षित नाम इसका दग्धपटपनाथ है। इस प्रकार कपिलनाथ की शाखा (पन्थ) कपलानी नाम से कहलाने लगी तथा इसकी शिष्य परम्परा भी कपलानी नाम से ही बोली जाने लगी।

नं० ६–गंगानाथ या गंगनाथ यह नाम भगीरथ का ही नाथ सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है इसी का गंगनाथी पन्थ है

इस पन्थ का प्रथम आचार्य गंगानाथ=भगीरथ है। इसके दीर्घकाल के घोर तप के बाद भगवान विष्णु की आज्ञा के अनुरोध से जब गंगा स्वर्ग से आ रही को शंकर ने अपने जटा जाल महाराण्य में सन्निरुद्ध कर लिया तब चिन्तातुर भगीरथ ने आदिनाथ सदाशिव की आराधना प्रारम्भ कर दी तब कई वर्ष पर्यन्त शिव का घोर तप करने पर जब प्रसन्न होकर शंकर ने दर्शन दिये और वर के लिये कहा तब भगीरथ ने हाथ जोड़कर कहा कि हे प्रभो! शाप दग्ध हुए मेरे पूर्वजों के कल्याणार्थ श्री गंगा जी को मार्ग दो! मेरे भवसागर तरणार्थ अपने नाथ मार्ग (सिद्धमार्ग) में मुझे प्रविष्ट कर अपने समस्त चिन्हों से अलंकृत कर स्वदास बनाकर महायोग ज्ञानामृत का मेरे कर्णगोलकों से मुझे पान करा संसारार्णव से पार करो। हे सदाशिव ये मेरे दो वर हैं तब श्री गोरक्षनाथ रूप सदाशिव ने कहा कि ऐसा ही हो जावेगा किन्तु प्रथम अपने पूर्वजों का श्री गंगा जी को सादर ले जाकर इसका विधिपूर्वक पूजन कर उनके कल्याणार्थ सब कृत्य करके बाद में तेरे अने पर तुझे नाथ मार्ग में प्रविष्ट कर महायोग ज्ञान देंगे जिसके साधन करने से जन्म मृत्यु का सर्वदा विच्छेद हो जाता है एवं अपने समस्त कृत्यों को कर समयान्तर में पूर्व कांक्षायुत हुए भगीरथ जी

ने कैलाश शिव वास पर आकर सर्वांगीण प्रणाम किया भगवान आदिनाथ के कुछ समय यहीं निवास करने के बाद जिसको अन्तर्यामी गोरक्षनाथ शिव जान ही रहे थे उसे भगीरथ ने फिर दोहराया तब भगवान गोरक्षनाथ रूप सदाशिव ने समस्त मुद्रा चिन्हों से कुछ दिनों में सुसज्जित कर दिया जहाँ स्वयं के आदिनाथ शिव के कुण्डल हैं उन्हीं से कुछ ऊपर बड़े छेद कर कुण्डल (मुद्रा) मत्स्येन्द्र भगीरथं अर्थात् मत्स्येन्द्रनाथ गंगानाथ आदि से पहनने प्रारम्भ कर दिये इन मुद्राओं को दर्शन भी कहते हैं। 'अहमेवास्मिगोरक्षो मद्रुपं तन्निबोधत' इस सदाशिव की सूक्ति से यह सिद्ध हुआ कि जो शिव है वह गोरक्ष है और जो गोरक्ष है वही सदाशिव हैं। यदि आदिनाथ शिवजी ने किसी को दीक्षित किया तो वही श्री गुरु गोरक्षनाथ जी ने किया है। यदि गोरक्षनाथ जी ने किसी को दीक्षित किया तो वह आदिनाथ शिवजी ने ही किया है। शिव तथा गोरक्ष भेद स्थूलद्रष्टि से ही है। यथार्थत: अभेद ही है एवं गंगाधर ने भागीरथी को मार्ग दिया और भगीरथ का भी मंगलमय सिद्धमार्ग प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार गंगानाथ की शिष्य परम्परा को तथा प्रणाली शाखा को गंगानाथी नाथ सम्प्रदाय में कहते हैं। संक्षिप्त

नं० ७–श्री शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रारम्भ नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धित पालक (पागल) पन्थ

जो कि सिद्ध चौरंगीनाथ जी से प्रवर्तित हुआ है इसका जैसा नाम था वैसा ही यह धर्म दया मूर्ति गुणागार था। इसके पंजाब पाकिस्तान तथा रोहतक में बोहर स्थान इसका बसाया महामठ है। इस मठ की

अधिक जागीर इसके लघु बन्धु राजा रसालु की लगाई हुई है जो इसकी विमाता लूणा ने पूर्ण को असत्य दोष धर हस्तपाद कटवाये थे इसी के गर्भ से लूणा और शीलवान की प्रार्थना करने से पूर्णभक्त या पूर्णनाथ के वर से ही यह राजा रसालु जन्मा था। इसकी जानकारी के लिये पूर्ण कालीदास को देखो! इस पूर्ण भक्त की भक्ति से आकर्षित हुए सदाशिव गुरु गोरक्षनाथ जी उस कूप के निकट आकर अनेक महासिद्ध शिष्यों सहित विराजमान हुए जहाँ जल्लाद पूर्ण भक्त को कई वर्ष पूर्व दोनों हाथ पाँवों को काट तथा नेत्रों को निकालकर इसको कूप में फैंककर चले गये थे। जब श्री सदाशिव रूप गुरु गोरक्षनाथ जी ने कटे हाथ पैर निकाले नेत्रों को फिर कटने से पूर्व से भी श्रेष्ठतम कर दिये तो उनकी इस अपार शक्ति को देखकर असार संसार को तुच्छ समझकर, दृढ़ श्रद्धाभक्ति विश्वास से उन्हों का विश्वास पात्र शिष्य बन गया। यह सर्वगुण सम्पन्न महाधीर वीर, दया, धर्म, धैर्य, सत्य की साक्षत्सजीव मूर्ति थे यही पालकपन्थ के प्रथम आचार्य एवं गुरु गोरक्षनाथ जी की करूणा के प्रियपात्र थे। इस सिद्ध की शाखा की भी पागलपन्थी प्रसिद्धि चली आ रही है। यह सिद्धों ने पालक शब्द का जानबूझ कर मनोरञ्जनार्थ पागल नाम चला आ रहा है जिससे कोई समझे कि पागल ने क्या पन्थ चलाना या बताना है जोकि है ही पागल। यदि वह कुछ मार्ग या सम्प्रदाय चलायेगा तो वह पागलों वाला ही चलायेगा और जो उसके अनुयायी या भरती होने वाले होंगे वे भी तो उन्हों जैसे पागल ही होंगे किन्तु ऐसा नहीं है महासिद्धों का इंगन किसी और की ओर है वह यह कि संसार रूप महामोहमाया अज्ञान के भंवर (घुमेर) में पड़े हुओं को उल्ट कर सही मार्ग पर लाने के लिये ही इसका नाम पागल पन्थ पड़ा। यथा पागलखाने के

डाक्टर या वैद्य को लोग पागलों का डाक्टर या वैद्य कहते हैं किन्तु डाक्टर वैद्य तो सही होते हैं परन्तु पागलों का इलाज करने से वे पागलों के डाक्टर या वैद्य कहलाते हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उन्हों के डाक्टर वैद्य भी पागल ही हों। ठीक वैसे ही माया मोहजाल में फंसकर पागल=उन्मत्त हुओं को सही रास्ते पर लाने वाले आचार्य का यह पागल पन्थ हुआ अथवा सुल्ट को उल्ट कहना और उल्ट को सुल्ट कहना तथा ही उल्ट को सुल्ट कर देना और सुल्ट को उल्ट कर देना यही तो सिद्धों की सिद्धता है। उनके अमंगल कहने से यदि उनका मानसिक भाव सही होगा तो मंगलमय होगा। इसी प्रकार वर शाप में भी जब तक महापुरुष के मानसिक संकल्प के भाव दृढ़ संकल्पित न होकर कहे जायेंगे तो तब तक केवल साधारण वाणी के वर शापों का भी कोई प्रभाव नहीं होगा। महासिद्धों की वाणी में जैसे उनके मानसिक भाव की एकता होगी वैसा ही होगा सिद्धों के मनोरञ्जनार्थ वचन में फलीभूतता नहीं है। मानसिक भाव के वचन में फलीभूतता है। यथा–

श्मशानेष्वाक्रीड़ास्मरहर, पिशाचाः सहचरा
श्चिता भस्मलेपः स्रगपि नृकरोटी परिकरः।।
अमंगल्यं शीलंतवभवतु नामैवमखिलं।
तथापि स्मर्तृणां वरद! परमं मंगलमसि।।२४।।

अर्थ–हे स्मरहर! श्मशानों में क्रीड़ा करना भूत, प्रेत, पिशाचों को साथ में रखना, चिता की भस्मी शरीर में मसलनी नर शिर की करोड़ों अस्थियों की माला बनाकर पहनना इत्यादि अमंगल चरित्र आप में हैं। वे

आपके पास पड़े रहें उनसे हमें क्या? किन्तु हे वरद! स्मरण करने वाले के लिये वही आपका स्वरूप परम मंगल का देने वाला है। अत: आप मंगल की कामना वालों के लिये सदा याद करने लायक हो!।।२४।। इसी प्रकार सिद्धों के अमंगलमय शब्द या वाणी भी उनका मानसिक भाव यदि अन्यत्र मंगल की ओर होगा तो मंगलमय ही होगा। संक्षेप

नं० ८—शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रारम्भ नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धित रामनाथ पन्थ

इस शाखा के प्रथम गुरु सन्तोषनाथ जी हैं तदुत्तर रामनाथ जी हैं तथापि इस पन्थ की प्रसिद्धि रामनाथ के नाम पर ही है कई इसी को गोपालनाथी शाखा भी मानते हैं। इस पन्थ की मुख्य गद्दी दिल्ली में है जोधपुर के दास गोपाल भी इस शाखा से सम्बन्धित हैं। राम रावण के युद्धान्त में यह शाखा रामनाथ के नाम से चली जो पूर्व सन्तोषनाथ नाम से थी। इसका वर्णन पूर्व इनके दीक्षाकाल प्रकरण में कर आये हैं नाटेश्वरी और ध्वज पन्थ, रामपन्थ ये तीनों लगभग एक ही समय में हुए थे पंजाब जिला जेहलम में टिल्ला महामठ पर पीछे इनके प्रकरण में एक साथ ही तीनों का विवरण है।

दरियानाथी यह नाटेश्वरी पन्थ की उपशाखा है

दरियानाथ और दर्यावनाथ भी कहीं—२ इनका नाम आता है। इस शाखा का स्थान उडेरीवाल में है जो पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त में है। अन्य मकन्द, कोडाण्ट क्वेटा में इसका मुख्य स्थान है पंजाब पाकिस्तान

में भी अनेकों इनके स्थान थे। मुसलमानों में इसको दरियाशाह तथा हिन्दुओं में दरियानाथ कहते हैं। इन्होंने दरियाव के जल को रोक कर खड़ा कर दिया था अर्थात् जाम कर दिया था तभी से इनका दरियानाथ नाम पड़ा था। जहाँ इन्होंने समाधि ली थी प्रथम जब इन्होंने शरीर छोड़ा तो हिन्दु, मुस्लिम का जलाने दफनाने का विवाद छिड़ गया था तो यह पुन: जीवित हो उठे तो बाद में इन्होंने दोनों के झगड़ों से पृथक् जीवित समाधि ले ली भूगर्भ में अब तक भी इनकी समाधिस्थल पर मन्दिर और मजार साथ–साथ हैं और दिन रात इनकी समाधि पर दोनों धर्मो की ओर से एक–२ दीपक जलता रहता है।

नं० ९–शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धी नटेश्वरी पन्थ

(इसका वर्णन लक्ष्मण दीक्षा प्रकरण में हो चुका है)

नं० १०–शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धित पावक (पाव) पन्थ के प्रवर्तक ज्वालेन्द्रनाथ जी थे

उन्हीं का उद्गम पुरु वंश में हुआ। मोहनी रूप को देखकर हुए शंकर के स्खलित शुक्र को महाज्वाला यज्ञीय वह्नि न पी लिया था कुछ समय बाद पुरुवंशी राजा वृहद्रवा ने पुत्रेष्टि तथा स्वर्गकामुक यज्ञ किया इसमें महाविद्वान याज्ञिक ब्राह्मण थे। उक्त यज्ञ होना प्रारम्भ हो गया कई दिन तक यह यज्ञ चला। अब जिस यज्ञीय ज्वाला ने पूर्व शिवशुक्र को पान किया था उसे कई मास हो गये थे अब उस यज्ञीय ज्वाला ने

श्री सिद्ध ज्वालेन्द्रनाथ जी की उत्पत्ति

परिपक्व हुए उस अमोघ शुक्रगर्भ को महायज्ञीय ज्वाला ने यज्ञवेदी में फैंक दिया इसमें भी परिपक्व होता हुआ वह योगानलात्मक गर्भ को पूर्णाहुति में तीव्र हुई ज्वाला ने वेदी से बाहर फैंक दिया तब उस ज्वलन्त ज्वालावत् देदीप्यमान अनलवर्णवपु शिशु को देखकर याज्ञिक लोग तथा अन्य जन समुदाय चकित हो आश्चर्य में पड़ गये। इसके अनन्तर प्रधान याज्ञिक तथा पुरोहितों ने उस शिशु को अग्निदेव का दिया प्रसाद जानकर के यजमान वृहद्रवा को प्रसाद ज्ञापित करा दे दिया और राजा ने क्रोड़ में ले जाकर अपनी महारानी विमल नयना को देकर कहा कि अग्निदेव का अग्निवत् रूप वाले पुत्ररूपी प्रसाद को पुत्ररूप से ग्रहण करो! तब रानी ने लेकर बालक को छाती से लगाया तो रानी के स्तनों से दूध उतर आया रानी ने परमेश्वर का धन्यवाद करते हुए परम प्रसन्नता से बालक को स्तनपान कराये। बालक भी स्तनों से दुग्ध पीकर प्रसन्न हो सो गया और प्रतिदिन शुभ्रांशु कलाओं की तरह वर्धमान होने लगा। कुछ ही समय में बालक किशोरता को प्राप्त कर बुद्धि सुशील सम्पन्न हुआ शिव भक्त संसार से उपराम चित्त होकर शिव आदिनाथ की शरण ली। सर्वांगीण प्रणाम कर सविनय उनकी सन्निधि प्राप्त कर कुछ कालानन्तर का अन्तर देकर श्री आदिनाथ जी से प्रार्थना की कि योगमार्ग (नाथ योगमार्ग) की शिक्षा दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ करने की कृपा करो! तब श्री आदिनाथ ने पूर्ण जिज्ञासु बालक जानकर उसको गुरु मन्त्र दीक्षा से दीक्षित कर जो ज्वाला से जायमान होकर राजा दम्पति ने यथोत्पत्ति के अनुरूप नाम ज्वालेन्द्र पूर्व ही रख दिया था क्योंकि शेष अग्नियों से हवनीय व यज्ञीय अग्निवर होती है। वह भी अग्निरूप ही था इसलिए

ज्वालाया इन्द्रो ज्वालेन्द्र: इस व्युत्पत्ति से ज्वालेन्द्र हुआ एवं गुरु मंत्र से दीक्षित कर दिया मुद्रानाद जनेउ देकर गुरु ने पूर्व नाम के अन्त: में 'नाथ' उपाधि लगा दी तो ज्वालेन्द्रनाथ नामकरण किया आगे चलकर यही सिद्ध योगी बना। इसका तथा इसकी शिष्य परम्परा का पाव (पावक) पन्थ है। यह पन्थ इसी का चलाया था अब भी अव्यवहित रूप से चला आ रहा है पावक से अशुद्ध पाव ही है। यह नाम अग्निदेव का है इसी पर ही आचार्य का नाम तथा पन्थ (शाखा) का है पावक पन्थी शिष्य परम्परा है। संक्षेप

नं० १०–शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रारम्भ नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धित मनोनाथी पन्थ

मनोनाथी (माननाथी) पन्थ श्री श्रृंगेरिपानाथ (महाराज गोपीचन्द नाथ) जी का है तथा मैनावती इसकी माता जी का इस शाखा के ये दोनों माता पुत्र आचार्य प्रवर्तक हैं। पावक पन्थ मनोनाथ पन्थ दोनों एक ही पन्थ हैं और इन दोनों को शाखा या उपशाखा एक दूसरे की कहना नहीं बनता क्योंकि यदि ज्वालेन्द्रनाथ जी के पाव पन्थ (पन्थ का चौथा हिस्सा) है। इसकी उपशाखा मनोनाथी बन नहीं सकती क्योंकि यह महाशाखा है यथा–चवांनी की रुपया उपशाखा नहीं हो सकता। यदि मनोनाथी महाशाखा की पाव पन्थ को उपशाखा माने तो वह भी नहीं बन सकती न बनने में ये हेतु है। प्रथम हेतु–यह है कि पाव पन्थ का आचार्य ज्वालेन्द्रनाथ गुरु हैं, श्रृंगेरीपानाथ (मनोनाथी शाखा वाले गोपीचन्द्रनाथ) का। इसलिये गुरु की शाखा शिष्य की शाखा की उपशाखा नहीं बन

सकती ओर न कहा सकती है। दूसरा हेतु–यह है कि ज्वालेन्द्रनाथ का शिष्य कानीपानाथ भेष बहिष्कृत होने से ज्वालेन्द्रनाथ का भी भेष के साथ कोई घनिष्ठ सम्बन्ध न रहा। इस प्रकार ये दोनों एक दूसरे की उपशाखा या महाशाखा न होकर एक ही शाखा के मनोनाथी और पावक नाथी ये दो नाम हैं। जिस नाम से चाहें व्यवहृत करो! गोपीचन्द (शृंगेरीपानाथ) के गुरु ज्वालेन्द्रनाथ थे। मयनावती सिद्धा के गुरु गोरक्षनाथ जी ही थे क्योंकि यह पूर्व ही भर्तृहरि के साथ ही दीक्षिता हो चुकी थी। गोपीचन्द्रनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ जी से दीक्षित होने पर भी गोरक्षनाथ जी का अधिक सम्मान करते थे तथा श्री गोरक्षनाथ के प्रभाव से अधिक प्रभावित थे। ब्रिग्स ने लिखा है कि–गोपीचन्द्र को सिन्ध में पीरपाटवनाथ भी कहते हैं वहाँ यह एक पहाड़ी पर रहते थे। उसी पहाड़ी पर किसी और सिद्ध दयानाथ का अधिकार था तब उसने उस पहाड़ी को आग लगा दी तो उस समय गोपीचन्द्र ने गोरक्षनाथ जी से गिरिनार गिरि पर जाकर कहा कि दयानाथ ने उस पहाड़ी को आग लगा दी है। श्री गोरक्षनाथ ने उस पहाड़ी की आग को बुझा दिया तब जिसने आग लगाई थी वह भी इस आग बुझाने के चमत्कार को देख गोरक्षनाथ के प्रभाव में हो गया। इसके बाद गोपीचन्द्रनाथ गोरक्षनाथ जी की कृपा दृष्टिपात से उस पर्वत पर निर्भय हो तप करने लगा और श्री गोरक्षनाथ जी के प्रभाव से अत्यन्त प्रभावित रहता था मनोनाथी माननाथी ये दो नाम इसी की शाखा के हैं। जोधपुर का मन्दिर इसी शाखा वालों का प्रधान स्थान है। राजस्थान में महायोगी गोरक्षनाथ सम्प्रदाय के प्रति बहुत पूज्यतम भावनायें प्रगाढ़ श्रद्धा भक्तियां थी।

जोधपुर क महाराजाधिराज मानसिंह नाथ सम्प्रदाय के विख्यात अनुयायी थे उन्होंने अपने नाथ तीर्थावली ग्रन्थ के अनेक श्लोकों में महायोगेश्वर गोरक्षनाथ जी की यौगिक शक्तियों पर तथा उनके चरणयुगलों की उपासना पर प्रकाश डाला है।

नं० ११–शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धित रावण (रावल) पन्थ है

यह नाथ सम्प्रदाय, ग्रन्थान्तरों में कई नामों से उच्चरित होता है। यथा–आदिनाथ सम्प्रदाय, गोरक्षनाथ सम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय, योग सम्प्रदाय, नाथ मार्ग, नाथ पन्थ, सिद्धमार्ग, सिद्धपन्थ, नाथ मत ये सब शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित महाज्ञान रूप मूलनाथ सम्प्रदाय के ही नाम हैं अर्थात् ये सब नाम सदाशिवरूप गोरक्षनाथ सम्प्रदाय के ही हैं। शैवशाक्त तथा सिद्धों के ग्रन्थों में ये सब नाम यथा गुण बल के अनुसार ही महासिद्धों योगेश्वरों द्वारा धृत हैं कोई कल्पित नहीं है। इस सम्प्रदाय के आचार्यों तथा उनके अनुयायी शिष्यों प्रशिष्यों की शक्ति सिद्धियों समाधियों से ब्राह्मण्ड विदित है। उन्हीं के अनुसार तथा अनुरूप सम्प्रदाय के नाम हैं।

यह वार्ता सर्वविदित है कि राजा रावण परम शिव भक्त था

वह जब शंकर भक्ति से तथा उनके द्वारा प्राप्त वरों से अपूर्व पराक्रम सम्पन्न हुआ। तब एक दिन उसने सोचा कि सर्व कल्याणकर शिव से प्रार्थना करूँगा कि वह सपरिवार मेरे पास लङ्का में निवास करें

क्योंकि उन्होंने पूर्वकाल में अपने निवासार्थ लङ्का बनाई थी तब हमारे पूर्वजों ने चट्ट (पूजन) के समय दान दक्षिणा में मांग ली थी। तब हमारे इष्टदेव शिव को लङ्का में निवास करना भी न मिला वह भी हमारे तथा हमारे पूर्वजों पर भार (बोझ) ही दानरूपी है एवं कोई ऐसा उपाय बनावें कि जिससे कुछ तो हल्का होवे और मुझे भी वहाँ कैलास पर जाकर दर्शन पूजन करने में भारी परिश्रम करना पड़ता है और उन्हीं के यहीं आ जाने पर उनकी पूजा शुश्रुषा मेरे द्वारा और अच्छी बन सकेगी। अत: आशुतोष से प्रार्थना करें कि वे यहीं सपरिवार लङ्का में ही आ जावें। यदि स्वीकार कर लेवेंगे तो ठीक होवेगा अन्यथा जब कैलास पर समाधिस्थ होवेंगे तब आहिस्ता से गिरिवर को हिला–हिलाकर भूमि से उत्पाटन कर (उखाड़ कर) लङ्का में ही ले आऊँगा। यहीं लङ्का के निकट यत्र न्यून वारिधि (समुद्र) जल में कैलास को स्थापन कर दूंगा उनकी सेवा पूजन सपरिवार करते रहेंगे ऐसा होने पर सब प्रकार से आनन्द हो जावेगा। कुछ स्थल भाग भी अधिक हो जावेगा एवं विनिश्चित्य राजाधिराज रावण ने कैलास पर जाकर शिव शिवा को प्रणाम किया पुन: उपशिष्य दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा कि हे देवाधिदेव! महादेव! यक्षस्वरूप! मेरी एक परमोत्कट समीहा है तथैव करुणाकर के चरणों में प्रार्थना है यदि परमेश्वर की आज्ञा हो तो मैं कहूँ। आदिनाथ जी कहो–रावण बोला–आप सपरिवार ही आप से निर्मित लङ्का में मुझ आपके दास पास ही स्ववास करने की कृपा करें, तो हे कारुणिक! हमारे लिये परम कल्याणकर होगा किन्तु सच्चिदानन्द स्वरूप आदिनाथ ने अस्वीकार कर दिया। तब रावण ने विचारा कि समय देखकर सपरिवार

शंकर भगवान सहित कैलास ही ले चलेंगे तब वहाँ निकटतम रहने से कभी न कभी तो निमन्त्रण पाकर लङ्का तथा हमारे गेहों में पादपद्म चिन्ह दिया ही करेंगे। यदि लङ्का दानदत्त होने से उसके भीतर न भी निवास करेंगे तो प्रार्थना करने पर तो कभी न कभी कृपा करेंगे ही। इतना होने पर भी दान भार कुछ न कुछ हल्का होगा तथा सेवा शुश्रुषा भी अनायास बन जाया करेगी। अब जब कभी समाधि में होंगे तब ईश्वर सपरिवार कैलास को उठा लाऊँगा एवं कुछ समय के बाद जब आदिनाथ समाधिस्थ हुए तो रावण कैलास पर आया ऊपर इधर उधर सब कुछ देखभाल कर अदृष्ट हुए ने भवानी शंकर को मानसिक प्रणाम कर पुन: कैलास गिरिराज के मूल में आकर उस महाब्रह्माण्डाकार गिरिवर को दोनों हाथों से अहिस्ता से अतिलघु वृक्ष की तरह हिला–हिलाकर डरता–डरता कि कहीं जगज्जनक समाधि से न समुत्थित हो जावें, कहीं कार्य बीच में ही न रह जावे। उत्पाटन कर रहे रावण द्वारा जब पर्वतराज डोला तो शिवादिनाथ की समाधि टूटी तो ध्यान से देखा डोलने का कारण जाना रावण तब नीचे से हाथ देकर उसे उठाने का यत्न कर रहा था। तब शंकर जी ने आसन पर बैठे–२ ही दक्षिण पादांगुष्ठ से दबाया तो समस्त ब्रह्माण्ड का भार उसे जान पड़ा कि वहीं कैलास पर आ पड़ा हो। तो जब रावण बोझ न सहन कर सका तो उसका बाम कर (हाथ) नीचे आ गया तो रावण ने समझा कि आदिनाथ जी जान गये हैं। उधर से हाथ नीचे आने से असह्य दु:ख हो रहा था किन्तु फिर भी करुणाकर शंकर ने उतना ही कैलास पर भार गैर रखा था जितना की रावण सहन कर सकता था हाथ दबा रहने पर भी शिव कृपा से अपने

होश हुवाश कायम कर शिव ताण्डव स्तोत्र को निर्मित करता हुआ स्तुति करने लगा यथा–

[१]जटाकटाहसंभ्रमभ्रमन्निलिंपनिर्झरी,
विलोलवीचिवल्लरी विराजमानमूर्धनी।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके,
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम।।१।।

ताण्डव नृत्य के समय जटारूपी कूप में वेग से भ्रमण करती हुई सुरसरि की लोललहर रूपी लताओं से सुशोभित और धक्–धक् की ध्वनि से युक्त जलने वाली है अग्नि जिसमें ऐसे ललाट वाले तथा द्वितीया के चन्द्र को आभूषण के समान धारण करने वाले महादेव जी के प्रति मेरी क्षण प्रतिक्षण प्रीति होवे। इत्यादि कई श्लोकों में स्तुति की तब शंकर जी ने ध्यान से देखा मेरा भक्त रावण मुझसे बल पाकर कैलास को उठाने के उद्यमार्थ उद्यत हो रहा है। अपने भार को उतने में ही रोक दिया कि जितना भक्त को अधिक कष्ट देय न होवे ओर यह रावण भी जानता था कि–

रावण का नाथ मार्गार्थ भावना बनाना

शंकर जी को नाथमार्ग (सिद्धमार्ग) अत्यन्त प्रिय है जिसके स्वयमेव तथा इसी के नामरूपान्तर गुरु गोरक्षनाथ जी ये दोनों प्रवर्तक हैं। इसके द्वारा महायोगविद्या का प्रचार करने वालों को अत्यन्त प्रियतम मानते हैं। तब रावण ने सोचा कि इस समय क्रुद्ध जगद्धारक को प्रसन्न करने के लिये इसके मायातीतावधूत नाथ मार्ग में प्रविष्टार्थ प्रार्थना करें तो

१. शिव० ताण्डय० स्तो० श्लोक

हो सकता है कि हमारी त्रुटि ओर धृष्टता को क्षमा कर दें। उसके साधन पालन से तथा प्रचार–प्रसार करने से हमारा भी कल्याण और नाम होगा नाथ सम्प्रदाय में उक्त स्तुति के बाद विचार कर रावण शंकर आदिनाथ जी से बोला कि हे महाजगदुद्यान के स्वामिन्! मुझ आपके दास से जो यह कैलास उठाने तथा आपकी समाधि खोलने की त्रुटि (गलती) हुई है मैं इसका आपसे क्षमा प्रार्थी हूँ हम पशु (जीव) हैं आप पशुपति (स्वामी=मालिक) अर्थात् जीवों के स्वामी हो उनकी गलती को क्षमा करने योग्य हो। मेरी त्रुटि को ध्यान में न रखते हुए मुझ धृष्ठ शठ को अपने नाथमार्ग में प्रविष्ट कर अपने परमशिव रूप जो संसारार्णव से सर्वदा अतीत गुरु गोरक्षनाथ परम पावन रूप है। उस द्वारा मुझे दीक्षित शिक्षित कर पूर्णतया अपने बाणें चिन्हों से चिन्हित करो! तब आदिनाथ जी ने रावण की प्रार्थना स्वीकार कर कैलास पर से अपना भार हल्का किया तो रावण ने अपना हाथ नीचे से निकाला और आदिनाथ ने अपने सदाशिवरूप श्री गोरक्षनाथ द्वारा राजा रावण को सर्व प्रकार से शिक्षा दीक्षा देकर छिन्नकर्ण कर कुण्डल (मुद्रा) कानों में डालकर रावण को सिद्धमार्ग में प्रविष्ट कर दिया। इस सम्प्रदाय के पूर्ण चिन्हों से पूर्णकर लंकेशनाथ, रावणनाथ इसके ये दो नाम नाथ मार्ग में प्रचलित कर दिये। लंकेश ने शिव तथा गोरक्ष में भेद न जानकर शिव का अत्युत्कृष्ट सदाशिवरूप परमशुद्ध मायातीत गोरक्षनाथ रूप का ही स्वयं को शिष्यत्व स्वीकार किया रावण का दीक्षित होने का कार्य, राम रावण युद्ध से पूर्व समय में ही हो चुका था।

—❊—

रावण का सहज स्वभाव

सर्व संस्कारों से संस्कृत होने पर भी अभी क्रियान्वित न होने से जो रावण के सहज स्वभाव थे वे अकस्मात् (यक मुस्ता) न परिवर्तित हुए क्योंकि इसकी प्रकृति न्यून सत्त्व प्रधान रजोगुणी थी। हिन्दु रावल गृहस्थी भी हैं तथा न्यून रज, सत्त्व, प्रधान तपस्वी रावल मुसलमीन हैं। इन मुस्लिम रावलों की भी आगे दो शाखा बताई जाती हैं, रावल सम्प्रदाय के मुस्लिम योगी मादिया और गल नामक दो उपपन्थों में विभक्त हो गये हैं। वे अधिक रावलपिण्डी फ्रैण्टियर काबुल अफगानिस्तान बुलोचिस्तानों आदि में पाये जाते हैं और प्रधान सत्त्व हिन्दु नाथ योगी भी रावल कम पाये जाते हैं। सत्य युगादि में जिन्हों को राक्षस या म्लेच्छ कहा जाता था द्वापरान्त में इनको यवन (मुसमीन) कहा जाने लगा और महाभारत में राजा ययाति की सन्तान से यवन नाम वाले चले हैं। ये यवन ही मुहम्मद से मुस्लिम नाम से प्रसिद्ध हुए एवं राक्षस म्लेच्छ नामों वाले ही कालान्तर में यवन नाम वाले हुए। प्रकरण में—रावण के दीक्षित होने के बाद में जो रावण शासित राजा लोग थे वे भी रावण पन्थ के अनुयायी इसी के आकर्षण से होते गये। अंगनाथ, आसंमनाथ, वंगनाथ, ब्रह्मनाथ, मद्रनाथ, भद्रनाथ इत्यादि रावणीया (रावली) शाखा पन्थ के राजसिद्ध योगी थे।

यह रावणनाथ शाखा पूर्व राजकुलनाथी शाखा के नाम से भी प्रसिद्ध है

इस पन्थ में प्राचीन समय में प्राय: राजा ही नाथ योगी थे इस

हेतु से प्राचीन समय में राजकुलनाथी शाखा भी उसे कहते आ रहे थे यथा मनोनाथी या माननाथी का उल्ट मन्नाथी बना और पावक शाखा पावकपन्थी का पावपन्थी और पालकपन्थी का पागलपन्थी बने। इसी प्रकार रावणपन्थी का उल्ट होता हुआ रावलपन्थी बन गया इस प्रणाली में प्रविष्ट होने वाले भी इस नाम में प्रसिद्ध होने लगे। यथा–इसी प्रणाली के गेहल्लारावल या गल्लारावल वप्पारावल आदि इसी पन्थ के प्रसिद्ध हुए हैं। इन दोनों का वर्णन श्री नाथतीर्थावली में भी आता है। इस प्रकार इस प्रणाली में राजकुलों में उत्पन्न हुए या राजा लोग अधिक नाथ साधु बनने के कारण राजकुलनाथी शाखा भी कही जाती है। इस प्रणाली के साधु–असाधु दोनों प्रकार के नर नारी पाये जाते हैं। ये सिंगापुर मलाया की ओर भी पाये जाते हैं अब तो यह भी सम्भव हो सकता है कि रावण से उल्ट हुआ अति प्राचीन काल से चले आ रहे रावल के नाम की कोई जाति विशेष भी बनकर प्रसिद्ध हो गयी हो। रावण से रावल हुआ रावण को कहीं रैवणनाथ नाम से भी कहा गया है। योगी वेश को धारण करके रावण ने श्री जानकी जी को पञ्चवटी से हरण किया था इससे पूर्व ही दीक्षित हो चुका था।

शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धित ध्वज पंथ

इसका मुख्य आचार्य बाद में वीर बङ्कनाथ है। इसका वर्णन इसके दीक्षा प्रकरण में कर आये हैं।

नाथ सम्प्रदाय बारह पन्थों के मूल प्रवर्तक तथा मुख्य स्थान

सं० नाम	मूल प्रवर्तक	मुख्य स्थान	प्रदेश
१. सत्यनाथी	(सत्यनाथ) (ब्रह्मा)	पतालभुनेश्वर	उड़ीसा
२. धर्मनाथी	(धर्मनाथ=) (धर्मराज)	संगल	हरियाणा
३. रामनाथी	(रामनाथ) (राम जी)	चौक तप्पे नोहर	नेपाल
४. नाटेश्वरी	(नागनाथ=लक्ष्मण)	टिल्ला	पंजाब पाकिस्तान दो शाखा दरियानाथी
५. कपलानी	(कपिलनाथ) (कपिलमुनि)	गंगासागर और गोरक्षवंशी	बंगाल कलकत्ता
६. वैराग्यपन्थी	(विचारनाथ=) (भर्तृहरि)	राताडूंडा	राजस्थान
७. मनोनाथी	(शृंगेरीपानाथ)	जोधपुर	राजस्थान
माननाथी	(गोपीचन्द्रनाथ)		महामन्दिर

पावपन्थी या (पावकपन्थी) और मनोनाथी ये दोनों एक ही शाखा हैं। ऐसा बहुत से विद्वानों का मत है ये दोनों शाखा गुरु शिष्य की हैं।

८. आईपन्थी	(उदयनाथ) (भवानी)	योगी गुफा	विमला
९. पालकपन्थी	(चौरंगीनाथ)	अस्तल बोहर	हरियाणा
पागलपन्थी	(भक्त पूर्ण)		

१०. गंगानाथी	(भगीरथनाथ–) (या गंगानाथ)	जाखवड़	पंजाब गुरदासपुर
११. रावणनाथी या रावलनाथी	(रावणनाथ) (लंकानाथ)	लंका या गैलपुर (बादरी)	राजस्थान
१२. ध्वजपन्थी	(वीर बंकनाथ) (हनुमान जी)	स्थान अनेक	सर्वत्र

बारह पंथों के नाम

१. आई पंथ, २. सत्यनाथी, ३. रामनाथी, ४. नटेश्वरी, ५. धर्मनाथी, ६. वैराग्यपंथी, ७. कपलानी, ८. पागल (पालक) पंथी, ९. गंगनाथी, १०. मनोनाथी, ११. रावल (रावण) पंथी, १२. ध्वज पंथी हैं।

(सिद्धमार्ग व नाथ सम्प्रदाय) के प्रारम्भक आदिनाथ सदाशिव गोरक्षनाथ हैं। बारह पंथ भी नाथ सम्प्रदाय सम्बन्धित होने से शिव गोरक्षनाथ ही इनके मूल आचार्य हैं लेकिन फिर भी जब–२ जो पंथ जिस समय जिस सिद्ध योगी द्वारा अधिक प्रतिष्ठित एवं प्रभावित हुआ उसके प्रभाव के सम्बन्ध से भी कुत्रचित् उसकी प्रसिद्धि के नाम से भी वह पन्थ बोला जाता है। यथा–वैराग्य, पागल, मनोनाथी का सम्बन्ध शिव गोरक्ष मत्स्येन्द्रनाथादि से है व उनके उत्तरवर्ती उनके शिष्य प्रशिष्यों सनक सनन्दन सनतकुमारादिकों से उत्तोत्तर उनकी प्रणाली से सम्बन्धित प्रसिद्ध सिद्ध जब कोई हुआ है तो उसके नाम से ही उसका पंथ बोला जाने लगा। उसको ही उस शाखा का प्रारम्भक साधारण व्यवहार में व साधारण जन समुदाय में समझा व बोला जाने लगा। इस आशय से ही पूर्व वैराग्य, पागल, मनोनाथी आदि पन्थों के प्रवर्तक क्रमश: विचारनाथ,

चौरंगीनाथ, शृंङ्गेरिपानाथों को कहा गया है। क्योंकि द्वादश पन्थ तो उनसे पूर्व भी विद्यमान थे। उस समय की इनकी प्रसिद्धि को लेकर इनको उनके प्रवर्तक कहा गया जिस समय में ये हुए। बारह पंथों से इनके आचार्य और सिद्धों का आशय यह प्रतीत होता है कि द्वादश राशि गर्भ में समस्त संसार है और इस द्वादशराश्यात्मक संसार सागर से पार होने के लिये ही ये द्वादश पंथ (मार्ग) इस सम्प्रदायिक आचार्यों ने निर्धारित किये हैं अथवा द्वादशमासिक वर्षात्मक काल सीमाओं के पार के (परमेश्वर तत्त्व के) दर्शाने वाले द्वादश पंथ=मार्ग हैं अथवा द्वादश प्रचण्डमार्तण्डात्मक मूल ज्योतिर्मय सच्चिदानन्द स्वरूप परम सदाशिव हैं उसकी प्राप्ति के ये द्वादश पंथ हैं एवं द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग संख्या से सम्बन्ध होने से भी द्वादश पंथ (पथ) संख्या को मंगल सूचक कह सकते हैं। **रूपान्तर से**–नाथ सम्प्रदाय कल्पवृक्ष रूप मूल है, आदिनाथ श्री गोरक्ष उसका बीज हैं। द्वादश पन्थ उसका प्रकाण्डभाग है षडंग साधित योग उसके अमृतमय फल हैं उनके भोक्ता सिद्धयोग महासिद्धयोगी हैं। बारह पंथों का सार्थक्य–

१–सत्यनाथ पंथ

यह ब्रह्माण्ड जनक है। अत: उसकी सादर उपासना आवश्यक है एवं उसका द्योतक सत्यनाथ पंथ भी भवितव्य है स्वयं पर कृपा के लिये।

२–आई पंथ

यह नाम उस सर्वाध्यक्ष परमेश्वर की शक्ति का है जो सब वस्तु पदार्थों को अदृश्य हुई सुनियमन कर रही है जिस बिना कोई

भी कुछ करने को समर्थ नहीं है। यथा–

शक्तिरस्त्यैश्वरी काचित्सर्ववस्तुनियामिका।
आनन्दमयमारम्य गुढा सर्वेषु वस्तुषु।।

१ टि० प० द०

जिसके बिना कुछ भी क्रिया सम्भव नहीं हो सकती, वही 'आई' शक्ति परमेश्वर शक्ति की बोधिका है जो सदाशिव से अभिन्न है चन्द्रचन्द्रिकयोरेव एवं उसकी उपासना हृदयोत्कट भावना से होना आवश्यक है। उसकी दत्तशक्ति से सब साध्य सिद्ध होते हैं अत: उसका द्योतक आई पंथ होना आवश्यक है।

३–धर्मनाथ पंथ

यह सूचित करता है कि आखिर धर्म की ही जय होगी, यथा धर्मराज धर्म का पालन करता हुआ धर्म की रक्षा करता है वैसे ही सबको न्याय का आचरण करते हुए धर्म की रक्षा पालन करना आवश्यक है। धर्माचरण से ही शिवयोग सिद्ध होता है। अत: इसकी याद के लिये धर्म पंथ आवश्यक है।

४–कपिल पंथ

कपिल सांख्य से प्रकृति विकृतियों के ज्ञान से पिण्ड ब्रह्माण्ड का ज्ञान सहज होता है प्रकृति पुरुष के पार्थक्य का पुरुष बद्ध–अबद्ध का ज्ञान होकर शिवयोग में सुकरता सुलभता आती है अत: यह भी आवश्यक है।

५–पावक (पाव) पंथ

यह प्रकाशित करता है कि पावक (अग्नि) वत् शक्ति प्राप्त कर

देदीप्यमान हो त्रिविध पावनता से पूर्ण गुरु की आज्ञा में होकर उक्त योगानल शक्ति को उपलब्ध करे जिससे समस्त पापताप दग्ध होकर पावन होवे। अतः पावक पंथ भी आवश्यक है।

५—मनोनाथी पंथ

यह प्रकाश करता है कि जिस किसी प्रकार से मन का शमन करने से एवं सत्त्व बुद्धि का मन पर स्वामित्व होने पर मनोविजयी को सर्वजयोपलब्ध होती है और उस शिवयोग से ही परमशिवत्व की प्राप्ति होती है अतः मनोनाथी पंथ (पथ) आवश्यक भवितव्य है। उक्त पावक मन दोनों शाखा एक शाखा है अतः दोनों की संख्या में ५—५ का एक ही अंक है।

६—वैराग्य पंथ

यह सूचित करता है कि बिना वैराग्य के ज्ञानाभाव होने से स्वात्मोपलब्धि सम्भव नहीं अतः वैराग्य पन्थ जो वैराग्य होना परमावश्यक कल्याणार्थ समझाता है वह वैराग्य क्या है? वह है—इस मृत्युलोक के समस्त भोगों से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त के अर्थात् ब्रह्मलोक के अशेष भोगों में भी मनोवृत्ति का सघृणा सर्वदा निर्मूलन ही वैराग्य है। अतः वैराग्य का सूचक जो वैराग्य पन्थ वह नितान्त सार्थक है।

७—पागल पंथ

यह सिखाता है कि समस्त संसारियों से तथा सांसारिक विषय वासनाओं में अनासक्त मनोभावों का होना व माया मोहान्धकर भंवर में पड़े सांसारिक पागलों का बोद्धा उद्धारक होने से यह पुण्यात्मक पंथ आवश्यक है।

८—गंगानाथ पंथ

यह बोधित कराता है कि भगीरथ वत् अनन्त तपोयोग से एवं अथकश्रम से लक्ष्य की प्राप्ति होती है अर्थात् परम पावन लक्ष्य सिद्ध होता है।

९—नटेश्वरी पंथ

यह शिक्षण करता है कि यति और सत्य में पूर्ण प्रयत्नवान होने से नटेश्वर वत् हो जाता है अर्थात् शिव समान हो जाता है। यथा—बालनाथ=लक्ष्मण ने गुरु कृपा से यत सत में पूर्ण हो नटेश्वर (नटराज शिव) का सिंहासन प्राप्त किया वैसे ही अन्य योगियों को यति और सत्य में सम्यक् प्रतिष्ठित होकर स्वलक्ष्य शिवत्व को प्राप्त करना आवश्यक है। नटेश्वर शिव हैं उससे सम्बन्धित टिल्ला स्थानरूप मठ नटेश्वरी (शिव की गद्दी=सिंहासन) का नाम है। यह सिंहासन सर्वप्रथम आदिनाथ शिव का तथा तद्रूप गोरक्षनाथ का है। आदिनाथोत्तर मत्स्येन्द्रादि महासिद्धेश्वरों का तथैव श्री गोरक्षनाथ दत्त बालनाथ (लक्ष्मणनाथ) का है अतएव नटेश्वरी पंथ के उत्तर में आचार्य बालनाथ हैं। यहाँ से अनेकों राजा—महाराजा महायोगेश्वर गुरु गोरक्षनाथ जी से महाज्ञान योगरूपोपदेशामृत ग्रहण कर अजरामर काय सम्पन्न हुए ईश ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते हुए सर्वोत्तमानन्द को प्राप्त हुए। यह नटेश्वरी पंथ आदिनाथ से सम्बद्ध है बाद में लक्ष्मणनाथ के नाम से भी बोला जाने लगा। नटेश्वर शिव का नाम होने में प्रमाण—

> नृत्तावसाने नटराजराजो, ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
> उद्धर्त्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

टि० यह नन्दिकेश्वर कारिका ह

इसमें जो नटराज राज शिव को कहा है नटराज और नटेश्वर समानार्थक हैं। इसमें 'विमर्शे' यह छान्दस प्रयोग है जिसका अर्थ 'विचार कर स्फुटकर्ता हूँ' है एवं यह नटेश्वर पंथ भी आवश्यक है।

१०—सन्तोषनाथ तदुत्तर रामनाथी पंथ

यह पन्थ सन्तोषनाथ—विष्णु की तरह परम बलिष्ठ सौम्य सौन्दर्य सम्पन्न शान्तदान्त स्वभाव वाला होना शिक्षित करता है और एकात्मभावुक होना कहता है तथा राम की तरह सत्यप्रतिज्ञ वाला होने से अखिल असाध्य कार्यों को भी करने की शक्ति सम्पन्न हो जाता है। ऐसा होने से उपदेष्टा के नाते यह पन्थ भी आवश्यक है।

११—रावण या रावल पन्थ

कहता है कि शिवकृपा और शिव योगसिद्ध होने से रावण वत्, अतुल्य तपोयोग सिद्ध श्रद्धा विश्वास से योगी पराक्रम युक्त हो जाता है अत: बलार्थ यह पन्थ भी आवश्यक है।

१२—ध्वज पन्थ

यह कहता है कि सर्वोपरि ध्वज की तरह लहराने के लिये हनुमान की तरह यत सत्य (जत सत) युक्त तथा भक्ति—श्रद्धा सम्पन्न होने पर योगी, वीर बङ्कनाथवत् बलिष्ठ होता है। यह पन्थ सर्वप्रथम शंकर आदिनाथ की ध्वजा के नाम से तदुत्तर हनुमान (वीर बङ्कनाथ) नाम से प्रसिद्ध है। सर्वोपरि सूचक होने से यह भी पन्थ आवश्यक है। इस प्रकार ये द्वादश पन्थ सार्थक है साधक अपनी—२ सुगमता को देखता हुआ कोई एक पन्थ की कोई दो पन्थ की, कोई तीन पन्थ की, कोई कितने

पन्थों की साधना को साधता हुआ योगी स्वात्मात्मक स्वसंवेद्य लक्ष्य में विलय हो जाता है इति संक्षेप।

नाथयोग अपने उद्‌भवकाल में—अवतारवाद व सीमित तत्त्व का समर्थक न था नाथयोगी सर्वनिरपेक्ष

अलक्ष्य सत्ता को ही अपने अन्त में लक्षित करता था, वह प्रत्यक्ष गोचर सत्ता को सीमित एवं अनित्य मानकर, असीम दिग्देशकालाद्यनवच्छिन्न अखण्ड अगोचर ब्रह्माण्डोत्तर सत्ता के साथ ही एकात्म होना मानता तथा चाहता था एवं प्रतीत होता है कि विकास के दूसरे चरण में ही इस साधना में भी पौराणिक आशा—विश्वासों का समावेश हुआ। पूर्वनाथयोग मार्ग असीम सत्ता को लक्ष्य करने वाला औपनिषद धर्म ही था। इसकी अपनी विशिष्ट चिन्तन पद्धति एव साधना प्रणाली पूर्णतः विकसित एवं स्वीकृत है। इस मार्गावलम्बी नाथयोगी की विचार दृष्टि में इस प्रत्यक्ष गोचर जगत् भेद—प्रभेदे से परे जो सर्वनिरपेक्ष परम तत्त्व है वह शिव है शिव स्वयं प्रकाश विशुद्ध चेतन एवं परमानन्द स्वरूप है। वह स्वयं ज्योति स्वरूप समाधिजन्य स्वसंवेद्य साक्षात्कार से ही गम्य है। जब वह अपने को जगत् की नामरूपात्मक सत्ता के रूप में अभिव्यक्त करता है तो उसे ही शक्ति कहकर अभिहित करते हैं यह शिव और शक्ति शाश्वत रूप से आलिङ्गित हैं, एक दूसरे से अभिन्नरूप से हैं। एक ही तत्त्व अपनी निरपेक्ष शाश्वत स्थिति में शिव है और अपनी सापेक्ष एवं गत्यात्मिका स्थिति में वही शक्ति कहलाता है। प्रत्येक प्राणी में शिव—शक्ति दोनों के तत्त्व विद्यमान होते हैं। योगसाधक अपनी साधना के बल से शरीरन्द्रिय मनोबुद्धि की सीमाओं को

अतिक्रमण कर परम तत्त्व शिव में मिल तदाकार हो जाता है। नाथ मार्ग में जिस प्रकार गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, गुरु गोरक्षनाथादि आचार्यों ने शिव–शक्ति के स्वरूप का निर्वचन किया है लगभग उसी रूप में वेदान्त में ब्रह्म और माया, सांख्य में प्रकृति और पुरुष तथा वैष्णवागमों में लक्ष्मी और नारायण, राम–सीता, राधा और कृष्ण के स्वरूप का निर्वचन किया है।

नाथ सम्प्रदाय के सम्बन्ध का प्रश्न ऋग्वेद के ब्रात्ययोगियों तथा मुनियों से भी सम्बद्ध है। वे ब्रात्ययोगी शिव, रुद्र, देव विशेष के उपासक थे एवं प्राणायामादिक यौगिक क्रियाओं को ही महत्व देते थे अपनी साधना से मृत्यु विजयी होते थे। यज्ञादिकर्मकलापों से सुदूर किसी अरूप तत्त्व का ध्यान चिन्तन करते हुए अपने लक्ष्यपदस्थ हो जाते थे। वास्तव में प्रत्यक्ष नामरूप जगत् से परे कोई एक अतुल्य असदृश तत्त्व सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है एवं विश्व को अपने किसी एक हिस्से में व्याप्त कर स्थित है। उसी तत्त्व में महासिद्ध ब्रह्मज्ञानी योगीजन अनन्तानन्द में सम्मज्जित हो सम्मग्न रहते हैं। श्री गोरक्षनाथ जी द्वारा हठयोग के ज्ञानप्रधान सेश्वरवाद संयमपूर्ण साधना नाथयोग सम्प्रदाय के रूप में अत्यधिक विकसित हुई थी। गोरक्षनाथ जी ने कायसिद्ध रसायणसिद्ध तत्त्वों के आधार पर आत्मचिन्तन में सम्प्रदाय को संगठित कर द्वादश पन्थों को विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित कर सम्पूर्ण भारत में सबके कल्याणार्थ उक्त योग का प्रचार विस्तार किया। यह बात सबके दृष्टि पथ में है। श्री गोरक्षनाथ जी साक्षात् शिवरूप होने पर भी उपाधि भेद से वे अलख निरञ्जन परम तत्त्व शिव के ही उपासक थे। ऋग्वेद सम्बन्धी जो ब्रात्ययोगी परम्परा के आदिनाथरूप होने से उसके प्रधानाचार्यरूप से

जाज्वल्यमान रत्न थे एवं ब्रात्ययोगी परम्परा और नाथ योगी सम्प्रदाय दोनों में विशेषान्तर न होने से संज्ञामात्र से दो हैं अन्तरंगतया एक ही है इन दोनों का आदिमूल आदिनाथ ही हैं। उसमें प्रथमोद्‌गम नाथ सम्प्रदाय का है ये दोनों मिथ: अंग प्रत्यंगी हैं। पूर्व कहा है कि नाथ सम्प्रदाय का योगी बहुत पूर्वकाल में दिग्देशकाकादि से अनवच्छिन्न सर्वप्रकार से सर्वोपरि विराजमान हेतु दृष्टान्त मनोबुद्धि से अतीत अतुल्य सत्ता को ही अपने अन्त: में लक्ष्य करता था। स्वसाधना द्वारा तल्लय (तल्लीन) हो जाता था किन्तु विकास के दूसरे चरण में ही इस साधना में भी पौराणिक आश–विश्वासों का समावेश हुआ। तब काली, भैरव, गणेश, हनुमान आदि की प्रतिमायें मठों में स्थापित होने लगी। गोरखपुर श्री गोरक्षनाथ मन्दिर के प्राङ्गण में उक्त सबकी भी हैं यहाँ के सबका यह विश्वास है कि त्रेता में अश्वमेध यज्ञ में भगवान राम ने और द्वापरान्त में धर्मराज युधिष्ठर ने भगवान श्री गोरक्षनाथ को अपने–२ यज्ञ में आमन्त्रित किया था तथैव श्रीकृष्ण रुक्मिणी का कंकण बन्धन भी गोरक्षनाथ जी ने सिद्ध किया।

विशेष–महायोगेश्वर अवधूत शिरोमणि श्री गोरक्षनाथ तथा अवधूत दत्तात्रेय ने अपने को अतिर्वाश्रमी माना है।

।। षष्ठम पुष्प समाप्त ।।

❋ अथ सप्तम पुष्प ❋

ॐ काराय नमोनमः।।

नवनाथों के नाम और ध्यान–

ज्योतिःस्वरूप ओ३ङ्कार आदिनाथो महेश्वरः।
गौरीशक्तिक्षमारूपा सा ख्यातोदयनाथतः।।१।।

अपां स्वरूपो ब्रह्माऽसौ सत्यनाथः सुविश्रुतः।
विष्णुस्तेजः स्वरूपः सन्तोषनाथ इतीरितः।।२।।

शेषनागो धराधरोऽचलनाथ उदाहृतः।
नभरूपोगणेशश्च गजकंथडिरुच्यते।।३।।

बनम्पतिस्वरूपोऽसौ चतुरंगी च चन्द्रमा।
मायास्वरूपो मत्स्येन्द्रः करुणामय इतीरितः।।४।।

ज्योतिःस्वरूपत्र्यक्षश्च गोरक्षोऽयोनिशंकरः।
नवनाथाः समाख्याताः संमानिताः सुयोगिभिः।।५।।

नव नाथान् नमस्कृत्य नवशक्तिसमन्वितान्।
नवरात्रे क्रियात्पूजां नवद्वारेऽत्रमन्दिरे।।६।।

ये नवनाथों के नाम नाथ सम्प्रदाय की धारणा के अनुरूप स्वरूप सहित हैं।

प्राणतोषिणी ग्रन्थ में इन ही नामों को रूपान्तर से कहा है और श्री गोरक्षनाथ जी को विमलानन्दनाथ कहा है

यथा–परमानन्दनाथश्च प्रकाशानन्दनाथकः।
कुलेश्वरानन्दनाथः लोकेशानन्दनाथकः।।१।।
भुजगानन्दनाथश्च सहजानन्दनाथकः।
गाङ्गतानन्दनाथश्च श्री लोकानन्दनाथकः।।२।।
विमलानन्दनाथश्च नव नाथाः प्रकीर्तिताः।।३।।

नवनाथ नाम	—	और स्वरूप
१. श्री आदिनाथ (शिव)		ओङ्कार स्वरूप
२. श्री आदिशक्ति भवानी (उदयनाथ)	—	क्षमा स्वरूप
३. सत्यनाथ (ब्रह्मा)	—	जल स्वरूप
४. सन्तोषनाथ (विष्णु)	—	तेज स्वरूप
५. मत्स्येन्द्रनाथ (सिद्धनाथ)	—	माया स्वरूप
६. गोरक्षनाथ (सदाशिव)	—	सच्चिदानन्द स्वरूप
७. अचलनाथ (शेषनाथ)	—	धरा स्वरूप
८. कन्थड़िनाथ (गणेश)	—	नभ स्वरूप
९. चौरंगीनाथ (पूर्णनाथ=पूर्णभक्त)	—	चन्द्रमा स्वरूप

शिवगोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ सम्प्रदाय के द्वादश पन्थों के प्राचीन चौरासी सिद्ध व गुरु शिष्य प्रणाली

सं०	गुरु के	शिष्य	शिष्य का प्रदेश
१.	आदिनाथ	ज्वालेन्द्रनाथ	पंजाब
२.	गोरक्षनाथ	कपिलनाथ	गंगासागर
३.	गोरक्षनाथ	विचारनाथ (भर्तृहरि)	उज्जैन
४.	ज्वालेन्द्रनाथ	शृंगेरीपानाथ (गोपीचन्द)	बंगाल
५.	गोरक्षनाथ	बालगुंदाईनाथ (लक्ष्मण)	उ०प्र०
६.	गोरक्षनाथ	बालकनाथ (डीवटनाथ)	जम्बु
७.	गोरक्षनाथ	रत्ननाथ	नेपाल
८.	गोरक्षनाथ	धर्मनाथ	उ०प्र०
९.	कपिलनाथ	चन्द्रनाथ (चांदनाथ)	बंगाल
१०.	गोरक्षनाथ	शुकदेवनाथ	द्वीपविशेष
११.	गोरक्षनाथ	खेचरनाथ	पुंछ
१२.	गोरक्षनाथ	गंगानाथ	द० भारत
१३.	गोरक्षनाथ	लंकनाथ (रैवणनाथ) रावण	लङ्का
१४.	गोरक्षनाथ	रामनाथ	उ०प्र०
१५.	आदिनाथ	सनकनाथ	चक्रवर्ती
१६.	गोरक्षनाथ	नागार्जुन	तिब्बत
१७.	आदिनाथ	सनातननाथ	चक्रवर्ती
१८.	आदिनाथ	सनन्दननाथ	चक्रवती

सं०	गुरु के	शिष्य	शिष्य का प्रदेश
१९.	आदिनाथ	सनत्कुमार	चक्रवर्ती
२०.	गोरक्षनाथ	सारस्वताईनाथ	फ्रण्टियर
२१.	गोरक्षनाथ	वीरबंकनाथ	ऋषिमुक
२२.	गोरक्षनाथ	धुन्धकारनाथ	चक्रवर्ती
२३.	श्री मत्स्येन्द्रनाथ	मञ्जुनाथ	कदलीमठ
२४.	लंकानाथ	भद्रनाथ	भद्रदेश
२५.	लंकानाथ	मद्रनाथ	मद्रदेश
२६.	गोरक्षनाथ	वीरनाथ	पंजाब
२७.	गोरक्षनाथ	चर्पटनाथ	चम्बा
२८.	चौरङ्गीनाथ	सूर्यनाथ	पंजाब
२९.	चक्रनाथ	वक्रनाथ	फ्रण्टियर
३०.	विचारनाथ	प्रौढ़नाथ	अज्ञात
३१.	विचारनाथ	भूचरनाथ	हजारा
३२.	मत्स्येन्द्रनाथ	सिद्धासननाथ	द० भारत
३३.	गोरक्षनाथ	माणिकनाथ	उ० भारत
३४.	श्री गोरक्षनाथ	अडबंगनाथ	उ० भारत
३५.	गोरक्षनाथ	पाणिनाथ	काबुल
३६.	मत्स्येन्द्रनाथ	तारानाथ	पञ्चनद
३७.	मत्स्येन्द्रनाथ	गौरवनाथ	बिहार
३८.	मत्स्येन्द्रनाथ	कालनाथ	कुल्लु
३९.	गोरक्षनाथ	गोरनाथ	गोर देश का

सं०	गुरु के	शिष्य	शिष्य का प्रदेश
४०.	गोरक्षनाथ	मल्लिकानाथ	द० भारत
४१.	आदिनाथ	मार्कण्डेयनाथ	उ० भारत
४२.	गोरक्षनाथ	गेहल्लारावलनाथ	प० भारत
४३.	गोरक्षनाथ	हवाईनाथ	प० भारत
४४.	गोरक्षनाथ	प्रकाशनाथ	प० भारत
४५.	निवृत्तिनाथ	ज्ञानेश्वर	महाराष्ट्र
४६.	गोरक्षनाथ	गहनीनाथ	द० भारत
४७.	गौरवनाथ	मेरुनाथ	बिहार
४८.	ज्वालेन्द्रनाथ	कानिपानाथ	राजस्थान
४९.	आदिनाथ	विरूपाक्षनाथ	द० भारत
५०.	चर्पटनाथ	बिलेशय	पर्वतीय
५१.	मत्स्येन्द्रनाथ	शाबरनाथ	बंगाल
५२.	दरियानाथ	सिद्धबुधनाथ	फ्रण्टियर
५३.	गोरक्षनाथ	एकनाथ	द० भारत
५४.	विचारनाथ	कायनाथ	प० पंजाब
५५.	गोरक्षनाथ	दरियावनाथ	फ्रण्टियर
५६.	गोरक्षनाथ	दयानाथ	गिरिनार
५७.	घोड़ाचोलीनाथ	शीलनाथ	पूर्वी पंजाब
५८.	गोरक्षनाथ	वरदनाथ	उ०प्र०
५९.	ब्रह्माईनाथ	नरमाईनाथ	हरियाणा
६०.	नरमाईनाथ	श्री मस्तनाथ	राजस्थान हरियाणा सीमांत
६१.	गोरक्षनाथ	कणकाईनाथ	बंगाल

सं०	गुरु के	शिष्य	शिष्य का प्रदेश
६२.	गोरक्षनाथ	भुसकाईनाथ	बंगाल
६३.	श्रुताईनाथ	भगाईनाथ	कुरुक्षेत्र
६४.	भगाईनाथ	मनसाईनाथ	मथुरा
६४.	आदिनाथ	मीननाथ	कशमीर
६५.	बालनाथ	सुरानन्दनाथ	डुग्गर
६६.	रत्ननाथ	कोरण्टकनाथ	फ्रण्टियर
६७.	निरञ्जननाथ	सिद्धपादनाथ	हिमालय
६८.	गोरक्षनाथ	अल्लामनाथ	फ्रण्टियर
६९.	मत्स्येन्द्रनाथ	प्रभुदेवनाथ	सी.पी.
७०.	चौरंगीनाथ	काकचण्डीनाथ	कश्मीर
७१.	मत्स्येन्द्रनाथ	नारदेवनाथ	महाराष्ट्र
७१.	ज्वालेन्द्रनाथ	टिण्टिणिनाथ	द० भारत
७१.	शृंगेरीपानाथ	घोड़ाचोलीनाथ	उ०प्र०
७२.	रामनाथ	पिप्पलनाथ	प्रयाग
७३.	सत्यनाथ	याज्ञवल्क्यनाथ	प्रयाग
७४.	गोरक्षनाथ	सूरतनाथ	पंजाब
७५.	गोरक्षनाथ	औघड़नाथ	महाराष्ट्र गरनारगिरि
७६.	कणकाईनाथ	सहजाईनाथ	बंगाल
७७.	भुसकाईनाथ	लधाईनाथ	म०प्र०
७८.	गोरक्षनाथ	ऋद्धिनाथ	द० भारत
७९.	अल्लामनाथ	धीरनाथ	अज्ञात
८०.	प्रभुदेवनाथ	प्रकाशनाथ	इन्द्रप्रस्थ

सं०	गुरु के	शिष्य	शिष्य का प्रदेश
८१.	गोरक्षनाथ	राधानाथ	उ०प्र०
८२.	नारदेवनाथ	परमानन्दनाथ	द०पं०
८३.	बालकनाथ	गरीबनाथ	कांगड़ा

यह कुछ एक सिद्धों की गुरु शिष्य परम्परा है।

श्री नाथ सम्प्रदाय के चौरासी सिद्धों की नामावली

१. ज्वालेन्द्रनाथ
२. कपिलनाथ
३. विचारनाथ
४. बालगुंदाईनाथ
५. कानीपानाथ
६. श्रृंगेरीपानाथ
७. रत्ननाथ
८. श्री महासिद्ध मस्तनाथ
९. धर्मनाथ (धोरम)
१०. चन्द्रनाथ
११. शुकदेवनाथ
१२. खेचरनाथ
१३. भुचरनाथ
१४. गंगानाथ
१५. गेहरावलनाथ
१६. लंकानाथ
१७. रघुनाथ
१८. सनकनाथ
१९. सनातननाथ
२०. सनन्दननाथ
२१. नागार्जुननाथ
२२. सनत्कुमारनाथ
२३. वीरबंकनाथ
२४. धुन्धुकारनाथ
२५. श्री मञ्जुनाथ
२६. भद्रनाथ
२७. गोरक्षनाथ
२८. वीरनाथ
२९. चर्पटनाथ
३०. चक्रनाथ

३१. वक्रनाथ	३२. प्रौढ़नाथ
३३. सिद्धासननाथ	३४. माणिकनाथ
३५. लोकनाथ	३६. पाणिनाथ
३७. तारानाथ	३८. गौरवनाथ
३९. गोरनाथ	४०. कालनाथ
४१. मल्लिकानाथ	४२. मारकण्डेयनाथ
४३. ज्ञानेश्वरनाथ	४४. निवृत्तिनाथ
४५. गहनीनाथ	४६. मेरुनाथ
४७. विरूपाक्षनाथ	४८. बिलेशयनाथ
४९. शाबरनाथ	५०. दरियावनाथ
५१. सिद्धबुधनाथ	५२. कायनाथ
५३. एकनाथ	५४. शीलनाथ
५५. दयानाथ	५६. नरमाईनाथ
५७. भगाईनाथ	५८. ब्रह्माईनाथ
५९. श्रुताईनाथ	६०. मनसाईनाथ
६१. कणकाईनाथ	६२. भुसकाईनाथ
६३. मीननाथ	६४. बालकनाथ
६५. कोरंटकनाथ	६६. सुरानन्दनाथ
६७. निरंजननाथ	६८. सिद्धपादनाथ
६९. चौरंगीनाथ	७०. सारस्वताईनाथ
७१. काकचण्डीनाथ	७२. अल्लामनाथ
७३. प्रभुदेवनाथ	७४. नारदेवनाथ

७५. टिण्टिणिनाथ	७६. पिप्पलनाथ
७७. याज्ञवल्क्यनाथ	७८. सूरतनाथ
७९. पूज्यपादनाथ	८०. पारश्वनाथ
८१. वरदनाथ	८२. घोड़ाचोलीनाथ
८३. हवाईनाथ	८४. औघड़नाथ

—※—

चौरासी सिद्धों से पश्चात् हुए कुछ नाथ सिद्धों की सूची तथा गुरु परम्परा

सं०	गुरु	शिष्य	शिष्य प्रदेश
१.	गेहलारावल	योगरावल	प० भारत
२.	योगयाम	यामरावल	प० भारत
३.	शीलनाथ	धीरनाथ	पंजाब
४.	काकचण्डीनाथ	आम्रनाथ	पंजाब हिमाचल सीमा
५.	ज्ञानेश्वरनाथ	सत्यामलनाथ	महाराष्ट्र
६.	सत्यामलनाथ	गैबीनाथ	महाराष्ट्र
७.	घोड़ाचोलीनाथ	चोलीनाथ	हिमालय
८.	चोलीनाथ	प्रेमनाथ	जम्बु
९.	हेठनाथ	माईनाथ	महाराष्ट्र
१०.	चम्पानाथ	अमृतनाथ	राजस्थान
११.	अज्ञातगुरु	सुन्दरनाथ	पंजाब

श्री नाथ सम्प्रदाय की कुछ नाथ सिद्धायें उनके गुरु

सं०	गुरु	शिष्य	शिष्य प्रदेश
१.	गोरक्षनाथ	चोलीपानाथ (विमलादेवी)	बंगाल
२.	निवृत्तिनाथ	मुक्ताबाईनाथ यह ज्ञानेश्वरनाथ की भगनी थी	महाराष्ट्र
३.	गोरक्षनाथ	मयनावती	उज्जैन

इस सिद्धा ने अपने बन्धु भर्तृहरि के बाद ही गुरु गोरक्षनाथ जी से दीक्षा–शिक्षा ले ली थी अत: यह योग से पूर्व ही परिचित थी तभी इसने गोपीचन्द्र को राजधानी में गये ज्वालेन्द्रनाथ जी से दीक्षा लेने को कहा था।

पूर्व नष्ट हुए पंथों के विवाद को पुनः नहीं चाहते

उक्त बारह पन्थों में से जो छ: शिव के कहते और छ: गोरक्षनाथ जी के कहे जाते हैं। इसी वाद–विवाद को जो पूर्वकाल में आचार्य गुरु गोरक्षनाथ जी ने खत्म किया था। मैं उसी वाद–विवाद को फिर से जगाना नहीं चाहता हूँ। किसी का इकट्ठा करना ही कठिन होता है बिखेरने में कुछ नहीं लगता और ना ही बिखरे छिन्न भिन्न हुओं का कोई बल, कीमत कदर ही रहते हैं अत: मैं तो केवल यही कह सकता हूँ कि जो शिव के हैं वे ही सम्मिलित गोरक्षनाथ जी के हैं तथैव जो गोरक्षनाथ जी के हैं वे ही सम्मिलित श्री आदिनाथ जी के १२ पन्थ हैं।

अन्यथा–गुरुमन्त्र तथा जपमंत्र की पृथक्ता की भी आपत्ति होगी किन्तु ऐसा है नहीं।

श्री आदिनाथ जी से महायोगज्ञान का प्रारम्भ हुआ जो उपर्युक्त सिद्धों में विकसित होता आ रहा है

परम सदाशिव, सदाशिव, आदिनाथ, गोरक्षनाथ ये सब पर्याय नाम हैं। एक परमसदाशिव में ही समय भेद से तथा कार्य के कारण भेद से स्वल्प–स्वल्प रूपान्तर प्रतीतिमात्र=कल्पनामात्र होता है। यथा नं० १–महाप्रलय काल में सर्वसंकल्प विकल्प रहित अडोल केवल सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमसदाशिव ही रहते हैं। नं० २–उसी में महाप्रलय काल का जब अन्त आता है तो साथ ही प्राणीमात्र की कर्मपाक उन्मुखता हो आती है। तब उसी परमसदाशिव में 'एकोऽहं बहुस्याम' मैं एक हूँ बहुत होउँ यह अहंभाव उसमें हो आता है। तब वही परमसदाशिव ही सदाशिव नाम से व्यवहृत हुआ। नं० ३–इसी प्रकार जब परमसदाशिव और सदाशिव जगद् रचनार्थ तथा जगद् व्यवहारार्थ चिच्छाक्ति भवानी तथा शिव पृथकरूप से मूर्तिममान हुए तब वे परमसदाशिव और सदाशिव ही दोनों आदिनाथ शिव शंकर आदिनाथों से व्यवहृत होते हैं महायोगविद्यादि कार्यों के प्रचार प्रसारार्थ। नं० ४–जब उस चिच्छाक्ति भवानी को यह अभिमान हो जाता है कि मेरे बिना शिव की सत्ता स्वतन्त्र नहीं है कि जिसके बल से शिव कुछ भी करने में समर्थ हो सके। तब भवानी के इस अभिमान की निवृत्त्यर्थ जब

शिव में संकल्प हो और महायोगज्ञान का जब–जब ह्रास हो, उस ह्रास को पुन: सम्पूर्णार्थ जब संकल्प हो तथा पुन: उस महायोगविद्या को सजग कर उस द्वारा देवदनुजनरों के कल्याण करने, महासंसार सागर से पार करने का जब संकल्प हो, तो तब सदाशिव ही समस्त मायाजालातीत गुरु गोरक्षनाथ रूप से मूर्तिमान होकर उमा के अहंकार को निवृत्तकर और महायोगज्ञान को सबल कर उक्त भक्तों का कल्याण करते हैं। वे साक्षात्सदाशिव सच्चिदानन्द स्वरूप ही हैं और महायोगविद्या के अध्यक्ष तथा महायोगेश्वर हैं जन्ममृत्यु रूप भवताप में दग्ध होते हुओं की महायोगज्ञान द्वारा मनुष्यादियों की रक्षा करते हैं इस परमाशश्वती रक्षा से अपने 'गोरक्ष' ईयत् नाम को सार्थक करते हैं इत्यादि रक्षाओं के करने वाले को गोरक्ष कहते हैं जो उमा भवानी तथा देव नर नारी किन्नर यक्ष राक्षसों आदि से भी अज्ञेय अगम्य हैं वही गोरक्ष हैं।

देवताओं के पूछने पर

हे देवाधिदेव! महादेव!! यह अनन्त पराक्रमी तथा महातेज पुञ्जात्मक कौन देवाधिदेव हैं? शंकर जी–

[१]'अहमेवास्मि गोरक्षो मद्रूपंत निबोधत।
योगमार्ग प्रचाराय मया रूपमिदं धृतम्।।

हे देवताओं! यह गोरक्ष मैं हूँ। मेरा रूप जानों क्योंकि योगमार्ग के प्रचारार्थ मैंने यह रूप धारण किया है।

महाज्ञान

महायोगविद्या, महायोगज्ञान, महाविद्या, अमरविद्या ये सब पर्याय

१. महा कल्पद्रुम तन्त्र

इस महाज्ञान के अध्यक्ष आद्य प्रचारक सदाशिव हैं यही आदिनाथ हैं। इसके उत्तर मत्स्येन्द्रनाथ जी गुरु गोरक्षनाथ आदि द्वारा सुदीक्षित होकर महासिद्धयोगी महासिद्धनाथ ब्रह्मज्ञानी हुए संसारार्णव से उत्तीरण हो गये हैं।

महायोग विद्या की विशेषता

इस विद्या द्वारा पूर्णमहासिद्ध योगी होकर यदि चाहें तो ऐहिक तथा पारलौकिक यथेच्छया सुख भोगों को भोगकर जब चाहे संसारार्णव को समुत्तीर्य कैवल्य लाभ कर सकता है उक्त आचार्यों के शिष्य महासिद्धनाथ, महासिद्धयोगी, ब्रह्मज्ञानी, सन्तुष्टात्मा हुए तथोक्त गुणसम्पन्न होने से उक्त नामों की उपाधियों से युक्त व्यवहृत होते थे।

महासिद्ध योगियों के शिष्य

जो सम्यक् प्रकार से योग का अधिकांश साधकर प्रशान्त आत्मा हो चुके हैं और शेषांश को साध रहे हैं वे सिद्धनाथ सिद्धयोगी ज्ञानी नामों से पुकारे जाते थे। जो स्वल्प योगसिद्ध नाथ योगी हैं तथा जो योग साधन कर रहे हैं वे केवल नाथ–नामान्त एवं योगीनामान्त उपाधि से युत होते हैं यथा–अमरनाथ, नागनाथ हैं। यह आदिनाथ मत्स्येन्द्रनाथ गुरु गोरक्षनाथ सम्प्रदाय के अनुवर्त्तियों की कथा है।

'इस विद्या के आचार्यों की उपाधि'

महायोगेश्वर आदिनाथ, महायोगेश्वर नित्यनाथ, महायोगेश्वर श्री गोरक्षनाथ हैं।

हठयोग के आसनप्राणरोधादिषडंग

[१]आसनं प्राणसंरोध: प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि वदन्तिषद्।।७।।

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, समाधि ये छ: योग के अंग हैं।

[१]आसनानि च तावन्तो यावन्तो जीवजातय:।
एतेषामखिलान् भेदान् विजानाति महेश्वर:।।८।।
चतुरशीतिलक्षाणामेकैकं समुदाहृतम्।
तत: शिवेन पीठानां षोडशोनं शतंकृतम्।।९।।

जितनी जातियां हैं उतने ही आसन हैं किन्तु सबके भेदों को शिव ही जानते हैं चौरासी लक्ष आसनों के भेद मनुष्यों से न जाने जायेंगे। ऐसा समझकर करुणामय शिव जी ने सर्वसाधारण के उपकार हेतु चौरासी (८४) आसन मात्र हठ योग शास्त्र में प्रकट किये हैं ये ही सबके सार हैं।।९।।

[१]आसनेभ्य: समस्तभ्यो द्वयमेतदुदाहृतम्।
एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम्।।१०।।

इन चौरासी आसनों में भी बहुत विस्तार होने से योग धारण करने वालों के उपकार हेतु दो ही आसन मुख्य हैं। सुगमता के लिए एक सिद्धासन दूसरा पद्मासन है।

महायोगेश्वर सिद्ध ज्वालेन्द्रनाथ जी

यह सिद्धराट् श्री आदिनाथ भगवान के शिष्य थे और सिद्ध

१. गोरक्ष पद्धति प्र० शतक

शृंगेरिपानाथ (गोपीचन्द्रनाथ) तथा कनेरीपानाथ आदि के गुरु थे और श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी के छोटे गुरुबन्धु थे अर्थात् गुरुभाई थे। यह प्रचण्ड मार्तण्डवत् देदीप्यमान अपरिमित योगबल सम्पन्न अयोनिज वृहद्रवा के पुत्रेष्टि तथा स्वर्गकामात्मकयज्ञ की यज्ञीय ज्वाला से जायमान राजकुमार था। यह महायोग ज्ञान के विशेषज्ञ और जालन्धर बन्ध के उद्‌भावक थे। यह ज्वाला से जायमान होने से ज्वाला ही वत् तेजस्वी थे। किसी की उष्णता को भी विशेष ज्ञात नहीं करते थे।

[१]तत्रादौ मरुदेशान्तदेशो जालन्धराभिधः।
कलशाचलनामाद्रिस्तत्र सन्तिष्ठते महान् ।।३।।

सर्वप्रथम मरुदेश के (मारवाड़) अन्तर्गत ज्वालेन्द्र नामक तीर्थस्थान है जहाँ कलशाचल नामक पर्वत विराजमान है। साधारण लोगों की वाणी पर ज्वालेन्द्र का जालन्धर, जालन्धरी नाथ ये नाम भी इसके प्रचलित हैं।

श्री मज्जालंधरीनाथः साक्षात्तत्रविराजते।
आरुह्य शिखरं तस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।।७।।

इस पर जालंधरनाथ जी साक्षात् विराजमान हैं। इसके शिखर पर जाने से नर जीवन मुक्त हो जाते हैं।

[२](पहले किया सो अब भुगतावै। जो अब करै सो आगे पावै।
जैसा दीजै तैसा लीजै। ताठै तन धन नीका कीजै)

(जालंधर नाथ का शब्द) अजपा जपना तप बिन तपना धुनि गहै

---

१. श्री नाथ ती०

२. ज्वालेन्द्रनाथ

धरिबा ध्यान। जो संहरं पाप प्रहारं ऐसा अद्भुत ज्ञान। ज्वालेन्द्रनाथ जी अपने शिष्य कणेरीपानाथ, गोपीचन्द्र को कह रहे हैं। मनुष्य ने पूर्व जन्मों में जो कर्म किये हैं उन्हों के फलस्वरूप जीवन तथा साधन उसको अन्य जन्मों में मिलते हैं। जो अब करेगा जैसा बीज बोयेगा वैसा फल पायेगा। मनुष्य के लिये श्रेयस्कर यही है कि विहित पुण्यकर्मों को करता रहे। निरन्तर अजपा मंत्र को जपता रहे यही सहज तप है इसी में तत्पर रहे। यही अद्भुत महायोगज्ञान है इसके प्रकाश से महान्धकार पाप पुञ्ज का नाश होता है। [१]'स्वामी बस्ती रहूँ तौ कन्दर्प व्यापै। जंगलि रहौं क्षुधा सन्तापै। आसणि रहूँ तो व्यापे माया। पथि चलूं तो छीजै काया। मीठा खाऊँ तौ व्यापै रोग। कहौं किसी परि साधूं योग। किसी परि=किस प्रकार। उत्तर—अवधू संजमी हार कन्दर्प नहीं व्यापै, नाम प्रसाद न क्षुधा सन्तापै। सिद्धासन नहीं लागे माया। नाद पयाणै न छीजै काया। जिह्वा स्वाद न लीजै भोग, मन पवन लै साधो योग। सत सिद्ध मते हो पार। न मरे योगी न ले अवतार (ना० सिद्धों की वां)

अवधूत लक्षण

अवधूत सिद्ध योगियों के सन्दर्भ में हमारे पुराणों शास्त्रादियों में वर्णित श्री मत्स्येन्द्रनाथ गुरु गोरक्षनाथ ऋषभदेव तथा दत्तात्रेयादि अवधूतों के जीवन वृत्तान्त योग साधन योग सिद्धियों का मूलोद्गम नाथ योगपन्थ रूप समुद्र ही परिलक्षित होता आ रहा है। नाथ योग के विश्व कोष (गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह) में कहा कि इस नाथ पन्थ सिद्धामृत माग में गुरु ही

१. शृंगेरीपानाथ का शब्द।

समस्त मंगलों का स्वरूप है और वह केवल अवधूत ही गुरु होने योग्य है। यथा—अस्मिन्मार्गे सर्वश्रेयोमूलभूतो गुरुदेव:, स: च अवधूत एव नान्य:। महायोगेश्वर गोरक्षनाथ जी ने अवधूत के निर्मल स्वरूप का सि० सि० प० में वर्णन कर उसके योग परक महनीय व्यक्तित्व का अत्यन्त मौलिक चित्रण किया है जो प्रकृति के पांच भौतिक देहगत आसक्ति तथा उससे सम्बन्धित धन पुत्र कलत्रादि के प्रति मोहादि भाव जन्य विकारों का अवधूनन कर अर्थात् त्याग कर देता है वही अवधूत कहा जाता है। यथा—य: सर्वान् प्रकृतिविकरान् अवधूनोतीति अवधूत:। एवं नाथ सम्प्रदाय में सिद्ध योगियों का यही अवधूत रूप सम्मानित है। सिद्धों की [1]तीन श्रेणियां कही गयी हैं। १. दिव्यौघ सिद्ध, २. सिद्धौघ सिद्ध, ३. मानवौघ सिद्ध। सिद्धौघ सिद्धों में सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आदि के नामों के साथ अवधूत दत्तात्रेय का नाम भी गिनाया है। यद्यपि अवधूत पञ्चम आश्रम होता है तथापि वह पूर्व चारों आश्रमों के प्रति यथेष्ट शास्त्र सम्मत सम्मान रखते हुए भी इन आश्रमों के धर्म कर्तव्यों से कहीं ऊपर उठकर के एकमात्र परमात्मा ही परमात्मा का सर्वत्र दर्शन करता है।

अन्य रीति से—

[2]आशापाशविनिर्भुक्तामादिमध्यान्तनिर्मलम्।
अनन्तानन्दब्रह्मज्ञ: अकारं तस्य लक्षणम्।। १।।

---

१. हरितायन सुमेधा की संग्रह रचना में (परशुराम कल्प सूत्र में) उक्त तीन प्रकार के सिद्धों का उल्लेख है।

२. अवधूत गीता

वासनावर्जिता येन वक्तव्यं च निरामयम्।
वर्तमानेषु वर्तेत वकारं तस्य लक्षणम्।।२।।
धूलिधूसरगात्राणि धूतचित्तनिरापदम्।
ध्यानधारणनिर्मुक्तंधूकारं तस्य लक्षणम्।।३।।
तत्त्वचिन्ता येन धूता चिन्ताचेष्टाविवर्जिता।
तमहङ्कारनिर्मुक्तं तकारं तस्य लक्षणम्।।४।।

अर्थ—जो आशापाश से सर्वथा मुक्त है जिसका आदि अन्त निर्मल है जो अनन्तानन्द स्वरूप ब्रह्म का ज्ञाता है। वह अकार लक्षणयुक्त है। जिसने विषय वासना का परित्याग कर दिया है जिसका वचन निर्दोष (सत्य) होता है जो वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार व्यवहार करता है वही वकार लक्षण लक्षित है। जिसका शरीर धूलिधूसरित है चित्त पवित्र एवं निर्द्वन्द्व है ध्यान धारण से निर्मुक्त होकर (अतीत होकर) ऊर्ध्व में स्थित है अर्थात् उन्मनी अवस्था में व्यवस्थित है। वह धूकर लक्षण वाला है जिसने तत्त्व प्राप्ति की चिन्ता समाप्त कर ली है सत्यस्वरूप का पूर्ण बोधरूप हो गया चिन्ता चेष्टा दोनों से निर्मुक्त है जिसमें अहंकार का लेशांश भी नहीं वह तकार लक्षण संयुक्त है। यही अवधूत शब्द का अर्थ और लक्षण है।

दत्तात्रेय की गणना नाथ सिद्धों में

[१]दत्तात्रेयादिसिद्धानां नव नाथास्तथैव च।
शंकरो गुरुरूपेण बोधिताश्चात्मतत्त्वभिः।।

अर्थ—दत्तात्रेयादिसिद्धों के नौ नाथ और शंकर जी ये उन्हों को

टि० १. पद्मपुराण तथा कपिल गीता

तत्त्वबोध कराने के कारण उनके गुरु माने जाते हैं। दत्तात्रेय जी अत्रि तथा अनुसूया के पुत्र थे।

केवल रसनेन्द्रिय पर वशीकार होने पर सर्वेन्द्रियों पर वशीकार होता है

[१]परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम्।
अनन्तदुःखमाप्नोति तद्विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः।।१।।
[२]यथारविः सर्वरसान्प्रभुङ्क्ते हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षः।
तथैव योगीविषयान्प्रभुङ्क्ते न लिप्यतेपुण्यपापैश्चशुधः।।२।।

परिग्रह दुःख का हेतु है जो–२ मनुष्यों का प्रियतम है उससे अनन्त दुःख को प्राप्त होता है वही विद्वान है जो अकिञ्चन है रवि जैसे सर्वरसों को खाता है। हुताशन भी सर्वभक्षी है तथैव योगी विषयों को भोगता हुआ पाप पुण्य से निर्मुक्त रहता है एवं नाथसिद्धों तथा दत्तात्रेय का योग सिद्धान्त और जीवन शैवनाथ योग परम्परा के अमृतरस से सिक्त है।

श्रीमान योगीराज भर्तृहरि

भर्तृहरि (विचारनाथ) अद्यतन मध्य प्रदेश नामक देश के उज्जयिनी नगर में इसकी राजधानी थी। कई सीमा सम्बन्धित राजा लोग इससे नतमस्तक थे। यह महाराज उपाधि से विभूषित थे। उस समय ये भारतवर्ष में संस्कृत व्याकरण तथा अनेक अन्य निगमागमों के अद्वितीय पारावारीण

१. श्री मद्भागवत–११।९।१
२. अवधूतोपनिषद्

विद्वान थे। गुरु गोरक्षनाथ जी की शक्ति से परिचित होने पर असार संसार के भोग सुखों को तृणवत् त्यागकर उनसे दीक्षा लेकर उनको गुरु रूप से स्वीकार किया। स्वयं को उनके अर्पण कर उनसे अमरता को प्राप्त कर महासिद्ध योगीराज विचारनाथ नाम से प्रसिद्ध सिद्ध हुआ।

प्राचीन भारत का इतिहास

इसके छोटे भ्राता विक्रमादित्य का समय निर्धारित होने से इसका समय स्वयं ही निर्धारित हो जाता है। उक्त इतिहास के पृष्ठ २३५ में यह प्रकरण है कि कई शताब्दियों से शक भारतीय राजनीति की एक विकट समस्या थे। तब उन शकों को हराने वाले का बहुत यश तथा पराक्रम माना जाता था तब सतावन ईसवी से पूर्व उज्जयिनी के [१]राजा विक्रमादित्य ने शकों को परास्त करके सम्वत् का प्रवर्तन किया। यहाँ केवल ५७ सतोजा सन् से पूर्व शकों को परास्त करके कहा है। यहाँ ५७ से पूर्व कहने से दो सौ या दो सौ से भी अधिक वर्षों का पूर्व ग्रहण हो सकता है।

यही राजा भर्तृहरि के लघु–बन्धु विक्रमादित्य हैं जिसको राज्य देकर आप वैराग्यार्णव में मज्जित हो गये थे और इसी विक्रमादित्य ने ही विक्रमी सम्वत् चलाया। इसी उज्जैन विक्रमादित्य के करीबन ३५० वर्ष

---

१. उक्त इतिहास का लेखक प्रोफेसर एस. सी. गुप्ता बी०ए० (ऑनर्स) एम०ए० इतिहास विभाग, एम०डी० कॉलिज सहारनपुर। इसका चतुर्थ संस्करण १९६९ में छपा।

प्रकाशक–राजहंस प्रकाशन मन्दिर धर्मलोक रामनगर, मेरठ (उ०प्र०)

बाद में हुए चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने भी पुनः गालब हुए शकों को परास्त करके उज्जयिनी के विक्रमादित्य के विरुद्ध (बराबरी) में विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी यह भी उक्त इतिहास का लेख है। इससे यह सिद्ध हुआ कि भर्तृहरि विक्रमादित्य से तीसरे चौथे क्रम से बड़े कहे जाते हैं। प्रेमदास ने नाथसिद्धों की वन्दना करते समय ब्रह्मरसभोगी इसे कहा है। यथा–नमोभर्तृयोगी ब्रह्मरस भोगी। मलिक मुहँमद जायसी पदमावत में लिखता है कि–

राजा भर्थरी सुना ज्ञानी जाके घर सोलह सौ रानी।
जोगिह कहा भोग सौ काजु। चाहै न धन धरनी और राजु।।

(पदमावत योगी खण्ड ६ । ४ । ६) भर्तृहरि की भगनी मयनावती गोपीचन्द्र की माता थी। यह भी भर्तृ के कुछ ही समय बाद में श्री गोरक्षनाथ से दीक्षा लेकर महासिद्धा हुई।

चीनी यात्री का लेख

चीनी यात्री इत्सिंग सातवीं शताब्दी ईसवी के दूसरे चरण में भारत में आये थे इसने कुछ समय नालन्दा विश्वविद्यालय में निवास किया था, उसने लिखा है कि धर्मपाल नालन्दा के प्रकाण्ड पंडित एवं कवि तथा दार्शनिक विद्वान थे। भर्तृहरिकृत–भर्तृहरिशास्त्र वाक्यपदीय, पातञ्जलि भाष्य की व्याकरण पर टीका। नालन्दा में सातवीं शताब्दी के दूसरे चरण में पढ़ाये जाते थे। विचारनाथ सिद्धदेह प्राप्त जीवनमुक्त योगीरूप में सम्मानित व्याकरण के नितान्त असन्दिग्ध महान् तत्त्वज्ञ थे।

गोरक्षसिद्धान्त संग्रह में, भर्तृहरि और शेषावतार नागेश का सम्वाद है कि विचारनाथ ने व्याकरण पर एक लाख कारिका बनायीं। तो नागेश इस रचना को जानकर सिद्ध विचारनाथ के पास उपस्थित हुए अचिन्त्यकृति कारिकाओं के दर्शन कर विस्मित हुए सिद्धराज विचारनाथ जी से बोले कि मैं आपकी प्रतिभा की कृति पर प्रसन्न हूँ। मुझसे जो वर चाहिए मांगों! तब विचारनाथ जी बोले कि मुझे आपके दर्शन करके ही महती प्रसन्नता है क्योंकि यावत्सांसारिक उपलब्ध भोगों को तो मैं पूर्व त्याग करके नाथमार्ग में आया हूँ। अब यदि मोक्ष की चाहना होगी तो वह इस अवध्ूत भाव में सिद्ध ही है एवं सुनकर।

[1]तदा शेषोऽसन्तुष्टो भूत्वा ममापमानः कृतो यतः शापं ददिम भवदीयकारिकाः प्रसिद्धा न भविष्यन्तीति तदावधूतेनाप्युक्तं त्वदीयकृतं व्याकरणशास्त्रं कलौवृत्यर्थ भविष्यति। पुनर्यत्र कुत्रापि स्थले ससंशयं भविष्यति तदा कर्मकारिकां विना निर्णयो न भविष्यतीति। एवं नागेश ने अपना अपमान जान कर विचारनाथ जी को शाप दे दिया कि कारिकायें प्रसिद्ध नहीं होगी। जो भी क्रिया व कार्य कठिन होता है वह प्रसिद्ध भी कम ही होता है यह तो सभी का अनुभव है। तब सिद्धराज विचारनाथ ने भी प्रत्युत नागेश (पतञ्जलि) को शापित कर दिया कि तुम्हारे द्वारा रचित शास्त्र व्याकरण वृति के लिये ही होगा अर्थात् जहाँ कहीं भी संशय होगा वहाँ मेरी कारिकाओं के बिना निर्णय नहीं होगा। [2]सतगुरु सब्दै सोधा भरथरी गुरु

१. सि० सं० प०

२. देश—देश की भाषा में सिद्धों की वाणियाँ

गोरक्षवचन प्रवाण जी। भर्तृहरि की विशिष्टता में यह तथ्य है कि उनके गुरु गोरक्षनाथ जी थे उसका यह कथन है कि मैंने जो सिद्धमार्ग में शब्द की साधना कर सिद्धि पाई है इसमें मेरे गुरु गोरक्षनाथ जी के वचन ही प्रमाण भूत हैं। किसी–किसी ग्रन्थ में ये भर्तृहरि चार भ्राता कहे गये हैं। किन्तु यह तो निर्विवाद ही है कि प्रथम राजगद्दी पर यही सुशोभित हुए थे सबसे बड़े भी थे इसी ने विक्रमादित्य को राजगद्दी में अभिषिक्त होने की आज्ञा दी थी। जब श्री गोरक्षनाथ के चरणकमलों की चमत्कृतियों की उपलब्धि के लिये व्याकुल हो गये थे। उस समय यह उनके मुख से निःसृत है।

[१]भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्।
मौनेदैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयम्।।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयम्।
सर्वंवस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।।१।।

अर्थ–सरल। एक सौ आठ राजा इनके पादपद्मों में नतमस्तक थे।

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्चदूरे जरा।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नोमहान्।
प्रदीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।२।।

१. वैराग्य शतकम्

अर्थ—विचारनाथ जी कहते हैं कि जब तक अपना शरीर पुष्ट स्वस्थ है इन्द्रियां सशक्तिक हैं आयुर्वार्द्धकता से ग्रसित नहीं हैं तभी से बुद्धिमान को चाहिए कि अपने कल्याणार्थ प्रयत्न करें और घर में आग लगने पर कूप का खोदना व्यर्थ होता है।

आदित्यस्य गतागतै रहरहस्संक्षीयते जीवनम्।
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते।।
दृष्टवा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते।
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।।

(वै० श० ७)

प्रतिदिन सूर्योदय अस्त से जीवन क्षय हो रहा है। विविध कार्यों के भार गुरुत्तर अनेक व्यापारों से समय जा रहा है जो प्रतीत नहीं हो रहा एवं जन्म—मरण विपत्तियों को देखकर भी चित्त में भय नहीं हो रहा। संसार मोहमयी प्रमादरूपी मदिरा को पीकर उन्मत्त सा हो रहा है। एक लख चन्दा दोइ लष भाण। बेधना मृघ गगन स्थान। वेध्या मृग न छाडै पास। भणत भरथरी गोरक्ष का दास। सतगुरु सबदूं राजा भरथरी सीधारे। गुरु गोरक्ष वचन प्रवाणं जी।। ये हिन्दी सुक्तियां भर्तृ की हैं।

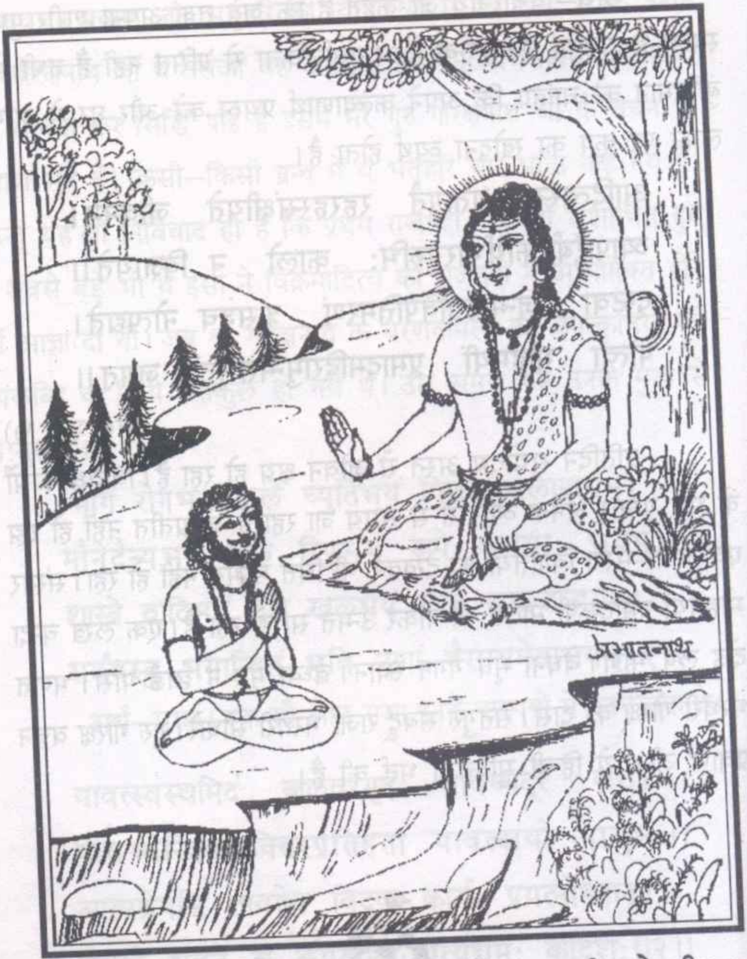

श्री गोरक्षनाथ जी द्वारा सिद्ध चर्पटनाथ जी को दीक्षा तथा चर्पटनाथ जी द्वारा चर्पटवनी को बनाना

योगीराज सिद्ध चर्पटनाथ जी

प्रेमदास की सिद्ध वन्दना में चर्पटनाथ जी को ज्ञानी गुरु के रूप में नमस्कार किया है (नमो चर्पटरायं गुरु पायं) चर्पटनाथ जी नाथ सम्प्रदाय में महात्यागी वैरागी सिद्ध थे जो दिखावा मात्र पाखण्ड खण्डन करने में प्रसिद्ध थे। बाह्य अभ्यन्तर समान रूचि वाले थे उनकी उक्तियों से सिद्ध होता है कि जो उनके मन में वही उनकी वाणी में और जो उनकी वाणी में वही उनके मन में होता था। इन दोनों में जो होता था वही कार्यान्वित में लाते थे। चर्पटनाथ का जन्म चम्पा राज्य का मुख्य नगर चम्पा ही बहुमतों से स्वीकृत है। यह रसशास्त्र विशेषज्ञ रसेन्द्र रासायणिक थे वह चम्पा के राजाधिराज साहिल्लदेव के अध्यात्मिक गुरु भी थे चर्पटनाथ के आशीर्वाद से साहिल्लदेव को सन्तान प्राप्त हुई थी। यह भी गुरु गोरक्षनाथ जी के प्रधान शिष्यों में से एक था और चौरासी सिद्धों में भी प्रसिद्ध हैं चम्पा में इनका मन्दिर भी है। संस्कृत हिन्दी दोनों में इनकी कवितायें हैं संस्कृत में इनकी चर्पट मञ्जरि चर्पटशतक भी है हिन्दी में चर्पट शब्दियां इनकी कृतियां हैं।

सिद्ध चर्पटनाथ की शब्दियां

किसका बेटा किसकी बहू आप सवारथ मिलिया सहू।
जेता फूला तेता काल चरपट कहै ए सऊँ आल जंजाल।।

(नाथ सि० वा० १४२)

इक पीतपटा इक लम्बजटा, चरपट कहे सगले स्वांग नटा।
इक जग कहिये भस्म छटा, जउ लेउ नहीं चीनै उलटि घटा।।

(२०१ शब्दी)

शब्दी में उल्टी घटा का तात्पर्य है विपरीत करणी मुद्रा द्वारा सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत पान की ओर लक्षित है। उक्त चिन्हों की सार्थकता तभी होती है जब साधक साधना द्वारा आत्म स्वरूप को जान लेता है। अन्यथा सर्व बाह्य चिन्ह नटों का स्वांग ही है। इह संसार काटों की बाड़ी निरख–निरख पगु धरना। चरपटु कहै सुनहु रे सिद्धों हठि करि तपु नहीं करना। ढील कसौटी मन भंग फिरै। षाया जरै न वाचा फुरै। ता कारणि मुँहु करि–करि भरै। चरपट नाथ जी कहते हैं कि पेट ही भरना लक्ष्य है जिनका और चार–पाँच चेले चपटे बनाकर और नीले लाल पीले वस्त्र धारकर और कै प्रकार के बाह्य चिन्ह बनाकर पेट भरने का ही साधन है। एक सेत पटा एक नील पटा। एक टंसर कंटीला लम्बजटा। पन्थ छाड़ि मन उबट वटा। चरपट कहै ये पेट नटा। नाथ कहावें सकें न नाथी। चेला पन्च चलावें साथी। मांगे भिक्षा भरि–भरि खाहिं। नाथ कहावै मरि–मरि जांहि। ना० सि० वा० १४६–१४९।

चर्पटनाथ द्वारा रासायण कथन

पंचसरसाही गन्धक लेहू। पारा सरसाही तिन्न लेहू। १ तोला गोरोचन पावै। चार दूध तिह माहि खपावै। दूध–दूध का क्या–क्या नाऊ। चरपट इह विधि कहै सुभाऊ। जब सेर अढ़ाई दूध खपाऊ। तब हिया में तत्त समाई बकरी ऊठनी गाय अरु भेड़। सतगुरु सहज बताई खेढ़। चारि दुग्ध गन्धक माहीं सुखाई। ताके गुण क्या कहो सुनाई। सूखे करके शीशी पायई। बालु यन्त्र से तेल चुवाई। रत्ति तोला ताम्ब में देइ। तत्तकाल कञ्चन कर लेइ। झोला होइ सुपेटहिं खाइ। चरपट कहै रोग तब जाइ।

अन्य शब्दियां—विभूति न लगाऊँ जि उतरि—उतरि जाई। खर जिउं धूरी लेटे मेरी बलाई। सेली न बान्धों लेवों न म्रिगानी। ओडउँ ना कन्था जो होइ पुरानी। पत्र न पूजो उड़ान उठावो। कुत्त नियाई मांगन न जावो। रूप बिरष गिरकन्दलि वासा। पलटै काया खण्डै रोगासा। चरपट कहै धनि धनि यह जोगु। जिहिं साधि बिनसै भवरोगु। चरपट कहै सुनो रे अवधूत। कामनी संग न कीजै। जिन्द विन्द नौ नाड़ी सोषै। दिन—दिन काया छीजै।

चरपट नाथ जी का उपदेश है कि भूलकर स्त्री का संग न करे इससे शरीर का आधारूप वीर्य का नाश होकर शरीर मृत्यु का ग्रास हो जाता है इसलिये वीर्य रक्षा परमावश्यक है। भर्तृहरि चरपट गोपिचन्द। विदौ आत्मा परमानन्द। छाड़ौ खीर खांड बहु भोग। लागौ आत्मा साधौ योग। यदि उक्त इन स्त्री आदि भोगों में कोई तत्त्व सुखद या कल्याणकर होता तो भर्तृ आदि राजा भोगों को छोड़कर आत्मतत्त्व के ज्ञानार्थ व्यस्त क्यों होते।

चर्पटनाथ जी का दिव्य चमत्कार

पूर्व समय पञ्चाल देश के जिला गुरुदासपुर के कटारू चकगाम के एक खेत में किसी वृक्ष की छाया में आकर बैठ गये तो इतने में उस खेत को जोतने वाले भी आ गये जब जोतते—जोतते खेत को चरपटनाथ के पास आ गये तो उन्होंने कहा यहाँ से उठ जाओ तो वह मौन साधे बैठे रहे। तब खेत वालों ने चर्पटनाथ के ऊपर ही बैलों को चढ़ाते हुए बार—बार खेत को जोता। बाद में उन्होंने फिर सुहागा (मेहड़ा) जोड़ा तो भी चर्पटनाथ न उठा तो इसके ऊपर से सुहागे को निकालते रहे और उसके

आगे–आगे लुड़कते–लुड़कते कहीं कोनियाँ कहीं घुटने जमीन में धसते रहे और जहाँ–जहाँ वे धसे वहाँ–वहाँ से जमीन में से जल निकल आया जो तभी से अभी तक निरन्तर बह रहा है। पुन: जब रात्रि हुई तो खेत वाले घर को चले गये तो सिद्ध ने अपनी ऐसी योगमाया रची कि जहाँ खेत में बैठे हुए का उन्होंने अपमान किया था उस खेत में तथा आस–पास की भूमि में पर्वतीय प्रदेश के बड़े–बड़े वृक्ष उखड़–उखड़ करके अन्तरिक्ष मार्ग से आकर वहाँ स्वयं लगने लग गये। इतने संगठित होकर लगे कि जिसके बीच में बिलाव को भी भ्रमण करना कठिन था और ऊँचाई भी अस्सी नब्बे फुट तकरीबन थे। इस प्रकार रात्रि के १० बजे से लेकर ४ बजे तक ३० एकड़ में भयंकर वन बना दिया दिन में भी उस वन के पास खड़े होने से डर लगता है। अब भी इसमें यदि कोई दिन में प्रविष्ट होवे तो बड़ी सावधानी से देखने पर सूर्य के दर्शन होते हैं। वहाँ अन्धेरा सा ही रहता है उसी रात्री के चार–पाँच बजे जब फिर उस ओर की भूमि को जोतने वाले बैलों को लेकर खेतों की ओर गाँव से निकले तो उनको अन्तरिक्ष में बड़े जोर से सां–सां की आवाज आई तो ऊपर देखते हैं कि बड़े–बड़े पर्वताकार वृक्ष आकाश मार्ग से आ रहे हैं। जिन्हों के अतिशीघ्र गति के वेग की आवाज आ रही है तब वे दृष्टा लोक एक दूसरे से अन्धेरे में कह रहे थे ओ रे देखो वो क्या आ रहे हैं। तब उनके ऐसा कहने से जो वृक्ष जहाँ–जहाँ आ रहे थे वे वही भूमि पर उतर कर भूमि में गड़ गये और जितने एरिया में वन बन चुका था उतने में ही सिद्ध ने रोक दिया। अभी तक बिना नाथ साधु के कोई उस ३० एकड

की बनी में से दातुन जितनी भी लकड़ी नहीं तोड़ता यदि तोड़े तो उसकी कोई न कोई क्षति हो जाती है। इस वनी का नाम चर्पटवनी है।

चर्पटवनी का परिवर्तन

अब वर्तमान महन्त ने वनी का मध्यभाग काट कर उसमें बाग लगा दिया है और बुवाई का काम लेने लग गये हैं। अच्छे–अच्छे मकान बन रहे हैं जहाँ सुहागे के आगे लुड़कते हुए चर्पटनाथ के घुटने भूमि में धसने से पानी निकल आया था वहीं तीन बहुत स्वच्छ कुण्ड पक्के बने हुए हैं। उनमें तालाब की तरह सीढ़ी भी बनी हुई हैं। जिनमें से स्वयं ही पुराना जल निकलता रहता है हर समय और नवीन जल नीचे से आता रहता है। ये कुण्ड–रुद्रकुण्ड, विष्णुकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड इन तीन नामों से कहलाते हैं। ये उक्त क्रम से एक लाइन में हैं। बच्चे जो रुग्ण हैं उनको हर रविवार को वहाँ लोग आकर कुण्डों में स्नान कराते है ओर भी कई रोगी वहाँ स्नान कर स्वस्थ होते हैं। जिन्होंने नाथ जी का अपमान किया था उनके सब खेत भयंकर वन बन गये थे तो जब मुनेर सार खेतों में हल लेकर लोग आ रहे थे तो ऊपर साँ–साँ शब्द सुनकर ऊपर देखकर बाद में अपने खेतों की ओर दृष्टिपात की तब वन ही वन देखा तो वापिस गांव को लौट गये और अपने कर्तव्य का फल समझ गये परन्तु अब क्या हो सकता था उस बनी के स्वामी चर्पटनाथ जी हो गये। यहाँ विष्णु कुण्ड के पास शिव मन्दिर है मन्दिर के साथ सिद्ध चर्पटनाथ जी की चरण पादुकायें हैं। मन्दिर के समक्ष एक खुले मकान में चर्पटनाथ जी का धूना है। यह स्थान अत्यन्त रमणीय सुन्दर है इस स्थान और वन में अनेकों प्रकार के पुष्प फलों के वृक्ष हैं। सहज निर्झरों आदि ने सोने में सुगन्ध

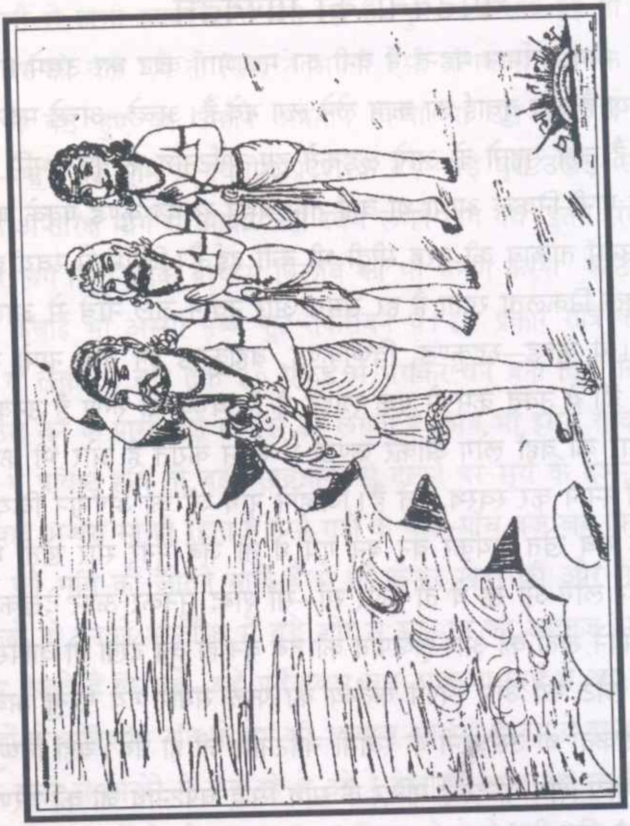

परशुराम जी द्वारा कदरीमठ में पत्रदेव की स्थापना

कर रखी है। भावुक लोग आकर अपनी भावना को पूर्ण करते हैं यह सब सिद्धराज की माया तथा कृपा है।

प्राचीन कथानक

व्यक्तिगति रोषातोष से परशुराम ने २१ बार क्षत्रियों से भूभाग रिक्त कर दिया था। सहस्रबाहु को भी मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की किन्तु अशान्तान्त: में से भेदभाव द्वेषबुद्धि फिर भी दूर न हुई। हिंसा उनके लिये अकिञ्चनकर सी हो गयी थी। अन्ततोगत्वा उनको अपनी क्रूर मनोवृत्ति पर किसी दैवयोग से कुछ विचार आकर अपनी निर्लज्ज हिंसा पर घृणा पैदा हुई। यथा–

[१]जामदग्न्येन रामेण यदा क्षत्रवध: कृत:।
तदास्य परमा जाता घृणा मनसि भामिनि।।

तब अपने पाप कर्मों के प्रायश्चित के लिये अनेक तीर्थ व्रतों को करता हुआ स्नान दान दर्शन स्पर्शन पावन स्थानों में करने लगा किन्तु हिंसा रूपी महापाप से हुई शक्ति के ह्रास से आत्म शान्ति न मिली, भ्रमण करता हुआ तीर्थराज त्र्यम्बकेश्वर की शरण में पहुँचा तो यह सिद्धपीठ नाथ सम्प्रदायिक सिद्धयोगीश्वरों से समाकुल था। इसकी सीमा में प्रविष्ठ होते ही आचार्यों और सिद्धों के दर्शन कर तथैव उनके उपदेशामृत कर्णों के पान से परशुराम की मानसिक अशान्ति एवं उसका चाञ्चलय अधिक सीमा पर्यन्त नष्ट हो गया। अब वह महासिद्धों तथा आदिनाथ आचार्यों के प्रभाव से प्रभावित हुए तो गोरक्षनाथरूप आदिनाथ

टि० १. स्क० प्र० ख० अ० १९९

का शिष्यत्व ग्रहण कर समस्त नाथ सम्प्रदायिक चिन्हों से समालंकृत हुआ नाथ सम्प्रदाय में प्रविष्ट हो परशुनाथ नामकरण हुआ। वह परम प्रसन्नता पूर्वक अशेष सादर से नाथ सम्प्रदायिक आदेशों का पूर्णतया पालन करने लगा। तब नाथ सिद्ध साधु अवधूतों ने जब सम्प्रदाय में दृढ़ निष्ठावान देखा जाना तो उस समय नासिक के कुम्भ के बाद जो वहाँ से तैयार होकर कदली मठ को पात्रदेव की झुण्डी की यात्रा जाती है। उस यात्रा में परशुनाथ से पात्र देवता उठवाकर उसे कदलीमठ का राजा घोषित कर अनेक महासिद्ध नाथ अवधूतों का समुदाय झुण्डी तैयार कर कदलीमठ यात्रा को चल पड़ा। जब कई मास के बाद कदलीमठ के पास पहुँचा तब सर्व नदीनदराजा=वारिधि ने देखा कि अनेकों महासिद्धनाथ अनन्त तेजोबल सम्पन्न नितान्त देदीप्यमान योगीश्वरों का समुदाय न जाने मेरी ओर को किमर्थ आ रहा है। मुझे कहीं आचमन में ही न ले लेवें, कहीं अपने कमण्डलुओं में ही न मुझे बन्द कर ले जावें, कहीं शापित ही न कर देवें एवं महासिद्धों के तेजपुञ्ज को तथा परशुनाथ द्वारा धृत पात्रदेव से हुए वृद्ध तेज को निरीक्ष्य त्रस्त सशंक हुए महार्णव ने सजीव स्वयं को कई योजन पर्यन्त समेत्य (संकुच्य=समेट) कर अनेक धन रत्नादियुक वसुन्धरा को सन्त्यज्य प्रत्यावर्तित हो गया। तब योगीराज राजा परशुनाथ ने सब सिद्ध समाज की समति से एकान्त रमणीय सद्य समुद्रजात स्वच्छ भूमि जानकर यात्रावसान किया एवं नदराज ने नाथसिद्धों को रिक्त किये स्थल में रुके देखकर आप भी बहुत दूरी पर जा स्थान कर दिया और आगे सरकना बन्द कर दिया, उधर राजा परशुनाथ ने सद्यजात रमणीय भूमि में पात्रदेव की स्थायी स्थापना कर दी। यह भूभाग

सौवर्ण क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है कर्णाटकी लोग परशुनाथ (परशुराम) सृष्टि भी इसे कहते हैं। यह सागर से प्राप्त भूमि उत्तर से दक्षिण को २५ योजन और पश्चिम से पूर्व को ४० योजन है, समुद्र से चार मील उत्तरीय तट से पीछे परशुनाथ (परशुराम) ने पात्रदेव की स्थापना की थी। वहाँ की जनता का कहना है कि परशुनाथ सवा सौ योजन भूमि का सम्राट माना जाता था। इसके राज्य में रावण भी पैर तक नहीं रखता था एवं नासिक के हर कुम्भ के बाद बारह वर्ष में यहीं से कदलीमठ के लिये नाथों का झुण्ड बनकर चलता है पैदल षण्मास में कदलीमठ में पहुँच पात्रदेव की स्थापना कर नया राजा (मठाधीश) नियुक्त झुण्डी की सम्मति से किया जाता है। वह राजा बनने वाला ही पात्रदेव को सर्व सम्मति से उठा कर कदली मठ तक ले जाता है वही वहाँ का मठाधीश होता है। उस क्षेत्र को जब सरीद्राज ने छोड़ा था तब कुछ बालु के उड़ने से और धुन्धुकार के रहने से सूर्य–चन्द्र के दर्शन भी नहीं होते थे तो प्राणीवर्ग उदासीनता में ही रहता था तब परशुनाथ (परशुराम) ने कदलीमठ में कठोर तप किया तो धुन्धुकार निवारणार्थ स्वयं गुरु गोरक्षनाथ जी मञ्जुनाथ ने परशुनाथ को वर मांगने को कहा तो परशुराम ने वर मांगा कि धुन्धुकार न रहकर संसार के जीवन सूर्य–चन्द्र के दर्शन समय–२ पर प्राणीवर्ग को होते रहें तब वैसा ही हुआ। कद्री मठ तुलु क्षेत्र परशुराम सृष्टि नाम से प्रसिद्ध है। तुलु की भाषा में मञ्जु धुन्ध को कहते हैं। त्र्यम्बकेश्वर से लेकर कदली पर्यन्त मार्ग में आने वाले समस्त मठों में मठाधीश नियुक्त करने का अधिकार यात्रियों की नाथ झुण्डी को ही होता है ऐसी प्राचीन मर्यादा है। दिग्दर्शन।

भगवान परमसदाशिव

भगवान परमसदाशिव के समस्त अवतारों में से उनके सर्व श्रेष्ठतम अवतार कामधेनु के दुग्ध से भी परम स्वच्छ एवं परम पावन चरित्र हैं जिसके वे सर्व गुणकला सम्पन्न परम स्वतन्त्र सर्वमूर्धनि नवनाथों में से अष्टनाथ देवों से परमादरित सर्वर्षि मुनि सिद्ध समाज सेवित निखल देवी–देवों से सम्माननीय भगवान विष्णु के अवतारों से स्तुत तथा अखिल नर–नारी नरेन्द्रों से पूजित सर्वचराचर द्वारा सादर से नमस्कृत और चिदचिदात्मिका जगदम्बा भवानी से अगम्य महायोगेश्वर भगवान श्री गोरक्षनाथ जी हैं।

सदाशिवरूप श्री गोरक्षनाथ जी

परम पावन विचित्र चरित्र वर्णन करना तो यावत् परमाणुमद्भूतों के परमाणुओं की ही गणना करना है जो समस्त प्राणीवर्ग से स्तुत होते रहने पर भी अस्तुत ही है। सबसे वर्णित होते रहने पर भी अवर्णनीय ही हैं किन्तु फिर भी परमेश्वर के प्रति स्वमन के प्रेम भरे उल्लासों को व्यक्त करने से सुखद शान्त प्रसाद उपलब्ध होता है। उनके कल्पवृक्ष रूप चरित्र सर्वकामना पूरक, चद्रवदाह्लादक, दिवाकर इव मोहाज्ञानान्धकार विनाशक, शुभमार्ग दर्शक हैं जिनका अवतरण सर्व वर्णाश्रमियों के धर्म कर्मों की व्यवस्थार्थ एवं सबके हित कल्याणार्थ हुआ, जिन्होंने देश एवं व्यक्ति की अवस्था स्थिति समय को देख समझ कर यथायोग्य उनकी अवस्था स्थिति के अनुरूप उनको नियुक्त होने का निर्देश दिया। वप्पा रावल की समय स्थिति को समझकर उसको और तद्वत् नेपाल नरेश वृथ्वीनारायण शाह को देश और उनके राज्यों की रक्षा के लिये खड्ग प्रदान किये। जिनको योग ज्ञान द्वारा सर्वजीवों का हित

कल्याण करना ही व्यसन है पर परमहित की ही क्षुधा पिपासा है जिनको पर परमोपकार का ही लोभ है जिनको ऐसे परम करुणामय गुरु गोरक्षनाथ जी ने विवेकमार्तण्ड में कहा–

द्विजसेवितशाखस्य श्रुतिकल्पतरोः फलम्।
शमनं भवतापस्य योगो भजत सत्तमाः।।१।।

द्विज विद्वानों द्वारा श्रुतिरूपी वेद की शाखाओं का जो परिशीलन किया गया उस श्रुतिकल्पतरु के अध्ययन का फल त्रिविध भवताप का शमन करने वाला योगरूप है। इसलिये हे सत्पुरुषों योग का सेवन (साधन) करो! इससे उनका आशय है कि इस स्वात्मोपलब्धि का निर्भ्रान्त सर्वोत्तम बलवत्तम निरतिशय साधन योग ही है इसी से तत्त्वज्ञान भी सर्वथा सम्भव है। इसके सिद्ध होने पर छुटपुट सन्ध्या वन्दन जप–तप दानादि उपकरण साधनों की योग सिद्धि योगी को कोई आवश्यकता नहीं होती।

ध्यान योगोपनिषद् में–

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं योजनान्बहून्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

योगयुक्तों की सन्ध्या–

न सन्ध्या सन्धिरित्याहुः सन्ध्या सन्धिनिर्गद्यते।
सुषुम्णासन्धिगः प्राणः सा सन्ध्या सन्धिरुच्यते।।

सन्ध्या सन्धि नहीं है ऐसा कहते हैं। सन्ध्या सन्धि है ऐसा भी कहते हैं किन्तु योग में प्राणायाम के सन्दर्भ में वर्णन है कि सुषुम्णानाड़ी में प्राण का प्रवेश ही (सन्धि) है, यही सन्धि संध्या है एवं अनेक प्रकार के क्रियाकलापों निखिलानिगमागमों को कण्ठाग्र करने मात्र से केवल शुष्क तर्क

वितर्क कुतर्कों से कोई लाभ नहीं है स्वस्वरूप संवेद्य के वेदन बिना। वह स्वस्वरूप संवेद्य कब सम्भव है? स्वप्राणमनोवृत्ति निरोध से। वह कब सम्भव है? जिज्ञासु को पूर्ण गुरु के संयोग एवं कृपा से। पूर्ण गुरु कौन है?

दृष्टिस्थिरा यस्य विनापि लक्ष्यं,
वायुस्थिरो यस्यविना प्रयत्नम्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं,
स एव योगी स गुरुः सः सेव्यः।।

बिना लक्ष्य के जिसकी दृष्टि स्थिर है बिना प्रयत्न किये ही जिसकी वायु स्थिर है और बिना अवलम्बन के जिसका चित्त स्थिर है वही योगी है वही गुरु है वही सेव्य है जो स्वयं अशान्त है वह अन्य को शान्ति कैसे दे सकता है जैसे कि शिला जो स्वयं तैरकर पार नहीं लग सकती वह शिला संग को पार कैसे लगावेगी एवं जो स्वयं पार जा चुका है वही दूसरे को भी पार कर सकता है एवं सर्वसिद्ध समाजाग्रणीय श्री गोरक्षनाथ जी ने भर्तृहरि पूर्णभक्तादि राजकुमारों की स्थिति को देख विचार कर कृपादृष्टि पात से इसी जन्म में ही उनको योग ज्ञान द्वारा संसारार्णव से पार किया। इस प्रकार श्री गोरक्षनाथ जी के विमला देवी, कणकाई, भुसकाईनाथ के सम्बन्ध में भी विचित्र चरित्र हैं एवं मत्स्येन्द्र, ज्वालेन्द्र, मस्तनाथ, बालनाथ, बालकनाथ, विचारनाथ, रत्ननाथ, ज्वालानाथ आदि के विस्मयकारक चरित्र हैं।

पूर्वकाल में देवदनुजों ने एक महती योजना तैयार कर महोदधि को मथा यथा–"देवदानवसम्वादे मथ्यमाने महोदधौ। उत्पन्नोऽस्ति यदा कुम्भोविधृतो विष्णुना स्वयम्।" एवं पुराण आदियों में समुद्र से उत्पन्न अमृत को माना है किन्तु नाथ गुरुओं ने शरीररूपी घट में भी

अमृत का निवास बताया है। जो पूर्णयोगवित् सद्गुरु द्वारा दर्शित योगयुक्ति से उसकी उपलब्धि और पान किया जाता है।

कैलाश भ्रमणार्थ सर्व योगीसिद्धों के सम्राट का जाना

एक समय टिल्ले शिवपुरी स्थान में स्थित श्री गोरक्षनाथ अपने पूर्वस्थान कैलास को कुछ शिष्यों सहित भ्रमण का विचार कर चल पड़े। ज्वाला जी में आकर एक सप्ताह रुके तो वहाँ किसी तपस्वी रूप बालक ने महासिद्ध राजाधिराजों के समुदाय को देखकर के उनकी ओर अधिक श्रद्धा कुछ भय से आया तो प्रथम गोरक्षनाथ जी के चरणकमलों पर प्रणाम कर पश्चात् शेष सिद्धों के चरणों पर प्रणाम किये तथा सबसे आशीर्वाद प्राप्त किये। एक सप्ताह गुरु जी भी वहीं रुके तो वह बालक भी इनके पास ही रहा। तब समय देखकर विनम्र भाव से हाथों में पुष्प लिये हुए मन में गुरुभाव से भावित हो श्री गोरक्षनाथ जी के चरणकमलों पर रख प्रणाम कर दोनों हाथ बाँधे हुए बोला हे प्रभू मेरी एक प्रार्थना है यदि आप श्रीमान की आज्ञा हो तो मैं कहूँ। तब बालरूप तपस्वी पर दयार्द्रित हुए गोरक्षनाथ जी बोले हे तपस्विन्! जो तेरे मन का भाव है कहो! तपस्वी बालक बोला कि हे प्रभो! मेरी प्रार्थना है कि आप मुझ पर कृपा कर शिष्य रूप से ग्रहण करो! तब गोरक्षनाथ जी ने उसकी बात सुनकर उसके पूर्वापर को गौर से देखा कि यह पूर्वजन्म का भी योगी है जो पूर्व संस्कारों से आकर्षित हुआ पूर्व योगमार्गार्थ मोड़ मुड़ रहा है तब गुरुदेव जी ने सब कुछ समझ कर उससे परीक्षार्थ पूछा कि तुम्हारा घर कहाँ है? तुम किसके हो? घर से क्यों आ गये? और जो तुमने राख मल रखी है इससे पूर्व तुम किसके शिष्य हो? तेरा नाम क्या है? बालक—हे

गुरुदेव! मैं नवांशहर का रहने वाला हूँ मेरी माता का नाम यशोदा पिता दुर्गादत्त है भार्गव ब्राह्मण हूँ। मैं किसी का भी शिष्य अभी तक नहीं बना यह राख मैंने स्वयं ही मल रखी है। किसी तपस्वी को ऐसा देखा उसी का मैंने अनुकरण कर लिया है। गुरु जी–तुम अपनी माता की कितनी सन्तानें हो? बालक दीवट–गुरुदेव हम तीन भ्राता हैं एक भगिनी। मेरे माता–पिता मुझे पढ़ने तथा घर के काम करने के लिये कहते थे तो उनमें मेरा चित्त नहीं लगता था। तब पिता ने मुझे एक थप्पड़ मारा और माता ने भी दो जड़ दिये कि त् न पढ़ता है न गौ भैंसों के लिये खेतों से चारा ही लाता है तुम ठाली के लिये खाने को कहाँ से आया करेगा, बस मैं दूसरे ही दिन घर से निकल आया। गुरुजी–तुम्हें कितने दिन हुए घर से आये को। बालक–जी मुझे आये को पाँच मास हो गये हैं तब मैंने कुछ ही दिन बाद किसी साधु को स्नान करके राख मलते देखा तो मैं भी वैसे ही करने लगा। यह सुनकर गोरक्षनाथ जी ने तथा उनके शिष्यों ने भी कहा कि तुम अपने घर को जाओ जैसे तेरे माता पिता तुझे कहें वैसा ही करो। अभी तुम्हें उनसे दीक्षा लेनी चाहिये। अभी तुम्हारी आयु दस ग्यारह वर्ष की है, हम उसको शिष्य बनाते हैं जो पूर्ण जिज्ञासु हो १८ वर्ष से कम आयु का न हो। क्योंकि इससे पूर्व उसे अपने जीवन के कर्तव्य अकर्तव्य का पूरा बोध नहीं होता किन्तु फिर भी उस अयोग्य योग्य की योग्यता को देखकर भी भरती करना न करना वह हमारी मरजी है क्योंकि हमने कोई फौज भरती नहीं करनी या कोई ऐसा और कार्य हमारा नहीं रुक रहा जिसके लिये बहुतों की जरूरत हो। तब बालक नेत्रों में आँसू भरकर बोला हे प्रभो! आप घट–घट की जानने बाले हो और जैसा मैं हूँ मुझे भी आप जानते ही हो किन्तु मुझे तो आपको गुरुवर

बनाकर दीक्षा लेने की आपसे बहुत ही आशा थी और आगे भी आपकी कृपा दृष्टि से मेरी आशारूपी सृष्टि वृद्ध होवे। आप श्रीमान की कृपा दृष्टिपात से सैकड़ों राजा तथा सर्वविकलांग भक्तपूर्ण को पुनः सर्वांगोपांग बनाकर इन सबको जगज्जालार्णव से पार किया है अब आप औरों को कर रहे हो। यदि मुझ अनाथ दीन हीन पर आपकी अनन्तकल्याणमयी कीर्ति के ब्रह्माण्ड में से एक अतिस्वल्प कृपारूपी दृष्टि की पल्क पड़ जाने पर अगाध कल्याणमय ब्रह्माण्ड में से एक पल्करूप कण निकलने से उसमें कुछ कमी (न्यूनता) नहीं आनी और मुझ–पिपासु चातक का उस करुणारूप दृष्टि वृष्टि की पल्करूप बिन्दु के द्वारा मेरा आवागमनरूप प्यास से सदा के लिये छुटकारा हो जावेगा क्योंकि आप तो करुणाकर होने से करुणा करोगे ही यह तो आपका सहज स्वभावरूप व्यसन है और यही आपके नाम गोरक्ष का अर्थ है रक्षा करना। समस्त 'गो' पद वाच्यों की रक्षार्थ ही तो आपका संसारचक्र के संहारार्थ कभी आपका संसार में चरणचक्र आता है। गोरक्षनाथ–अच्छा सौम्य यदि तेरी अवश्य ही दीक्षित होने की भावना है तो अब तुम जाओ फिर कभी भेंट होगी तो स्मरण कराना फिर जैसा विचार बनेगा करेंगे। जाकर माता–पिता की सेवा करो! बालक तपस्वी–वह तो मेरे भाग्य में मुझे नहीं दीख रही। मैंने तो एक और ही माँ बना रखी है उसकी गौवें चराकर खाना खाता हूँ। गुरु गोरक्षनाथ के विषय में बाल तपस्वी ने शेष समुदाय से पूछताछ कर बहुत जानकारी कर ली थी।

ज्वाला जी से प्रस्थान कर कैलाश में भ्रमण करते हुए

समण्डल गोरक्षनाथ जी शिवशिवा के दर्शन कर मण्डल ने मानसिक वन्दन कर मानसरोवर में कुछ समय ठहर कर पुनः केदारखण्ड

में कई वर्ष तप करते रहे बाद में बद्रीनाथ गंगोत्री यमुनोत्री में स्नान कर हरिद्वार आए। उधर वह तपस्वी बालक कुछ वर्ष अपने निवास पर वास करके जिसका चित्त गुरु भावना पूरी न होने के कारण अति चंचल हो रहा था। वह एक दिन विचार कर उधर को चल पड़ा जिधर को पूर्व सिद्ध समुदाय गया था उसकी खोज निकालता हुआ कई दिनों में मानसरोवर जा पहुँचा। रात्रि वहीं रह कर प्रात: समय देवसरोवर में स्नान कर जगदम्बा भवानी से प्रार्थना कर उसका ध्यान करने लगा कि हे माँ उमे! मेरी प्रार्थना को पूर्ण करो अर्थात् समेत मण्डल मुझे श्री गोरक्षनाथ जी के दर्शन कराओ! तब भक्तवत्सला जगन्माता भवानी घट–घट के जानने वाली महाशक्ति ने विविध विचारों की उल्झन में पड़े भक्त तपस्वी की विरहव्याकुला अवस्था को देखकर उमा युवती की उत्तरावस्था में उसके समक्ष प्रकट हुई। तब बालक देखकर चकित हुआ विनम्रभाव से उसे पूछता है माता आपने यहाँ आई हुई कोई नाथ साधुओं की सिद्ध मण्डली तो नहीं देखी। माता–बेटा मण्डली तो आई थी परन्तु वह कुछ समय यहाँ ठहरी थी। वह वायवीय शरीरों को धारण किये हुए अव्याहत गति से भ्रमण करती हुई अन्तरिक्ष से केदारखण्ड को चली गयी थी साक्षान्माया अतीत सदाशिवरूप श्री गोरक्षनाथ जी की उनके शिष्यों समेत मण्डली थी वह केदार से भी अब चली गयी हैं। बेटा! तुम्हें उनसे क्या कहना था तब बालक तपस्वी ने जैसे पीछे भेंट हुई और जो कुछ गोरक्षनाथ जी ने बालक को कहा वह सब बालक ने माता को कह सुनाया। अब माता ने विरहविह्वल हुए बालक भक्त के सिर पर हाथ रखकर उसमें कृपा दृष्टि का पात किया तो बालक भव्यशक्ति सम्पन्न हुआ। माता ने उसे कहा तुम धैर्य धारण करो! शीघ्रता न कर एकाग्रता रखो! यदि वह तुम्हें

मिल भी पड़ेंगे, तो वह अभी कुछ समय तक शिष्य नहीं बनायेंगे। जब तक तू उनका शिष्य नहीं बनता तब तक जो कुछ तुम कर रहे हो वहीं करते जपते रहो! और जाओ मेरे आशीर्वाद से तेरे में आकाशगति शक्ति भी हो गयी है। तब माता के चरणों पर बालक ने प्रणाम कर और श्रद्धायुक्त हो गौर से उस महाशक्ति के दर्शन किये और जगदम्बा ने उस भोले तपस्वी से कहा बेटा अब तुम क्या चाहते हो? बालक—माता मैं उनके चरणों में शिष्य रूप से अर्पण होना चाहता हूँ।

भवानी का बालक तपस्वी को वर देना

बेटा! मेरा वररूप आशीर्वाद! हुआ कि तुम गोरक्षनाथ जी के शिष्य होंगे अन्य किसी के नहीं क्योंकि जैसी तेरी भावना है वैसा ही होगा यह मेरा वचन हुआ और उस परमेश्वर सदाशिवरूप श्री गोरक्षनाथ जी को मिलने का मैं तुझे उपाय बताती हूँ यह सुनते ही तपस्वी की प्रसन्नता निःसीम हो गयी। तब उमा ने सब जानते हुए पूछा हे पुत्र! तेरा नाम क्या है? बालक—मेरा नाम दीवट है। माता—दीवट जो मेरा ही रूप ज्वाला जी है, कांगड़ा प्रदेश में वहाँ उनका भी स्थान है। वहाँ जब कभी उनकी इच्छा हो तो आकर रुकते हैं वे जब भी आवेंगे उसी रात्रि को तुम्हें उनके आने का स्वप्न आवेगा। तब प्रातःकाल कुछ पुष्प ले विनम्रभाव से उनके चरणों पर रख प्रणाम कर प्रार्थना करना, हे परमेश्वर! मैं वही पूर्व बालक आपके निर्देशानुसार आपके पादपद्मों में उपस्थित हूँ। शिष्यरूप से आपके अर्पण होने के लिये आया हूँ। हे कृपामय! मुझे ग्रहण करो! मैं आपकी शरण में हूँ। ऐसा कहने से वे दयालु हैं अवश्य तुझ पर दया करेंगे। तुम्हें स्वप्न आना और उनका शिष्य बनना ये दो वर तुझे मुझसे प्राप्त हुए जान।

दीवट—हे माँ! मैं समझ नहीं सका कि आप कौन महाशक्ति हो? मुझ अपने दास पर अहैतुकी कृपा कर रही हो, यह कहो? तब माता जी—मैं जगदम्बा भवानी हूँ एवं कहकर तत्काल अन्तर्धान हो गयी तो वह आश्चर्य में पड़ गया। बाद में भवानी की दी शक्ति से अन्तरिक्ष में वायुवपु धारण किये बद्रीनाथ में पहुँचा वहाँ एक अवधूत को देखकर प्रणाम किया बाद में पास ही में स्थित किसी से बालक तपस्वी ने पूछा कि यह महात्मा कौन है इसका क्या नाम है। तब उस भक्त जन ने कहा कि यह अवधूत दत्तात्रेय जी हैं तब बालक ने दत्तात्रेय जी को प्रणाम कर कहा महाराज आपने कहीं गुरु गोरक्षनाथ जी का मण्डल देखा हो? दत्तात्रेय जी—हाँ देखा है। बालक—कहाँ देखा? दत्तात्रेय जी—हरिद्वार में। क्योंकि तुमको उनसे क्या काम है? तुम उनके शिष्य हो। बल्कि इतनी छोटी आयु वाले को तो वे शिष्य बनाते ही नहीं क्योंकि वे बहुत कुशाग्र बुद्धि विचारवान हैं साक्षात्परमब्रह्म सदाशिव हैं मया से अतीत हैं। बालक—मैं उनके शिष्यरूप से स्वयं को अर्पण करना चाहा था परन्तु महाराज ने स्वीकृति नहीं दी, किन्तु इतना कहा कि अब नहीं फिर कभी भेंट होगी तो फिर विचार करेंगे। दत्तात्रेय जी—अरे बेटा उनके तो बड़े—बड़े राजा महाराजा आ आकर उनके शिष्य बनने के लिये उनके चरण अपनी मुकुट मणियों से पखारते हैं और उनके पीछे—पीछे लगे रहते हैं। यथा—महादानी किसी कृपालु व्यक्ति के आगे—पीछे गरीब मांगने वाले लगे रहते हैं तथा विवाह के बाद दीर्घकाल तक सन्तान न होने से दम्पत्ति सन्तान प्राप्ति की ताक में लवलीन रहते हैं। सच्चे भक्तजन यथा स्वेष्टदर्शनार्थ टकटकी की एकतानता सी लगाये रहते हैं एवं पतिब्रता कमलनयना विदेश गये पति की प्रतीक्षा में लवलीन रहती है कि कब मेल होगा। इन सबकी तरह

उनके महायोगामृत के उपदेश के पिपासु लोग अपने मन की महाकांक्षा हर समय बनाये रखते हैं किन्तु वह बेपरवाह किसी की भी परवाह नहीं रखते। तो क्या वे तुम्हें शिष्य बना लेंगे? बालक—आशा तो मैंने भी उनके चरणों की महोत्कट बाँध रखी है तब वहीं पास स्थित जिसने बालक को दत्तात्रेय होने का परिचय दिया था वही दत्तात्रेय के समक्ष बोला कि तुम इसी के शिष्य बन जाओ उनका क्या पता वे कब मिलेंगे? वह आपको बनावेंगे या नहीं बनावेंगे? बालक—वेश्या की तरह बार—बार नये पति नहीं बना करते जो मन में एक बार धारणा कर ली है वही रहेगी और नहीं उससे अधिकतम मुझे कोई दृग्गोचर हो रहा है और नहीं उनके समान मुझे कोई प्रतीत हो रहा है। मुझे भवानी माता के वर पर तथा अपनी धारणा का पूरा भरोसा है कि मुझे गुरु गोरक्षनाथ जी अवश्य शिष्यत्व से ग्रहण करेंगे और यदि वे मुझे शिष्य न भी बनावेंगे तो भी मेरे मन की तो पक्की धारणा है ही कि मेरे गुरु श्री गोरक्षनाथ जी ही हैं। इसके बाद सिद्ध दीवट वहीं आ गया जहाँ रहकर पूर्व माई रत्नों की गौवें चराता था। यहीं रहकर माता भवानी के स्वप्न की प्रतीक्षा करने लगा एवं अपना पूर्व वाला ही नित्यकृत्य करने लगा। एक दिन सिद्ध बालक अपने ध्यान में मग्न था माई रत्नों ने जो गौवें चराने को दे रखी थीं इस काम के बदले में माई रत्नों बालक तपस्वी को रोटियां और लस्सी दिया करती थी तब एक दिन गौवें जमीदारों के कुछ खेत खा गयी तो खेत वालों ने रत्नों को बुरा भला कहा तब रत्नों ने आकर बालक तपस्वी को उत्तेजित वचन कहे कि मैं कई वर्षों से तुम्हें रोटियां खाने को और लस्सी पीने को दे रही हूँ तुम फिर भी गौर से गायें नहीं चराते हो मुझे कई बार लोग उल्लहाने दे चुके हैं किन्तु वह बालक स्वयं ही उल्लाहने की रचना रच रहे थे। उधर जब माँ उमा का आशीर्वाद हो चुका था तभी से उस बालक दीवट में

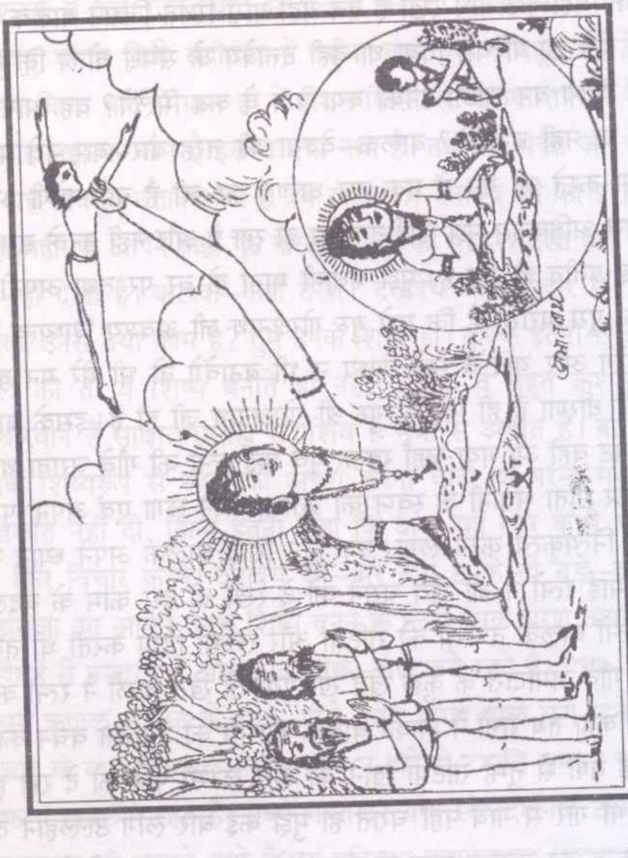

श्री गोरक्षनाथ जी द्वारा सिद्ध बालकनाथ जी को शिक्षा दीक्षा देना

चमत्कार शक्ति काफी हो चुकी थी तब बालक ने रत्नों से कहा कि उनको बुलाओ जो कहते हैं कि हमारे खेत गौवें खा गई हैं। तब रत्नों ने उल्लहाने वालों से कहा कि चलो हमें भी दिखाओ जो तुम्हारे खेत गायें ने खाये हैं। अब वास्तव में ही जो गौवों ने खेत खा रखे थे बताने वालों के साथ और भी अनेक लोग देखने के लिये जब खाये हुए खेतों के पास पहुँचे तो देखते हैं कि गौवों के खाने से पूर्व की फसल से कई गुणा अधिक फसलें खेतों में है। एक तिनका भी कहीं खेतों में से टूटा नजर नहीं आ रहा फसलें खेतों से बाहर उल्ट रही थीं। तब सभी खेतों वालों ने बालक तपस्वी के चरणों पर प्रणाम कर क्षमा प्रार्थना की और रत्नों ने जो लस्सी रोटियों के ताने दिये थे तब जिस वट वृक्ष के नीचे बालक तपस्वी रहता था उस वृक्ष की ओर अंगुली की तो वह दो फाड़ हो गया तब उसी के खोखल में रत्नों की दी हुई सब रोटियां दिखा दीं तथा धरणी के एक गर्त में वह सब छाछ लस्सी दिखा दी कि ले माई अपनी रोटियां और लस्सी मैंने तेरी दोनों में से कोई भी नहीं बरती। तब रत्नों भी अपने कहे शब्दों पर पछताने लगी। इसके बाद गोरक्षनाथ जी भी अनेक देशों का भ्रमण करते हुए यथेच्छया ज्वाला जी में आ गये।

बालक दीवट को स्वप्न में गोरक्षनाथ जी के आने की सूचना

उमा भवानी ने उनके शिष्यों के महासिद्ध समाज सहित महायोगामृत के दाता श्री गोरक्षनाथ जी को ज्वाला माला में आये जान बालक दीवट को स्वप्न में सम्बोधित किया कि अरे बालक! जिसकी प्रतीक्षा का क्षण–क्षण आपके लिये वर्षों का व्यतीत हो रहा है वह विरह

रोग तेरे के वैद्य पूर्व दर्शित स्थान में आ गये हैं। उनको अपनी रोग व्यथा की निवृत्यार्थ जाकर कहो! बालक तपस्वी स्वप्न में यह समाचार जानकर तथा स्वप्न समाप्त होने पर भी नि:सीम प्रसन्न हुआ। प्रात:काल होते ही माता उमा की दी शक्ति से वायवीय लघु शरीर कर शीघ्र ज्वाला जी में जाकर सिद्ध समाज जुष्ट गुरु गोरक्षनाथ जी को विराजमान देख महनीय प्रसन्नता से उनके चरण कमलों पर पुष्प चढ़ाकर सर्वांग प्रणाम किया। इसके बाद सब सिद्ध वर्ग को और ज्वाला जी को भी प्रणाम किया एवं बाद में योग्य समय देखकर बालक तपस्वी ने अपनी पूर्व हुई भेंट को तथा पूर्व की हुई अपनी प्रार्थना को पुन: गुरु गोरक्षनाथ जी को स्मरण कराया कि आप जी ने कहा था फिर कभी भेंट होगी तो विचारेंगे अब दास पर दया करो! तब श्री गोरक्षनाथ जी ने योगमार्ग के नियमों की कठिनता का वर्णन करते हुए कहा कि अब समय है समझ सोच कर कार्य करना वर होता है समय बीतने पर सोच विचार कुछ नहीं करता। बालक—गुरुदेव! मैं जो सोचना था सोच लिया जो निश्चित करना था कर लिया। अब केवल आप गुरुदेव के पादपद्मों में दास के पास होने की सोच ही शेष है उसकी स्वीकृति देकर पास करने की शक्ति श्री चरणों के आधीन है।

बालक तपस्वी का मानसिक चातुर्य को गोरक्षनाथ जी जान रहे थे

बालक दीवट बहुत चुस्त चमत्कारयुक्त थे मन की मन में रख रखी थी जिसको गुरु बनाना हो उसे पूर्व बुद्धिमान को देख लेना आवश्यक है कि यह ज्ञानी है! परमतत्त्व में निष्ठित है योगयुक्त वचन सिद्ध है एवं अलोभी निरतिशय परप्रभावहीन है!!!! वही गुरु पद योग्य

है। इन सब बातों का समय आने पर अपने आप ही निर्णय हो जावेगा। बालक दीवट इस प्रकार के विचार मन में बना विचार रहा था उन्हें घट–घट के जानने वाले जान ही रहे थे और उसके चातुर्य को समझ रहे थे। दीवट के मन में यह था कि जब मेरे कर्ण छिन्न करने लगेंगे तक मैं वायवीय शरीर धार कर प्रयत्न पूर्वक इनके हाथ से निकल जाऊँगा यदि मुझे न रोक पकड़ सके तो इनको गुरु धारण करने न करने पर बाद में विचारुँगा एवं मानसिक भावों को गुप्त रख वाणी से शिष्य बनने के लिये बारम्बार प्रार्थना करता है। गुरु गोरक्षनाथ जी दीवट के मन के शैशविक विचारों को जानकर मन में खुश हैं कि बच्चों वाली बातें सोच रहा है अभी नि:सन्देह नहीं हुआ अब इसके विचार हमारे प्रति मध्यम जिज्ञासु के से हैं किन्तु अपनी शक्ति की सीमा जानकर उत्तम जिज्ञासु हो जावेगा एवं विचार कर गुरुदेव ने नाथ सम्प्रदाय की प्रथमावस्था में नाद यज्ञोपवीत दे नामकरण कर प्रविष्ट कर दिया। द्वादश दिनों के बाद कर्ण छिन्न करने का प्रोग्राम बना लिया तब महानाथ गुरु गोरक्षनाथ जी ने बालक तपस्वी के बारम्बार आग्रह करने पर दक्षिण कर में छिन्न कर्णी को उसको आगे बैठा लिया । बायें कर से कर्ण स्नायुओं को टोह रहे थे तो जब छिन्नकर्णी (करद) को कान में छुहाने लगे तो बाल तपस्वी यत्नपूर्वक उड़ान भर कर अन्तरिक्ष में दूर चला गया। गोरक्षनाथ जी उसके बालकपने पर मुस्कराये कि यह हमारे को अपनी शक्ति दिखा रहा है किन्तु इसे पकड़ने के लिये इसके पीछे–२ हमारे को उड़ान भरने की कोई आवश्यकता नहीं यहीं बैठे इसको पकड़ लेंगे। तब महायोगेश्वर गोरक्षनाथ गुरुदेव ने दिव्य अलौकिक बाम भुजा निकाली उस उड़ते जा रहे तपस्वी दीवट को स्कन्द के पास से दायीं भुजा को जा पकड़ा और अपनी बाहु मोड़ने के साथ

ही उस बालक तपस्वी को धरातल पर उतार लाये और उसे पुन: छोड़कर बोले कि अरे बालक नाथ बेटा! यदि और कोई सन्देह मन में है तो दूर करले यदि कोई शेष सिद्ध चमत्कार रहा हो तो वह भी प्रयोग कर देख ले। परन्तु यदि तुम यह चाहो कि कान दो फाड़ किये बिना मैं भाग जाऊँगा तो यह अब नहीं हो सकता। जब भागने का समय था तब हमने तुझे बारम्बार रोका था कि यह मार्ग कठिन है तो तुमने केवल शिष्य बनने और बना लेने की रट लगा रखी थी अब जब तेरी रट को पूरा करने का विचार बन चुका है तो उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ेंगे। जिसे स्मरण करना हो कर ले जिसे बुलाना हो बुला ले जो शेष कोई वश है तो उसे चला ले? एवं कहकर बालकनाथ को गुरुदेव ने पृथ्वी के साथ स्पर्शास्त्र से जाम कर दिया? बालक—हे गुरुदेव! मेरा जो बल था मैंने अजमा लिया यावत बल था वह चला लिया जो मन का सन्देह था वह मिटा लिया। आप गुरुदेव से बढ़कर कोई स्मरण दीखता नहीं जिसे स्मरण करलूं श्रीमान से अधिकतर को दिखता नहीं जिसे बुला लूं किन्तु अब नि:संदेह यह परम शुद्ध हुआ कुन्दन आपकी कृपा से आपका ही है अब इसमें से मैं मेरा समस्त ननु नचायें नष्ट भ्रष्ट हो गयी हैं। अब इसका जो कुछ करना न करना आपके अतिरिक्त किसी का अधिकार बल नहीं है। बालक—हे सर्वसमर्थ प्रभो! केवल इतना ही मेरे मन में सन्देह शेष था जो अब सर्वथा और सर्वदा के लिये निवृत्त हो गया है। मेरे में अब अस्वीकार का कोई स्थान नहीं है आप चाहे बन्धन में रखकर कर्णछिन्न करो या बन्धन से मुक्त करके करो, यह आपकी इच्छा है मेरी तो केवल इच्छा कर्णछिन्न कराने मात्र में ही सीमित है। तब सदाशिव भगवान गोरक्षनाथ

जी ने सर्व बन्धनों से मुक्त कर सन्मुख बैठाकर दोनों कर्णछिन्न कर अर्थात् चीरकर दर्शनी बनाकर पूर्व ठेठियों के बाद मृन्मये बड़े कुण्डल डाल दिये। यज्ञोपवीत के समय ही इसका नामकरण बालकनाथ रख दिया था क्योंकि बालावस्था में ही इसने गुरु गोरक्षनाथ के शिष्य बनने की भावना बना ली थी अत: गुरुदेव गोरक्षनाथ जी ने इसका नामकरण बालकनाथ किया और दीवट इसका घर का नाम है। इसके साथ नाथ जोड़ने से दीवटनाथ बना यही बाद में सिद्ध होने से सिद्ध बालकनाथ बोला जाने लगा।

कुछ लोभियों द्वारा असत्य धारणाओं की पुष्टि

कुछ स्वार्थी लोग जिन्होंने इस बालकनाथ के स्थानों पर अपनी जीविकार्थ चढ़ावा खाने के लिये अड्डा जमा रखा है कि कहीं नाथों का सिद्ध हो जाने से हमारे से स्थान चढ़ावे वाले न निकल जावें इस भय से बाबा बालकनाथ को गैरनाथ सिद्ध के नाम से दुनियां में ढिंढोरा पीट रहे हैं। उन्होंने इसके बिना मुद्रा वाले फोटो बना–बना बनाकर दुनियां को पेश करने शुरू कर रखे हैं। ये दुनियां की आँखों में धूल झोंक करके अपनी ओर (तरफ) से दुनियां को सत्यता दिखा रहे हैं। यह नाथ नहीं था यह सन्यासी था दत्तात्रेय का शिष्य था यह सब रोना इनका अपनी भुखमरी दूर करने का है।

एक और ढोंग इनका

बाबा बालकनाथ अलग–अलग व्यक्तियों के शरीरों में अधिकतर हिमाचल तथा पंजाब के लोगों के शरीरों में घुसकर लोगों की गुप्त बातों तथा कई रोगों का इलाज बताता है। मेरे विचार में उक्त दोनों

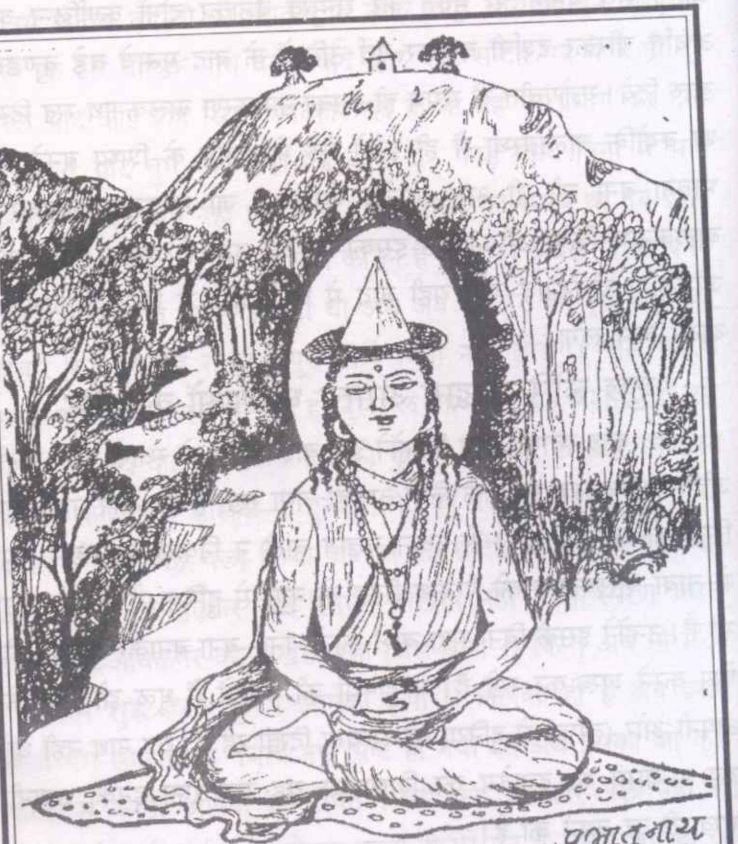

श्री सिद्ध रत्ननाथ जी

देशों में कितने एक लोगों के शरीरों में रविवार को वह दिन के तीन चार घंटों तक घुसकर बैठा रहता है कि २४ घंटों में एक–एक सेकेन्ड भी बाँटे नहीं आ सकता होगा और दूसरी बात यह है कि उसने भजन या सिद्धि काहे की प्राप्त की वह तो एक प्रकार की उस बेचारे के लिये महामुसीबत बन गयी यही बेवकूफों के चिन्ह हैं। ये उक्त धारणायें हैं कि इसके कान चीरते समय गोरक्षनाथ के हाथ नहीं आया वे कान चीरते थे वे नहीं चीराता था। ये सब धारणा लोगों को भ्रम में डालने की सर्वथा निर्मूल है। यह तो अनन्त विनती कर–करके श्री सदाशिवरूप गुरु गोरक्षनाथ का शिष्य बना था और चौरासी नाथ सिद्धों में से यह एक सिद्ध है।

सिद्ध हाजी रत्ननाथ जी

श्री सदाशिवरूप गुरु गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित सिद्धामृतमार्ग में लोग प्रभावित कर योग महाज्ञान के प्रकाश में परमात्मा का चिन्तन करने वालों में महासिद्ध पुरुष बाबा हाजी रत्ननाथ को अस्पर्धित मौलिक स्थान उपलब्ध है। नाथ योगियों में अपने काल के एक पथ प्रदर्शक हुए हैं। भारत के अतिरिक्त फ्रण्टियर, अफगानिस्तान, काबुल में भी अपने चमत्कारों से जनता को प्रभावित कर श्रद्धालु बनाया। नेपाल, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, बिहार, उ०प्र०, महाराष्ट्र आदि की जनता भी इनके प्रभाव से वंचित नहीं रही। ईसा की सातवीं शताब्दी में गजनी अथवा गोर शासकों को महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गौरी को भी उन्होंने अपनी यौगिक सिद्धियों और शिक्षाओं से आश्चर्य चकित कर दिया था। भारतीय सीमाओं का अतिक्रमण करके काबुल गान्धार नेपालादि राज्यों में भी नाथ

योग सिद्धान्तों का महोत्कट प्रचार–प्रसार किया और भारत माता को महाविद्याओं की तथा महासिद्ध पूतों की जननी कहा तथा उसका यश उज्जवल किया। मक्का में मुहम्मद साहब के साथ तीन वर्ष तक प्रतिदिन बातचीत होती रही। बाद में सिद्धराज रत्ननाथ जी वहाँ से भारत आ गये और योग साधना तपस्या में तत्पर हो गये। विशेष कर इनका योग साधन तथा उसका प्रचार भारत की उत्तर सीमा में अधिक रहा।

रत्ननाथ का मक्का में मुहम्मद से भेंट वार्ता में प्रमाण

आज से कई शताब्दियों पूर्व (इब्न हजर) नामक मुस्लिम लेखक ने अपने (इशाब) नाम के ग्रन्थ में उल्लेख किया है। जिन–जिन लोगों ने मुहम्मद साहेब के दर्शन किये और उनके विचार सुने तथा उनके साथ प्रश्नोत्तर हुए और इब्न हजर यह भी लिखता है कि जब खुरासान काबुल से बाबा रत्ननाथ जी फ्रण्टियर भारत की सीमा के अन्दर लौटे तो पेशावर (परशुपुर) आकर ठहर गये। तब जिन लोगों को सिद्ध रत्ननाथ जी के दर्शन खुरासानियों को खुरासान में नहीं हुए थे वे लोग इनकी प्रख्याति सुनकर इनके दर्शनार्थ भारत में आये थे। उन यात्रियों में से काजी नूरुद्दीन ने बाबा रत्ननाथ जी से पूछा कि पीर साहब आपकी इस समय उम्र (आयु) कितनी है तो रत्ननाथ जी ने कहा कि मेरे इस शरीर की उम्र छः सौ साल से भी अधिक हो चुकी है एवं 'इब्न हजर' ने अपने रचित ग्रन्थ इशाब में लिखा है बाबा रत्नजी गुरु गोरक्षनाथ जी के महाशक्तिशाली एक परमसिद्ध शिष्य थे।

विश्व के इतिहास में एक महायोग सम्पन्न विश्वविख्यात योगीश्वर और अध्यात्मिक नेता के रूप में सदा स्मरणीय हैं। उन्होंने

अपने समकालीन भारत सम्बन्धित (पड़ोसी) अनेक राष्ट्र अरब, अफगानिस्तान, नेपाल आदियों को भारत की विचारधारा से जोड़ने का प्रयास किया।

नेपाल स्थित दांग (रत्नपुरी) के राजा माणिक्य के रत्न–परीक्षक पुत्र थे। तब इसका नाम रत्नपरीक्षक था यह युवावस्था अवस्थित राजकुमार वन प्रान्त में शिकार खेलने को गये हुये थे उसी वन में कहीं आसीन जटाजूट विभूषित भस्मराग से रंजित दिव्याभायुक्त कुण्डलालंकृत कर्ण वाले किशोरावस्था में अखिल सौन्दर्य के मूर्तिमान महायोगेश्वर को योगीश्वररूप श्री गोरक्षनाथ जी को देखा। जिनमें में से सर्वत: आभा प्रस्फुटित हो रही है उनसे मोहित हुए राजकुमार ने उन पादपद्मों पर परम प्रेम से प्रणाम समर्पित किया तो सिद्धेश्वर ने आशीर्वादित किया बाद में उसे सम्बोधित करते हुए बोले कि मनुष्य का अहिंसा ही परम धर्म है क्योंकि जिसको स्वयं जीना प्रिय लगता है वह अन्य निर्दोष जीवों के जीने को प्रिय क्यों नहीं समझता यही पाशविकता है यही अविद्या है यह कल्याण निरोधिका है आवागमनचक्रदा है। प्रत्युत स्वात्मभाव ही धर्म मानवता विद्या मोक्षप्रद है।

श्री गोरक्षनाथ जी ने राजकुमार को शिकार खेलना बताना

निरुत्तर विस्मित हुए राजकुमार को करुणामय गोरक्षनाथ जी ने कहा हे राजन्! यदि तुम शिकार खेल सकते हो तो खेलो? किन्तु वह खेलो जिस शिकार के खेलने से समस्त शिकार एक साथ ही खेले जाते हैं। चकित हुआ कुमार–प्रभो! वह कौन सा शिकार है। सिद्धराज– राजन्! वह शिकार समस्त कामनाओं का मूल महामृगेन्द्ररूप मन यह अध्यात्मिक

शूरवीरों का शिकार है। इसके कर लेने पर समस्त शिकार स्वयमेव हो जाते हैं क्योंकि परमात्मा की सृष्टि के निर्दोष निर्बल प्राणियों के शिकार करने का मनुष्य को अधिकार नहीं है। यह उनकी मनमानी है जो भयंकर चौरासी चक्र दावानल के देने वाली है उक्त अत्यन्त चंचल मृगराज में न अस्थियां न रक्त मांस स्नायविक रोम त्वचा है। वह सर्व से शीघ्रगामी प्रयासक सदा चल है। इसके मारने (शिकार करने) से परम गतिरूप पुरस्कार परमेश्वर से मिलता है अन्य सजीव जीवों के प्राण वियोग करने से अर्थात् उनके शरीरों से उनके प्राण वियोग करने से आवागमन तथा महाघोर नार्किक असह्य यातनायें मिलती हैं। अत: मनोरूपी पञ्च भौतिक मृगराज को मारो जो बुद्धिरूपी बाड़ी (उपवन) अर्थात् क्षेत्र को खा रहा है जिस मृगराज ने देवदनुज नर किन्नर ग्रास रखे हैं एवं रत्न परीक्षक ने गुरु गोरक्षनाथ जी के सारगर्भित सुधामय वचनों को सुनकर अपने को शिष्यत्व रूप से उनके अर्पण कर दिया। यहाँ राजधानी दांग नामक देश में चौघरा नामक शुभ स्थान है वहाँ गोरक्षनाथ जी के हस्तघृत पात्र अर्चित हैं जिसकी युगों से पूजा होती आ रही है सन्मुख में रत्ननाथ जी विराजमान हैं। काबुल मक्का यात्रा कर जब सिद्ध रत्ननाथ जी कैकय (काबुल) गये थे तो किसी मार्ग के तट पर एक दीर्घकाल से सूखा हुआ तूलिका तरु था जो सूख कर खोखला हो चुका था उस सतूत के वृक्ष को सजीव हरा भरा करके उसके नीचे बैठ गये। माघ मास में हरा भरा होने पर भी पत्ते नहीं रहते उस शुष्क पर भी माघ मास में पत्तों सहित कर दिया तो उनके इस प्रभाव को देखकर कैकय (काबुल) की जनता चकित होकर बहुत प्रभावित हुई। उन्हें वे लोग पीर रत्ननाथ के नाम से कहने लगे तब

कैकय (काबुल) के बादशाह ने इनको योगमठ मन्दिर के निर्माणार्थ काबुल के जलालाबाद नगर में भूमि दी थी। जिसमें सिद्ध रत्ननाथ जी का मन्दिर है उसी में सिद्ध रत्ननाथ जी की प्रतिमा है। प्रभावित हुए मुस्लिम बादशाह ने सिद्ध रत्ननाथ जी को किले में ठहराया जहाँ अब भी रत्ननाथ जी का धूना विराजमान बताया जाता है धूना राज आज्ञा द्वारा परम सुरक्षित बताया जाता है और पूजित होता आ रहा है। अलग–अलग धर्मों के लोग उन्हें इन नामों से मानते हैं।

[१]रत्ननाथाख्यायाः तत्र सर्वार्याः पूजयन्ति तम्।
सेवन्ते रत्नहाजीति कृत्वा तं यवनाः परे।।

अर्थ–आर्य लोग सिद्धरत्ननाथ नाम से पूजते हैं ओर मुसलमान रत्ननाथ हाजी इस नाम से पूजते हैं। सिद्ध रत्ननाथ जी के काबुल जाते समय रास्ते में अटक दरिया पड़ा तो रत्ननाथ जी ने नाविकों को पार करने के लिये कहा तब नाविकों (मल्लाहों) ने इनकार कर दिया रत्ननाथ जी ने अपने आसन को दरिया जल पर बिछाकर उस पर बैठकर दरिया पार किया और जमाल कमाल नाम के दोनों मल्लाहों को शापित कर पत्थर बना दिया अब भी ये दोनों शिलायें अटक के तट पर हैं। वे दोनों शिलायें जमाल कमाल नाम की अटक दरिया के उसी पत्तन तट पर हैं जो पत्तन जमाल कमाल का था। यहाँ खुरासान देश में एक ऊँचे पर्वत पर सात कुण्ड हैं यहीं श्री सिद्ध रत्ननाथ के नाम से सम्बन्ध शमशेरगाह तीर्थ स्थान है। उक्त कुण्डों में से चार कुण्ड दृग्गोचर होते हैं और तीन कुण्ड अदृश्य हैं जिन्होंने शिखरों को आच्छादित कर रखा है।

१– श्री नाथ ती० व० २७८

[1]तत्र सप्तमकुण्डस्य द्वारिचक्रं भयानकम्।
भ्रमत्यविरतं तीक्ष्णै: करवालैरलंकृतम्।।२७०।।
तत्राणुरपि [1]संस्पर्शाद्भि प्रयाति सहस्रधा।
तत्र चक्रावरोधेन गन्तुं शक्नोति कोऽपिन।।२७१।।

वहाँ सातवें कुण्ड के द्वार पर तीक्ष्ण करवालों (तलवारों) से युक्त अति वेगवान चक्र अविरत रूप से भ्रमित रहता है। वह न तो स्वयं रुकता है और न उसे रोकने में कोई समर्थ है। उसके अणु मात्र भी संस्पर्श होने से हजारों टुकड़े कर देता है।

[1]पारे चक्रं दरीस्पर्शमणिवेद्युपशोभिता।
गुहा मध्यगता गंगाऽनिशं वहति पुण्यदा।।२७२।।

उस चक्र के पार स्पर्शमणि वेदी से युक्त कन्दरा है कन्दरा के मध्य में पुण्य दायिनी गंगा बहती है।

[1]युगादितस्तत्रसिद्धो यात्रानाथो विराजते।
अमुष्मै तीर्थराजाय नमस्कारा भवन्तु मे।।२७३।।

युग के आदि से ही वहाँ सिद्ध यात्रानाथ जी विराजमान हैं ऐसे उस तीर्थराज को मुझ राजा मानसिंह का प्रणाम हो। उक्त चक्र के पार पारसमणि की कन्दरा कहते हैं। पश्चिम उत्तर दिशा में रत्ननाथ जी की उपस्थिति से कण–कण में तीर्थ स्थान बन गये थे।

नांगे पाऊँ धरणि फिरै। शील सन्तोष दया मति धरै।
हाट न फोरैं बाट न मारैं। हम किसी का कुछ न बिगारैं।
काफिरसो जो कुमार्ग चलै। अल्लाह खुदाई थें न डरैं।

१– श्री नाथ ती० व० २७८

रत्ननाथ जी कहते हैं कि मैं नंगे पाऊँ पृथ्वी पर भ्रमण कर खुदा की प्राप्ति के लिये प्रचार कर रहा हूँ। दया सन्तोष को धारण किये हम किसी के हाट–बाट में विघ्न न कर अपने रास्ते पर चलते हैं। हम सब का भला करते और चाहते हैं हम काफिर नहीं हैं काफिर वे हैं जो कुमार्ग पर चलते हैं अल्लाह खुदा का कानून परमात्मा का न्याय नहीं मानते। रत्ननाथ जी–यह समस्त ब्रह्माण्ड माया से प्रभावित है माया नर्तकी के सदृश है वेश्या है समस्त जगत् उसकी शक्ति और प्रभाव से भ्रमित है। वह अपना स्वत्त्व=शक्ति खोकर निराश है केवल माया नर्तकी की ही एक उसे आस है कोई विरला ही माया नर्तकी के प्रभाव से बचकर निकलता है।

एक समय

पंजाब (अद्यतन) पाकिस्तान पंजाब में भेरा नामक नगर में साधुओं का भण्डारा था। जब खाना खाने के लिये पंगत बैठी तो पत्तल परोसने वाला नाथ साधु आया तो रत्ननाथ जी ने एक पत्तल लेकर दूसरी नाथ से और मांगी तब वर्तने वाला बोला भाई और दूसरी पत्तल का क्या करेगा। तब रत्ननाथ ने कहा हम दो हैं वर्तने वाले ने पुन: कहा दूसरा कहाँ है। रत्ननाथ जी अपने शरीर पर जो भभूति की मैल थी उसे उतार कर ऊपर चादर ओढ़कर बुक्कल में फटाफट उस मैल से एक बालक तैयार कर दिया और बोला कि यह है दूसरा इसकी पत्तल दो! तब अन्य आदिनाथ गुरु गोरक्षनाथ के शिष्य सिद्ध समुदाय ने इस प्रकार की सिद्धि भेष में दिखाना बुरा जाना क्योंकि यहाँ तो अनेकों नाथ योगी महासिद्ध हैं जो इस प्रकार की अनेक भारभूता भरपूर सिद्धियों से सिद्ध प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार भेष ने भेष का अपमान जानकर रत्ननाथ का भेष उतारने का फैसला दिया जो श्री रत्ननाथ जी को भय दिखाना मात्र था तब भेष से सिद्ध रत्ननाथ ने अपनी त्रुटि की क्षमा मांग ली थी और भेष ने क्षमा प्रदान कर दी।

भेष सिद्धों ने कहा कि यहाँ तो एक से एक महासिद्ध काले नाग हैं यदि नाग को नाग लड़े तो विष किसको चढ़े, हाँ यदि तुम सिद्धियां ही दिखाकर लोगों को जिज्ञासु बना कल्याण मार्ग में लगाना चाहते हो तो जाओ काबुलादि मुस्लिम देशों को चिताओ हम भी तुम्हें वचन देते हैं कि वहाँ सिद्धियाँ दिखाने की जरूरत है तुम्हारी प्रख्याति भी होगी एवं कहने पर जाकर रत्ननाथ जी ने काबुल आदि मुसलमान देशों को प्रभावित किया जिसका वर्णन पूर्व कर आये हैं। जो बालक सिद्ध रत्ननाथ जी ने रचा था वह सिद्ध विचारनाथ (भर्तृहरि नाथ) का शिष्य बना था। यह भी महासिद्ध हुआ काय से पैदा होने से इसका नाम भी कायनाथ ही रखा। इसकी समाधि पाकिस्तान भेरा नगर में है। रत्ननाथ का भेष उतारने का सिद्धों का कहना तो भय दिखाना मात्र ही था कि इसी से शक्ति प्राप्त कर प्रत्युत इसको ही बल घमण्ड दिखाने लगा है।

जम्भु रियासत में ग्राम सुवांखा

पाक पंजाब सीमा पर ग्राम सुवांखा है। इस ग्राम में जब सिद्ध का वास हुआ तो इसका नाम सिद्ध सुवांखा पड़ गया यह कथा इस प्रकार है कि यह सिद्ध गोर देश का राजकुमार गुरु गोरक्षनाथ जी का शिष्य हो गया था इसका नाम भी इसके देश के नाम पर रखा गया या प्रसिद्ध हुआ। इसका नाम सिद्ध होने पर सिद्ध गोरियानाथ ही प्रसिद्ध हुआ। पूर्व नाम गोरियानाथ जो गुरु ने रखा था। उक्त ग्राम के बाहर एक बड़ा वृक्ष

था जिसके मूल के चतुर्त: एक उच्च स्थण्डिल (चबूतरा) लोगों ने बैठने के लिये बना रखा था और मध्यान्ह समय में ग्राम निवासी लोग भगवान प्रचण्ड मार्तण्ड की अति तीव्र किरणों के प्रहारों से सुरक्षित हुए वहाँ परस्पर वार्तालाप में व्यस्त थे। इतने में ही दैववशात् अपने चरण स्पर्शों से धरा को पुण्यमयी करते हुए सिद्धराज भी उसी वृक्ष के नीचे जनसमुदाय के निकट उपस्थित आ हुए और उन लोगों से बोले कि मुझे इस समय कुछ दूध की आवश्यकता है तुम्हारे में से जिसके पास हो मुझे ला दो! तब उन अहंकारी राजपूतों ने सिद्धराज की इस प्रकार मशकरी की कि वह जो घर नजर आ रहा है उस घर में आप चले जाओ उसमें आपको दूध मिलेगा और यहाँ किसी के दूध नहीं है। तब वह जानी जान सिद्धराज उन लोगों की मशकरी को भी समझकर और उस घर की हालत जानते हुए भी उस घर के द्वार पर अलख जगाई। तब भीतर से एक बन्द कमरे में से एक वृद्धा ब्राह्मणी ने आवाज दी कि आप कौन हो? और क्या कहते हो? तब सिद्धराज ने उस घर की सब हालत को जानते हुए भी उन घमण्डियों के घमण्ड खण्डनार्थ उस अकिञ्चन वृद्धा से कहा कि मैं एक नाथ साधु हूँ। मुझे दूध चाहिए! तब वृद्धा ब्राह्मणी जो अकिञ्चना थी उसने कहा कि महाराज! हमने तो अपने घर के दुग्ध के अभी दर्शन भी नहीं किये हमारे भाग्य में दूध कहाँ? हम दो दम्पति हैं हम दोनों के पास एक लंगोट और एक परना है वह परना मेरा है। जब पतिदेव भिक्षार्थ जाते हैं तो वह मेरा परना भी अपने लंगोट पर से लपेट कर भिक्षा लेने जाते हैं। जब वह आयेंगे तो मुझे परना देवेंगे तो मैं बाहर निकलूंगी। अब ब्राह्मण आवेगा तो मैं उससे परना लेकर उसे लक में लपेट कर किसी जजमान से ग्राम में पूछताछ करूँगी यदि किसी ने दे

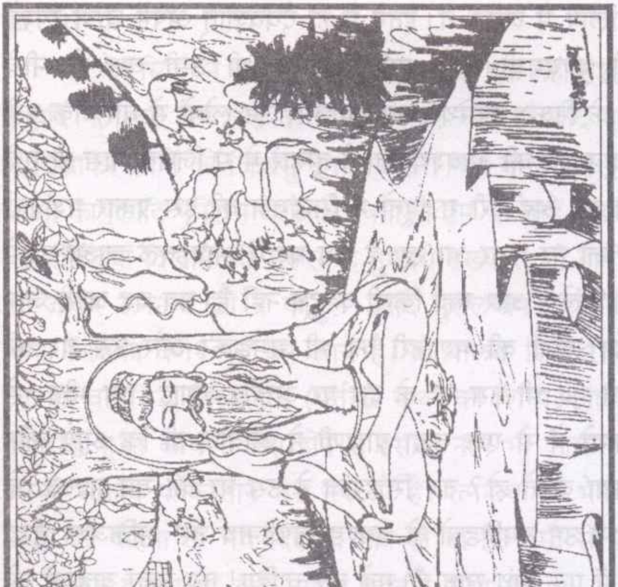

श्री सिद्ध गोरियानाथ जी द्वारा ग्राम की गऊओं के स्वरूप का परिवर्तन करना

दिया तो ला दूंगी। तब सिद्धराज ने बिना परस्पर एक दूसरे को देखे ही चारदिवारी के ऊपर से अपनी चादर फैंक दी और वृद्धा से बोले कि मैया चार दिवारी के भीतर मैंने अपनी चादर फैंकी है। इसकी माता गाती लगा कर मुझे ग्राम में से किसी से दुग्ध ला दो! तब वह वृद्धा मय्या गाती लगाकर हाथ में पात्र ले समस्त ग्राम में फिरी किन्तु उस गरीबनी को किसी ने बूंद भर भी दुग्ध न दिया तब निराश हुई वृद्धा वापिस लौटने की तैयारी में थी तो इतने में महासिद्धराज की माया से उसी वृद्धा ब्राह्मणी के स्तनों में दूध उतर आया तो वह अपना ही दुग्ध पात्र में दोह कर ले आयी लाकर योगीराज से बोली कि महाराज! यह कुछ है जैसे आपकी मरजी हो वैसे आप इसे वरतो! तब सिद्ध उसके दूध को पीकर के बोला कि हे माता मैंने तेरा नीर पिया है। अब आप मेरी माता हो! अब तेरे घर में किसी वस्तु की कमी न होकर दूध की नदी बहेगी और चादर उसी के पास रहने दी। किसी ने ब्राह्मण दम्पति को एक न व्याही हुई और न ही व्याहने वाली एक गौ मनसा कर दे रखी थी जो वह भी विचारी इसके आधी भूखी और पियासी रहती थी तथा निर्भागन बाँदी ही रहती थी। अब सिद्धराज उसका फांसरूप रस्सा गले से उतारकर गौ को वह जंगल में ले गया जहाँ सारे ग्राम का वग चर रहा था उसमें ही उस गौ को ले जाकर छोड़ दिया।

सिद्धाराज द्वारा ग्राम वग की गौओं का परिवर्तन किया जाना

जब सिद्ध ने गौओं पर यथेच्छित दृष्टिपात किया तो अपनी योग शक्ति से समस्त वग के रंग रूप आकार प्रकार बदल दिये जो दुग्धवती

थीं। जो दुग्धवती न थीं सबको दुग्ध भार से भारी कर दिया सब की सब गौवें परम प्रसन्न अपने आप में मग्न दीखने लगीं। जैसे वर्षा ऋतु में पुनः पुन्य वृष्टि होने पर धरणी जलमग्न हो जाती है वैसे ही जिस–जिस जगह गौओं ने पग धरे थे वहाँ–वहाँ की धरणी दुग्धमयी या दुग्ध पूर्णा हो गयी थी। सिद्धराज की माया से सब गो–समुदाय कामधेनु सन्निभ हो गया जहाँ चरता चलता खड़ा रहता बैठता था वहाँ की धरणी दुग्धमयी हो जाती थी। मेघ माला की तरह यत्र–यत्र गो–समुदाय जाता है तत्र–तत्र दुग्ध की वृष्टि करता हुआ जाता है। सिद्धराज की योगमाया से कामधेनुओं के स्तनों से कनिष्ठिका अंगुलि के परिणाम की धारायें स्वयमेव निःसरण होती रहती थीं। उधर जब सन्ध्या होने को आयी तो सिद्ध समग्र वग को ब्राह्मणी के घर में ले आया और गौओं को चारदीवारी के भीतर बाहर धाम दिया। सबके बछड़े–बछड़ियों ने पेट भर–भर कर दुग्ध पी लिये तो भी कामधेनुओं के तले दुग्ध इतना था कि यथा इनके दुग्धाशयों में किसी दुग्धनदियों के सम्बन्धित बन्ध खुल रहे हो प्रतीत होता था और ब्राह्मणी ब्राह्मण भी खूब प्रसन्न हो दुग्ध पीने लगे, इनके घर से कंगाली को खुशहाली ने मार–मार कर भगा दिया उधर वागी अपना वग जंगल में देखभाल कर रहे थे। उन्हें कुछ पता न चला और जिन गौवों के बच्चे छोटे थे जो जंगल में अपनी–२ माताओं के साथ नहीं गये थे। उन गौवों के रंग तथा रूपाकार पूर्ववत् कर उन्हों को अपने–अपने घरों में जाने की आज्ञा दे दी तब वे अपने–२ वत्स–वत्साओं के पास चली गयीं थीं। उधर वागी जब काफी देर तक जंगल में वग की तलाश करते हुओं को जब काफी रात्रि बीत गई तो ग्राम के लोग भी उनका पता करने के लिए जंगल को चले गय तब वहां

वागियों से उनकी भेंट होने पर पता चला कि वग नहीं मिल रहा, पता नहीं किधर चला गया। तब काफी रात्रि व्यतीत होने पर लोग खुवार होकर गांव को लौट आये कि कल दिन को फिर देखभाल करेंगे एवं चिन्ता विचारों में किसी को भी नींद न आई। उधर जिन गौवों को सिद्धराज ने आज्ञा दे दी थी अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिये वे ही गौवें किसी–२ घर में पहुँची थीं। जब दिन निकला तो लोगों ने उस ब्राह्मण के घर में सैकड़ों गौवें आसपास में देखी तो लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ कि इस ब्राह्मण के पास इतनी उच्च कोटि की गौवें कहां से आ गयीं। तब लोगों के पूछने पर ब्राह्मण से पता चला कि ये गौवें सिद्ध योगीराज की हैं जो कल सायंकाल लेकर आया है। तब गांव वालों ने जिनकी गौवें लापता थी उन्होंने उन्हीं गौवों में अपनी गौवें अच्छी प्रकार गौर से देखीं परन्तु उनको अपनी कोई भी गौ नजर नहीं आई वे सबकी सब वैसी थीं जैसे देवलोक से कामधेनु आ रही हों। जिनके गलों में विविध प्रकार के हार थे और मस्तक में तथा श्रृंगों के चारों ओर विविध पुष्पों की मालायें थीं। फिर एक से एक बढ़कर सौन्दर्य की मूर्ति मती कामधेनुवें थी एवं गांव के लोग विचारों से व्याकुल तथा चिंतातुर हुए पुनः अपने गौमाल की खोज के लिये जंगल को चल दिये। इधर–उधर ऊंचे नीचे सभी स्थल देखते हुए पूछताछ करते हुए क्षुधा पिपासा से समस्त दिन निकल गया किन्तु वग का कोई पता नहीं चला तब दूसरी रात आने पर फिर भी लापता हुए सभी लोग गांव को लौट आये। सिद्धराज जंगल को जाते हैं तो गो समुदाय को सम्बोधन कर आगे–२ चलते हैं तब पीछे–पीछे समुदाय चल देता है। तब जंगल में जाकर सिद्ध गोरियनाथ जी किसी जगह में बैठ जाते हैं और गौवों को किसी का दूर जाकर

नुकसान न कर चरने का आदेश दे देते हैं और आप अपने स्वरूपस्थ मग्न हो जाते हैं एवं सायंकाल होने पर जलाशय से जलपान करा कर सिद्धराज गौवें घर को ले आया करते थे। ब्राह्मण दम्पति की परमेश्वर ने ऐसी सुनी कि मानो संसार सागर के अनेक दु:खरूप तरंगों में गोते खाते हुओं की तरह अब पार लग चुके हों। उधर जंगल से आकर रात को खाना खाकर सब लोग एकत्र बैठे और अपना–अपना अटकल पच्चू लगा रहे थे तब उनमें से एक कुछ सोचकर बोला जो कि मशकरी करते समय वहीं हाजिर था जो उस रोज हम तुमने उस महात्मा की मशकरी की थी कहीं यह उसी का फल न हो? क्योंकि उसी रोज से हम सबको मुसीबत बनी हुई है। ब्राह्मण दम्पत्ति मौज उड़ा रहे हैं कहां उन्होंने कभी दूध के दर्शन तक भी न किये थे अब चारों ओर उनके यहां दुग्ध का समुद्र सा उमड़ रहा है। सिद्ध के जिस रूप की उन्होंने मशकरी की थी उस रूप का भी सिद्धराज ने परिवर्तन कर लिया था कि जल्दी से बात जाहिर न हो पावे तब उन ग्रामीणों में से एक बोला कि वे तो कोई और ही थे। जो ब्राह्मण दम्पत्ति के घर आ रहे हैं ये नहीं हैं उनके मौज तो इस गौवां वाले ने की है वह तो आप दुग्ध की बून्द को तरस रहा था उसने किसी का क्या बिगाड़ना और संवारना था तब उनमें से किसी ने कहा कि हम अपनी बुढ़िया मां को भेजकर उस ब्राह्मणी से पता करते हैं कि ये वे महात्मा हैं जो आज से चौथे रोज तुम्हारे घर दूध का सवाल करने आये थे। तब उनकी बुढ़िया ने जाकर उस ब्राह्मणी से पूछा तो उसने कहा कि हां ये वे ही महात्मा हैं ये कोई महासिद्ध योगी हैं। जब बुढ़िया ने आकर वही बताया तो सब समझदार समझ गये कि हमारी मशकरी की

सजा हमको मिल गयी है अब उसके चरणों के अर्पण होकर क्षमा प्रार्थना करें। इस प्रकार उन सबने भयभीत होते हुए ब्राह्मण के घर जा सिद्धराज से क्षमा प्रार्थना की कि हे महाराज? हम सब नासमझ मूर्ख अन्धों पर कोप न कर क्षमा करो? हम कंगालों ने आपको क्या देना है दाता तो आप हो। अतः हम सब अनाथ हैं आप हम सबके नाथ हो हम पर कृपा कर क्षमा प्रदान करो? हम आपके याचक हैं। तब सिद्धराज ने जो उनकी गौवें पूर्व ही दुग्ध देती थीं उन गौवों के रंग रूप आकार पूर्ववत् कर दिये तथा वे गौवें मशकरी वालों को दे दीं और जो फंडरां दूध वाली की थीं वे सब अपने पास रख लीं। जो महात्मा ने दूध वाली उनको दे दीं तो वे खुश होकर चले गये और उस महात्मा का आदर करने लगे। उस गाव की सीमा के भीतर या बाहर जहां–२ उन गौओं के चरते चलते समय जहां–२ गौओं का दुग्ध निकल कर गिरा था वहां–२ की धरा पर दुग्ध सूख कर सूखे दुग्ध के पाउडर की तरह का डला सा स्वयं बन्ध गया। जो आज भी छोटी आयु वाले गोपालों को धरणी खनन करने से उन वागियों को वह भूतपूर्व दुग्ध का पाउडर मिलता ह। जिसको अब सिद्ध गोरियनाथ की भभूति कहते हैं। गोपाल जब वग लेकर जंगल को जाते हैं तब उस भभूति रूपी पाउडर को जमीन में से लाकर सिद्ध गोरियनाथ के मठ में दे देते हैं। ये आगे श्रद्धालु यात्रियों को प्रसाद रूप से देते हैं। उसको सेवन करने वाले कई रोग दुःखों से मुक्त होते हैं उन श्रद्धालुओं की वहाँ की बभूति रूपी पाउडर के सेवन से कई कामनाओं की भी पूर्ति होती है।

इस सिद्धराज की कच्ची समाधि

उक्त सिद्ध सुवांखा गांव में जहां सिद्ध का स्थान है वहीं एक कच्चा तालाब है। उसकी गहरायी १९–२० फुट के लगभग होगी जिसम

सिद्धराज की कच्ची समाधि है जिसे पक्की बनाने की सिद्ध की आज्ञा नहीं है इस तालाब में बारह मास जल रहता है। तो वह कच्ची समाधि भी जल में यथा की तथा झंझावृष्टि वर्षा में भी रहती है। जब वर्षा ऋतु में जोहड़ (तालाब) का जल बढ़ने लग जाता है तो ज्यों–ज्यों जल बढ़ता है त्यों–त्यों सिद्धराज की समाधि भी ऊपर को बढ़ती जाती है पुनः जब अन्य ऋतुओं में जल कम होकर नीचे को जाता है तो समाधि भी साथ–२ नीचे को जाती है। जो विशेषकर दो फुट तो लगभग जल से ऊपर (बाहर) ही रहती है।

किसानों का धान काटना और सिद्ध को डीला (मोथा) बताना

वहीं किसी गांव में कार्तिक मास में किसी खेत में किसान धान काट रहे थे तो सिद्ध गोरियनाथ देवयोग से उनके पास से जा रहा था वे किसान उनको कुछ जानते पहचानते थे तब उन किसानों ने कहा महाराज! आप कहां से आ रहे हो? तो नाथ जी ने कहा कि सैर करता ही आ रहा हूँ। तब सिद्धनाथ ने पल भर रुक कर शुकलिया तौर से ही उन किसानों से पूछता है कि तुम क्या काट रहे हो? किसान बोले कि हम डीला (नादीन) काट रहे हैं किन्तु डीला भी बीच खेत के था ही, परन्तु वे तो धान काट रहे थे और डीला बता रहे थे। इसलिये कि कहीं यह धान न हमारे से मांग लेवे किन्तु सिद्ध का मांगने का विचार न था। उसने स्वभावतः (सभौकी) ही पूछा था परन्तु किसानों के भाव को वे समझ ही गये थे। तब सिद्धराज ने कहा कि डीला तो डीला ही सही एवं कह कर

चले गये तो बाद में किसानों ने देखा कि जितने भी धान काट रखे थे वे सब डीला ही हो गये। तब किसान परेशान हुए पछताने लगे कि हमने बाबा से झूठ बोला तो ऐसा हुआ। फिर वे सब सिद्धराज के पास गये और अपनी झूठ बोलने की त्रुटि को स्वीकार कर क्षमा मांगी तब सिद्धराज ने कहा कि तुम लोगों ने डीला काटने को कहा तो मैंने भी तुम्हारी स्वीकृति में स्वीकृति दे दी कि डीला है तो डीला ही सही। हमने कुछ और तो नहीं कहा और अब जो चाहते हो वह कह दो! तब किसानों ने कहा महाराज! उस बने डीले के धान हुए हम चाहते हैं? तब पुन: सिद्ध गोरियनाथ ने पूछा कि तुमने क्या काटा था? जी! हमने तो धान काटे थे तो पुन: सिद्ध ने कहा 'धान तो धान सही, जाओ?' तब किसानों ने जब खेत में जाकर देखा तो जो डीला बन गये थे वे सब अब धान ही हैं। ऐसी इस सिद्ध की विचित्र लीला थी।

इति

हरियाणा प्रदेशस्थ अस्तल बोहर की उपशाखा रोड़ का मुहाना
गुरु स्थान के भूतपूर्वाध्यक्ष श्री श्री अनन्त श्री विभूषित श्री १०८
श्री श्री सूर्यनाथ जी के शिष्य वीरनाथ आई पन्थी
द्वारा सप्तम पुष्प समाप्त हुआ।

❋ अथ अष्टम पुष्प ❋

श्री गोरक्षनाथ जी का जाति जन्म

योगेश्वर के उक्त दोनों के सन्दर्भ में अनेक मनघड़ंत विचार और धारणायें चल रहीं हैं। जो प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा रचित ग्रन्थों में ध्यान न देकर श्रद्धा के अभाव से विचार कर लेख व ग्रन्थ पेश या प्रस्तुत किये जा रहे हैं वे प्राय वैसे ही नितान्त भ्रान्त हैं यथा मृगतृष्णा का जल। प्रथम तो उनके विषय में जाति जन्म के प्रश्न उतने ही असम्भव हैं जितने भगवान नृसिंह अवतार के सम्बन्ध में एवं ब्रह्मा, विष्णु, शिव के विषय में हो सकते हों जो बिना माता–पिता से प्रकट होता है वह स्वयंभू होता है अपनी इच्छा से होने वाला है। यद्यपि महाभारत आदि में उक्त त्रिदेव की भी उत्पत्ति कही है किन्तु वह उनके आविर्भाव का ही प्रकार है न कि किसी माता–पिता से उनका जाति जन्म हुआ है। इस प्रकार–श्री गोरक्षनाथ जी का यथा ऋषि मुनियों ने ग्रन्थों में कहा है उसे कहते हैं जो अजन्मा अयोनिज स्वयंभू है।

कल्पद्रुम तन्त्र एवं गोरक्षसहस्र नामादि में

ऋषियों तथा श्री कृष्ण जी की प्रार्थना से जब भगवान श्री गोरक्षनाथ ने रुक्मिणी जी को कंकण बन्धन माधो प्रांची में सिद्ध किया तब श्री कृष्ण गुरु गोरक्षनाथ जी के प्रभाव से प्रभावित हुए गर्ग मुनि से पूछते हैं–

श्री कृष्ण उवाच–

गोरक्षनाथः को देवः को मन्त्रस्तस्य पूजने।
सेव्यते केन विधिना तन्मे ब्रूहि महामुने!।।१।।

कृष्ण जी बोले हे महामुने! श्री गोरक्षनाथ जी कौन देवता हैं उनकी पूजा किस मन्त्र से होती है उनकी उपासना किस विधि से की जाती है। ये सब मुझसे कहो–

गर्ग उवाच–

देवाश्च मुनयः सर्व प्रपच्छुर्धर्मवादिनः।
देवदेवं महादेवं गोरक्षस्य च कीर्तनम्।।२।।

श्री गर्ग मुनि ने कहा कि एक बार धर्म चर्चा प्रेमी ऋषियों और देवताओं ने श्री महादेव जी से गोरक्षनाथ जी के विषय में पूछा

देवा ऊचुः–

कोऽसौ गोरक्षनाथो वै तपस्वी जटिलाभिधः।
कथं जातो महाबुद्धिरेतद् ब्रूहि सविस्तरम्।।३।।

देवर्षि बोले–हे महादेव! वह गोरक्षनाथ कौन हैं जटाजूट तपस्वी महाबुद्धिमान कैसे उत्पन्न हुए यह सब हम से कहो।

महादेव उवाच–

स्वयं ज्योतिःस्वरूपोऽयं शून्याधारो निरञ्जनः।
समुद्भूतो दक्षिणस्यां दिशि गोरक्षसंज्ञकः।।४।।

श्री महादेव जी बोले–शून्य के आश्रय रहने वाले निराकार स्वयं ज्योति स्वरूप कैलास की दक्षिण दिशा में गोरक्षनाथ नामक समुद्भूत हुए अर्थात् अतिचित्ताकर्षक वन की सूचिका दक्षिण दिशा कैलास की है।

माता शून्यमयी तस्य व्यवहारमयः पिताः।
निरञ्जनो महायोगी गोरक्षो जगतो गुरुः।।५।।

शून्यमयी माता व्यवहार रूप उनका पिता है उनसे स्वयं आविर्भूत हुए निरंजन महायोगी जगद्गुरु श्री गोरक्षनाथ जी हैं। श्लोक ५ कि व्याख्या—जिस अवस्था में यह समस्त प्राकृत प्रपञ्च स्वमूल सहित जिस परात्पर तत्त्व शिव में अव्यक्तरूपावस्था में सर्वव्यवहारशून्य हो व्यवस्थित था वही शून्यमयी माता है जिसकी ओर 'एकोऽहं बहुस्याम्' यह संकेत है शिव (सच्चिदानन्द) का जो सङ्कल्परूप व्यवहार हो पिता (कारण) है जिसका वह संकल्पकर्ता शिव ही समस्त गोपदवाच्यों की रक्षार्थ एवं योग प्रचार के लिये उक्त दम्पत्ति से श्री गोरक्षनाथ नाम रूप में अतिचित्ताकर्षक वन में स्वयंभूत्वा विराजमान हुए, ये उक्त उनके माता पिता हैं यहीं से उनका जन्म जाति सिद्ध हैं एवं यह सदाशिव और गर्गादि मुनियों का व्याख्यान हैं। मैं एक हूँ बहुत होऊं इस सदाशिव के संकल्प से ही समस्त संसारचक्र के व्यवहार प्रारम्भ व उत्पन्न होते हैं। इससे पूर्व सर्ववर्ग अदम्पत्यवस्था में रहते हैं उक्तावस्था की भग्नावस्था ही दम्पति माता—पिता आदि व्यवहार की हेतुभूता है एवं सन्तत्यर्थ 'बहुस्याम्' व्यवहाररूप पति का स्वपत्नी शून्यमयी के साथ व्यवहार की प्रथमक्षणावस्था में सम्बन्ध था इससे उत्तर प्रत्येक वर्ग के दम्पति की सन्तानार्थ वृद्धि होती गयी।

महादेव—फिर गोरक्ष कौन हैं—

अहमेवास्मि गोरक्षो मद्रूपं तन्निबोधत।
योगमार्गप्रचाराय मया रूपमिदं धृतम्।।६।।

मैं ही गोरक्ष हूँ। योग प्रचारार्थ मैंने यह रूप धारण किया।

जाति जन्म का उदाहरणान्तर से अवगमन—कृष्ण जी यद्यपि यदुवंशी थे उनके विश्वरूप का जाति जन्म और नृसिंहावतार का जाति

जन्म कौन सा था जो यहां थे वैसे गोरक्षनाथ के खोज लो एवं भगवान विष्णु और शिव के रूप रूपान्तर उनकी लीलाएं देवदनुजनरनरेन्द्रादियों से अगम्य एवं अचिन्त्य ही हैं।

गोरक्षनाथमन्त्रे तु गृहिते विधिपूर्वकम्।
तस्यानुष्ठानमात्रेण भवेत् सिद्धिर्ध्रुवं नृणाम्।।७।।

श्री गोरक्षनाथ मन्त्र विधि पूर्वक ग्रहण कर उसका अनुष्ठान करने से मनुष्य को अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है।

देवा ऊचु :—

देवदेव महादेव! गोरक्षस्य च पूजने।
को मन्त्रः को विधिश्चास्य तत्सर्वं कथयस्व नः।।८।।

देवता बोले—हे महादेव! गोरक्षदेव की पूजा की कौन सी विधि है! कौन मन्त्र है! यह सब हम लोगों को कहो।

महादेव उवाच—

देवाः शृणुत! वै सर्वे गोरक्षस्य विधिक्रियाः।
गोरक्ष मनसि ध्यात्वा योगीन्द्रो भविता नरः।।९।।
बिना गोरक्षमन्त्रेण योगसिद्धिर्न जायते।
गोरक्षस्य प्रसादेन सर्वसिद्धिर्न संशयः।।१०।।

अर्थ सरल है।

कृष्ण उवाच—

धन्योऽसि मुनिशार्दूल! गोरक्षस्य विधिक्रियाः।
याः प्रोक्ता भवता श्रोतुं परं कौतुहलं हि मे।।११।।

गर्ग उवाच–

शृणु त्वं राधिकानाथ! विधिपूर्वंकजां क्रियाम्।
गुह्यातिगुह्यमन्त्रस्य वेदस्यागमनं विधिः।।१२।।

श्री गर्ग जी बोले–हे राधिकानाथ! तुम विधिपूर्वक गोरक्षनाथ जी के अनुष्ठान की विधि सुनो। गुप्त से गुप्त मन्त्रों को रखने वाले वेद का आगमन मार्ग विधि कही जाती है।।१२।।

गुह्यातिगुह्यया: परमा गोरक्षस्य विधिक्रिया:।
वदामि भवतामग्रे शृण्वन्तु खलु तत्त्वत:।।१३।।
अंगन्यासं करन्यासं दिङ्न्यासं मन्त्रमेव च।
ध्यानं नाम्नां सहस्रं च सर्वं व्याख्यायते मया।।१४।।

अत्यन्त गुप्त से गुप्त गोरक्षनाथ जी की विधि क्रियाओं को मैं गर्ग तुम्हारे समक्ष कहता हूँ सुनो! पूर्व अंगन्यास बाद करन्यास, दिङ्न्यास, मन्त्र तथा ध्यान और सहस्रनाम ये सब मैं तुमसे कहता हूँ। इत्यादि के मन्त्र श्री गोरक्षनाथ जी की पूजादि सम्बन्धित बहुत से कल्पद्रुमतन्त्रशास्त्र में कहे हैं जो यहाँ अधिक उपयोगी न होने से और ग्रन्थ विस्तार भय से नहीं दिये जिसे देखने की आवश्यकता हो वह वहाँ या गोरक्ष–सहस्रनाम के आदि में देख सकता है।

अत्र मंत्रं प्रवक्ष्यामि शृणुत्वं यदुनन्दन।
श्रीकल्पद्रुमतन्त्रेषु ये मन्त्रा: कथिता: पुरा।।१७।।
जपन्ति साधका धीरास्तान् मन्त्रान् श्रद्धयान्विता:।
शीघ्रंभवति संसिद्धि: साधकानांशिवाज्ञया।।१९।।

हे कृष्ण जो मन्त्र पुरा कल्पद्रुम में कहे हैं जिनके जप से शीघ्र ही साधकों को शिवकृपा से सिद्धि होती है उनको कहता हूँ सुनो!

गोरक्षनाथमन्त्राणां प्रभावोवर्णितः पुरा।
कल्पद्रुमतन्त्रेषु बहुभिर्मुनिभिः कलौ॥२०॥

कलियुग में श्री गोरक्षनाथ मन्त्रों का प्रभाव पूरा मैंने भी कल्पद्रुम तन्त्रों में कहा और ऋषियों ने भी कहा।

गोरक्षगायत्री मन्त्र—

ॐ ह्रीं श्रीं गों गोरक्षनाथाय विद्महे शून्यपुत्राय
धीमहि तन्नो गोरक्षनिरञ्जनः प्रचोदयात्—इति मन्त्र।

इस मन्त्र में भी माता शून्यमयी तस्य उस अवस्था विशेष को लक्ष्यीकृत्य ही 'शून्यपुत्राय' इस नाम से गायत्री मन्त्र में श्री गोरक्षनाथ जी को कहा है एवं इस शून्यपुत्राय, पाठ ने शून्यरूप आकाश में उन्मनी अवस्था में व्यवस्थित हो महादेव ने स्वयं को गोरक्षनाथरूपान्तर कर अतिचित्ताकर्षक वन में स्थित गुहा में स्वसंकल्पनिर्मित सिंहासन पर आ विराजमान होने की स्वीकृति दी है दोनों शून्य की समानता होने पर यह सिद्ध है कि श्री महादेव श्री गोरक्षनाथरूप में स्वयंभू हुए हैं।

शतलक्षमितं जप्त्वा साधकः शुद्धमानसा।
साधयेत्सर्वकर्माणि नात्र कार्या विचारणा॥२१॥

शुद्ध मानस बाला साधक उक्त गायत्री मन्त्र को एकलक्ष जप कर मनोवांछित प्राप्त करता है इसमें अणु भी सन्देह नहीं॥२१॥

यो धारयेन्नरो नित्यं मन्त्रराजं विशेषतः।
स योगसिद्धिमान्पोति गोरक्षस्य प्रसादतः॥२२॥

जो मनुष्य इस मन्त्रराज को धारण करता है श्रद्धा से वह योगसिद्धि को श्री गोरक्षनाथ जी की कृपा प्राप्त करता है।

अथ गोरक्षसहस्त्रनाम

योगराशिर्योगगम्यो योगिराड् योगवित्तमः।
स योगमार्गयुतो याता ब्रह्मचारी वृहत्तपाः।।३।।
शंकरैकस्वरूपश्च शंकरध्यानतत्परः।।४।।
आदिनाथो सोमनाथो सिद्धिनाथो महेश्वरः।
नाथनाथो महानाथो सर्वनाथो नरेश्वरः।।८।।
सृष्टिकर्ता सृष्टिहर्ता जगत्प्रलयकारकः।
भैरवो भैरवाकारो भयहर्ता भवापहा।।९९।।
शून्यः शून्यमयः शून्यजन्मा शून्यलयोऽलयः।
शून्याकारः शून्यदेवः प्रकाशात्मा निरीश्वरः।।९३।।

शून्य, शून्यस्वरूप, शून्य से उत्पन्न शून्य में लीन हो जाने वाले, निराकार शून्य में रहने वाले देवता प्रकाश पुञ्ज, स्वामी से रहित और सबके स्वामी।।९३।।

धर्मो धर्मविदां श्रेष्ठो धर्मज्ञो धर्मधारकः।
धर्मसेतुर्धर्मराजो धर्ममार्गप्रवर्त्तकः।।९११।।
वेदवेद्यो वेदविदो वेदवन्द्यो विदांपतिः।
वेदान्तवेद्यो वेदान्तकर्ता वेदान्तपारगः।।९९।।
कर्मसाक्षी कर्मकर्ता कर्माकर्मफलप्रदः।
कर्मण्यः कर्मदः, कर्मी कर्महा कर्मकृद् गुरुः।।९२२।।

गर्ग उवाच–

इदं गोरक्षनाथस्य स्तोत्रमुक्तं मया प्रभो!
नाम्नां सहस्त्रमेतद्धि गुह्याद्‌गुह्यतमं परम्॥१२४॥

गर्ग जी–हे श्री कृष्ण प्रभो! यह गोरक्षनाथ जी का सहस्त्रनाम स्तोत्र तुमसे मैंने कहा जो अत्यन्त गुप्त से गुप्त है। यह पूरा स्तोत्र १३९ श्लोकों में है जिसके कुछ श्लोक यहाँ श्री कृष्ण श्रोता गर्ग जी वक्ता की श्रद्धा भक्ति श्री गोरक्षनाथ जी के प्रति दर्शाने के लिये दिये हैं। उक्त कल्पद्रुम तन्त्र के पाठ से यह सिद्ध है कि जो जाति शिव की है वही गोरक्षनाथ जी की है शिव गोरक्ष अयोनिज और अभिन्न हैं। इस सन्दर्भ की पुष्टि पूर्वदर्शित प्रष्टा श्रोतागण देवताओं के और वक्ता श्री महादेव के वचनों द्वारा एवं प्रष्टा श्रोता श्री कृष्ण जी के और वक्ता श्री गर्ग मुनि के वचनों द्वारा हो जाती है। ये सब प्रमाणों में से पुष्टतम प्रमाण हैं। श्री गोरक्षनाथ जी की जाति जन्म सम्बन्ध के प्रश्न बोधार्थ एवं यथा उक्त वक्ताओं ने कहा है यही सत्य है। प्रश्न–वह जन्म जाति कब से सिद्ध है? उत्तर–जब जिस कल्प के जिस समय में गोपदवाच्यों की रक्षादिकों की आवश्यकता हुई होगी एवं ह्रसित हुए योग को पुन: समृद्ध करने आदि की जब आदिनाथ महादेव जी की इच्छा हुई होगी तब अव्यक्त का व्यक्त होने को जन्म कहा है।

आदिनाथ जी

महायोग ज्ञान के अध्यक्ष आदिनाथ जी एवं नाथ सम्प्रदाय के प्रारम्भकाचार्य हैं जब योग का ह्लास होता है तभी अपने रूप श्री गोरक्षनाथ द्वारा पुन: महायोग को सबल और समृद्ध करते हैं आदिनाथ योग के

अध्यक्ष तथैव नाथ सम्प्रदाय के गोरक्षनाथ आचार्य रूप से विख्यात होते हैं। इस प्रकार आदिनाथ से उत्तर सर्वदेव्यात्मिका चिदचिद्रूपा मूलशक्ति जगदम्बा उदयनाथाख्या, सन्तोषनाथ सत्यनाथ आदि द्वादशपन्थों में अपनी–२ शाखा के आचार्य हैं एवं आदिनाथ मत्स्येन्द्रनाथ श्री गोरक्षनाथ जी को नाथ सम्प्रदाय के द्वादश पन्थों के ही आचार्य व अध्यक्ष होने से इनके नाम से बारह शाखाओं (पन्थों) में से किसी एक–२ शाखा के आचार्य होने को घोषित नहीं किये गये क्योंकि आदिनाम तो महायोग और नाथ सम्प्रदाय के अध्यक्ष हैं ही और उदयनाथ मत्स्येन्द्रनाथ उनके उत्तराधिकारी हैं एवं गोरक्षनाथ जी आदिनाथ रूप ही हैं। अत: समय–२ अनुसार ये चारों ही नाथ सम्प्रदाय के प्रधानाचार्य हैं। इन चारों के अतिरिक्त सिद्ध सम्प्रदाय के द्वादश पन्थों के द्वादश ही आचार्य हैं अपने–२ पन्थ के जिन्हों को कह आये हैं एवं विधि हरि के नवनाथों में भी नाम हैं सन्तोषनाथ पन्थ विष्णु का है जो बाद में रामनाथ नाम से प्रसिद्ध हुआ सत्यनाथ पन्थ विधि का है। सन्तोषनाथी, रामनाथी, सत्यनाथी नामों से इनकी नाथ साधु सन्तति पुकारी जाती है।

इस प्रकार यह प्रसिद्ध सिद्ध है कि ब्रह्मा, विष्णु भी उक्त नाथ सम्प्रदाय की दोनों शाखाओं के आदि आचार्य हैं और बहुत प्राचीन काल में जो त्रिदेव विमर्श गिरिराज कैलास पर हुआ ये शाखायें उसी का ही फलस्वरूप हैं। वह विमर्श अब भी परम्परा से आगत तथा अनुश्रुत होता आ रहा है कि जिसमें ब्रह्मा, विष्णु जी ने भगवान आदिनाथ सदाशिव को महायोग प्रचार–प्रसार के लिये यथाशक्ति सहयोग देने की प्रणरूपा अपनी–२ स्वीकृति दी थी। अत: यह सिद्ध है कि ये उक्त दोनों पन्थ विधि हरि देवों से सम्बद्ध है एवं सर्व देविस्वरूपिणी–

सर्व ब्रह्माण्डमूलोपादानकारिणीभूता चेतनाचेतनात्मिका जगदम्बा भवानी नाथ सम्प्रदाय की आई शाखा (आई पन्थ) की प्रारम्भिका आचार्या है एवं नाथ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध नवनाथों में यही सर्वशक्तिमयी महाशक्ति भवानी दुर्गा ही उदयनाथ नाम से प्रसिद्धा है। बहुत प्राचीन काल में सिद्धमार्ग (नाथ सम्प्रदाय) के बारह और अठारह पन्थ नाम वाले योगियों में पारस्परिक विवाद तथा युद्ध होने के बाद नाथ सम्प्रदाय के प्रधान सर्वाध्यक्ष गुरु गोरक्षनाथ जी ने वर्तमान बारह पन्थों में अठारह पन्थों का समावेश कर दिया जो अब बारह ही पंथ प्रसिद्ध हैं श्री आदिनाथ, उदयनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ ये आचार्य बारह ही शाखाओं के अध्यक्ष हैं। शेष नवनाथ और ज्वालेन्द्रनाथ, धर्मनाथ (धर्मराज) कपिलमुनि, भगीरथ, रावण इत्यादि अपनी–२ शाखा के मुख्य आचार्य हैं।

भक्तजन

कई भक्तजन महानुभाव यह भी प्रश्न करते हैं कि नाथ सम्प्रदाय के इतने महान आचार्य हुए हैं जिनमें से किसी ने भी नाथ सम्प्रदाय के इतिहास की ओर लेख संकेत नहीं किया और न ही उन्हों के किसी शिष्य प्रशिष्य ने गुरु परम्परा के विचित्र चरित्र लेखन की ओर ध्यान का प्रत्यावर्तन किया। जिनमें बड़े–२ विद्वान् महासिद्ध योगीराज ब्रह्मज्ञानी अवधूत थे, तथैव उक्त सब कुछ जानने लिखने में सर्वसमर्थ थे किन्तु फिर भी इतिहास के सम्बन्ध में किसी ने अपना ध्यानाकर्षण नहीं किया, यह भी एक अद्‌भुत आश्चर्य है! कि इसमें क्या रहस्य है। जबकि शिक्षार्थ लोक कल्याणार्थ उनके द्वारा रचित अनेक ग्रन्थ कई भाषाओं में

मिलते हैं। क्या वे अपनी जीवनी या अपने आचार्यों का इतिहास नहीं लिख सकते थे? उत्तर–लिख सकते थे। पुन: क्यों न लिखा?

उत्तर–इसके कई कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह है कि नव (नौ) नाथ या धर्मराज कपिल मुनि आदि के द्वारा किसी का इतिहास लिखना उचित नहीं हो सकता है क्योंकि बड़े हमेशा बड़े कार्य की ओर ही ध्यान दिया करते हैं। यथा शिक्षार्थ तथा लोक कल्याणार्थ ही आवश्यक लिखना समझते हैं स्वयं तो वे सर्वाप्तकाम हैं ही स्वयमर्थ तो उनको गौरव प्रतिष्ठा आदि की आवश्यकता है ही नहीं जो कि अधिकतर इतिहासों में उपलब्ध होती है। इसलिये ऐसे महापुरुष अपनी मान बढ़ाई की तरफ ध्यानाकर्षण नहीं करते।

दूसरा उत्तर–उक्त आचार्यों के सन्दर्भ में जो–जो कुछ जनता ने जिस–२ के विषय में जो–२ कुछ लिखा है वे लेख जिस–२ के विषय में लिखे गये हैं वे उस–२ के इतिहास रूप ही हैं अत: पुन: इनको लिखने की आवश्यकता ही नहीं रही हो।

तीसरा उत्तर–यह है कि उक्त सर्वसमर्थ सर्वाप्तकाम नव नाथादि आचार्यों के शिष्य भी अपने गुरु रूप आचार्यों के त्रिधा आशीर्वाद, करुणावलोकन, शक्तिपात द्वारा शीघ्राति शीघ्र ही संसृतिचक्र को काटने वाली उपरति अवस्था में उपस्थित हो जाते थे। इस अवस्था में गम्भीरता से लयलीन हुए उन्मनी, तुर्या, सप्तमी, भूमिका में सम्मज्जित होने पर जो संसारिक कार्य गौरव प्रतिष्ठा इतिहास आदि वे सब उक्त अवस्थाव्यवस्थितों के लिये तुच्छ प्रतीत होने से असत्य सब छूट जाते हैं। वहां केवल सच्चिदानन्द मात्र की ही परमप्रियतारूपी आसक्ति सहज बनी रहती है।

इस प्रकार उनके शिष्यों में कृपारूपी शक्तिपात होने पर इतिहास लेख आदि संसार व्यवहार से उनके सम्बन्ध स्वयमेव विछिन्न हो जाते थे वहाँ संसार व्यवहार कार्यों का अभावोद्भव हो जाता है।

चौथा उत्तर–यह है कि जो गुण विद्या या पदार्थ अपनी यथार्थता तथा सर्वश्रेष्ठता में सर्वप्रथम ही है। इतने से उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध ही है। स्वर्धी का अभाव होने से यह तो सर्वानुभूत ही है कि यदि प्रतिस्पर्धी (जिससे बराबरी करने वाला) हो तो उससे तुल्य या उससे किसी प्रकार से अधिक दिखाने के लिये ही इतिहास या इश्तीयार बाजियें होती हैं, जो निरतिशय एक ही है। उसकी अपनी तुल्यता या अधिकता किसी से किसी भी प्रकार से दिखानी ही नहीं बनती क्योंकि स्वयं से तुल्यता और आधिक्य के अभाव होने से।

पांचवां उत्तर–यह है कि जिस कर्तव्य कार्य का स्वयं के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं समझते उस व्यर्थ के कार्य को या फालतू कार्य को करना या लिखना पूर्वोक्त तृतीय उत्तर वालों की तरह अवस्था विशेष में स्थिति वालों ने लिखना आवश्यक न समझा हो ऐसा भी हो सकता है।

छठा उत्तर–यह है कि श्रीनाथ सम्प्रदाय की परम्परा प्रथा ऐसी थी कि जो भी विद्या और उपदेश, चरित्र थे। वे मौखिक वाणी से उपदिष्ट तथ अनुश्रुत होते थे और बुद्धि में तथा वाणी में सुरक्षित रहते थे उन विद्यादिकों को लिपिबद्ध (लेखबद्ध) कर ग्रन्थरूप या संचिकारूप में लाने का पूर्वजों का आदेश (आज्ञा) नहीं होती थी एवं विद्या, शिक्षा, चरित्र आदिक का अधिकारियों में प्रचार संचार का प्रकार (शैली) मौखिक ही होती थी न कि ग्रन्थरूप से। लिपी की प्रथा को प्राचीन समीचीन नहीं

मानते थे अर्थात् गुरुमन्त्र की तरह गुप्तरूप से अधिकारी शिष्यों को परम्परा से मौखिक ही विद्या चरित्र शिक्षा आदि की अनुवृत्ति होती थी एवं पूर्वजों की परम्परा आज्ञा थी। मौखिक श्रवण प्रशिक्षण का अधिक महत्व कहा है और गुह्य विद्या अधिक और शीघ्र फलप्रदा कही गयी है जिससे विद्या चरित्र आदि के गुप्त रहने से उसमें श्रद्धा विश्वास का आधिक्य होने से वे अधिक फलीभूत होते हैं एवं पूर्वजों की आस्था थी इस प्रकार इतिहास रूप में विद्या, विद्याप्तशक्ति, शक्तिचरित्र, बल को नहीं लाते थे क्योंकि अभिमान मान बड़ाई को कल्याण पथ में विघ्नकृत होने से महासिद्ध ब्रह्मज्ञानी योगीश्वर इनसे दूर ही रहते थे। यथा–

अभिमानः सुरापानं गौरवं घोररौरवम्।
प्रतिष्ठा सूकरी विष्ठा त्रयं त्यक्त्वा सुखी भवेत्।।

इत्यादि वत्।

अभिमान को सुरा पान, गौरव को घोर रौरव नरक, प्रतिष्ठा को सूकरी की टट्टी जानकर इन तीनों को छोड़कर सुखी होवे एवं जानकर ज्ञानी जन मानादि से दूर रहते हैं।

सप्तम उत्तर–यह है कि पूर्व समय में अनेक विदेशी शासकों के शासन काल में अनेक भारतीय साहित्यक ग्रन्थों को नष्ट–भ्रष्ट किया गया था। उस समय प्रेसों के अभाव होने से किसी भी ग्रन्थ की अधिक से अधिक कोई हस्त लिखित एक या दो प्रतियां ही हुआ करती थीं। अद्यतन जिन नाथ सम्प्रदाय के ग्रन्थों के नाम उपलब्ध हैं किन्तु ग्रन्थों की उपलब्धि नहीं हो रही है हो सकता है कि उनमें जो कुछ लिखा गया नाथ सम्प्रदाय इतिहास के सम्बन्ध में वह भी भारतीय साहित्य संहार की आई बाढ़ में बह गया हो।

श्री नाथ सम्प्रदाय के प्रधानाराध्येष्ट माया ब्रह्म (शिव शक्ति) होने पर भी ब्रह्मा विष्णु देवादि नाथ सम्प्रदाय से सम्बद्ध होने के कारण पूर्ण समादरणीय दृष्टि से माने जाते हैं तथा विष्णु जी का सशक्ति पूजन आदि भी करते हैं एवं कई जैन बौद्ध भी उक्त के प्रभाव से च्युत नहीं हैं। बहुत से यवन भी नाथ मार्ग में श्रद्धा समादरणीयता पूर्वक अनुयायी हैं। अन्य भी कई जन समुदाय इसमें विश्वस्त हैं। इस सत्य स्वरूप तथा सत्यप्रद में अन्य सम्प्रदायों से इसमें कोई विशेषता थी जिसको अवश्य प्राप्तव्य जानकर अनेकों राजा महाराजाधिराज अपने–२ राज्य को तृणवत् त्यागकर महायोगेश्वर श्री गुरु गोरक्षनाथ जी की शरण तथा आधीनता ग्रहण कर अजरामरता प्राप्त की जो समस्त भूभाग में प्रचण्ड मार्तण्डवत् सुकीर्तिरूपी प्रभा से जाज्वल्यमान है। उस सर्व समर्थ गुरु गोरक्षनाथ जी की शरण का लब्धानुग्रह ही अजरामरता रूपी विशेषता और फल है। ३ॐ तत्सदिति पञ्चनदीय प्रदेश मण्डल स्यालकोट नाम के भाणेवाली ग्रामोद्भवलहनासिंहसुपुत्रेणभूतपूर्वनामवीरसिंहेन तथैव चेदानीं पञ्चालदेश मण्डलामृतसरग्रामकिरलगढे भगवती–दुर्गा मन्दिर संस्थापक श्री सूर्यनाथ शिष्येण–वर्तमानवीरनाथनामकेन श्रीनाथसम्प्रदायगम्भीर समस्यासु संक्षिप्तकृतो विमर्शः।

"अज्ञात काल निर्णय पर विचार"

किसी साधारण अज्ञात काल व्यक्ति के काल निश्चय के लिये कुछ–कुछ उसके समसामयिक व्यक्ति द्वारा कुत्रचित् ही निश्चय हो सकता है। किसी व्यक्ति के लेख से भी उसी देश की भाषा शैली आदि के मिलान तथा संतुलन से घुणाक्षर न्याय से कथचित् कुछ निश्चय का आभास हो सकता है। किन्तु अमरकाय, दिव्यदेह, देहसिद्ध महाशक्ति

सम्पन्न सिद्ध पुरुषों का उक्त उदाहरण या साधनों से उनके अज्ञात काल का निश्चय होना असम्भव है क्योंकि पूर्ण सिद्धयोग गुरु से सम्यक् योग साधता हुआ योगी द्वादश वर्षान्त में साक्षात् शिव व शिव तुल्य ही हो जाता है अर्थात् संसार की अवस्थात्रय करने की सामर्थ्य सम्पन्न हो जाता है एवं शिव ने स्वयं कहा है तथैव सिद्ध सिद्धान्त पद्धति के पश्चमोपदेश के श्लोक में–

सम्यगेकादशे वर्षे सर्वज्ञः सिद्धिभाग् भवेत्।
द्वादशे शिवतुल्योऽसौ कर्ता हर्ता स्वयं भवेत्।।४२।।
त्रैलोक्ये पूज्यते सिद्धः सत्यं श्री भैरवो यथा।।४३।।

अर्थात् बारहवें वर्ष में वह अवधूत योगी साक्षात् शिव के समान जगत की रचना और संहार करने के सामर्थ्य से युक्त हो जाता है। वह सिद्धयोग योगी भैरव के समान तीनों लोकों में पूज्य होता है।

एवं द्वादशवर्षैस्तु सिद्धयोगी महाबलः।
जायते सद्गुरो पादप्रभावान्नात्र संशयः।।४४।।

कई महासिद्ध योगी सैकड़ों वर्षो तक व्यक्तरूप में सबके दृष्टिपथ में रह कर फिर अन्तर्धान (अव्यक्त रूप में) कई वर्षों तक रह कर पुनः सिद्धदेह से प्रकट होकर कई वर्षों तक रह कर कई एक के दृष्टिपथ में पुनः यथेच्छया व्यक्त और अन्तर्धान होते रहते हैं। बिना उनकी इच्छा से उनको कोई नहीं देख सकता।

गुरु गोरक्षनाथ के शिष्य सिद्ध रत्ननाथ

जब अरबादि मुस्लिम देशों में भ्रमण करते हुए पहुँचे तो पेगम्बर मोहम्मद साहेब से उनका मक्का में मेल हुआ और कई एक विषयों पर

विचारों का परस्पर दोनों का आदान प्रदान होता रहा और तीन वर्षों तक अपने बौद्धिक तथा यौगिक अनेकों विस्मित करने वाली शक्तियों से उन देशों में मुस्लिम जनता को शिक्षित और प्रभावित करने के बाद जब वापिस पेशावर (परशुपुर) में आकर रुके तो कुछ खुरासानियों ने जिन्हों को उनके खुरासान से जाते समय में दर्शन नहीं हुए थे वे श्री रत्ननाथ की प्रसिद्धि से प्रभावित हुए इनके दर्शनार्थ खुरासानियों का जनसमुदाय पेशावर में आया जिनमें मौलवी नूरूद्दीन भी था, उसने दर्शन करके अपने कुछ सवालों के जबाब–तलब कर पुनः पूछा पीर साहेब आपकी इस समय उम्र कितनी है। तब रत्ननाथ जी ने कहा कि मेरे इस शरीर की आयु इस समय ६०० वर्ष से अधिक है। यह उक्त लेख 'इब्न हजर' नामक मुसलमीन व्यक्ति द्वारा रचित ग्रन्थ 'इशाब' में हैं।

अब यह स्पष्ट हो जाता है कि नूरूद्दीन के उम्र प्रश्न के बिना और रत्ननाथ जी की अपनी आयु बताये बिना यदि उस समय का इन दोनों के आयु सम्बन्धी प्रश्नोत्तर से अपरिचित मनुष्य उस समय में रत्ननाथ जी की आयु का अनुमान करता तो अधिक से अधिक ७०–८० वर्ष तक की आयु का करता तो शेष जो तकरीबन ५५० सौ वर्ष की उसकी आयु थी उसको तो अनुमान (अन्दाजा) करने वाला छोड़ता भड़भूंजे के भाड़ में अधिकतर अनुमान अन्दाजे इस प्रकार के ही हो रहे हैं। अन्य–अब यदि कोई नूरूद्दीन आदि को अमुक समय में रत्ननाथ के दर्शन हुए इस सीमा पर्यन्त के ही केवल ज्ञान वाला और नूरूद्दीन के प्रश्न से जाहिर छः सौ वर्ष से भी अधिक आयु रत्ननाथ जी की न जानने वाला केवल नूरूद्दीन आदि के काल से रत्ननाथ जी के काल की तुलना करने वाला रत्ननाथ की पूर्व आयु को हड़प ही कर

जावेगा और न रत्ननाथ जी की भविष्यत में जो व्यतीत होने वाली आयु उसका ही अन्दाजा लग सका कि जिसमें हो सकता है कई नूरूद्दीन व्यतीत हो चुके होंगे।

इसी प्रकार–सिद्ध ज्वालानाथ जी ने अपने शरीर को छोड़कर प्रथम समाधि त्र्यम्बकेश्वर में ली, पुन: कई वर्षों तक उसी शरीर से समाधि में रहने के बाद पुन: उसी शरीर से समाधि में से बाहर आकर कई वर्षों तक बाहर ही रहकर पुन: उस शरीर को छोड़कर सिद्ध ज्वालानाथ ने दूसरी समाधि हांडीभिड़िंग में ली थी तथा कई वर्ष उस शरीर से समाधि में दफन रहने के बाद फिर उसी शरीर में प्रविष्ट हो उसी शरीर में समाधि से बाहर आकर कई वर्षों तक बाहर रहकर, पुन: ज्वालानाथ जी ने तीसरी समाधि कदली मठ में ली थी। इस प्रकार एक शरीर का यह तीन बार जन्म मरण होने पर जो कि कई–कई वर्षों के अन्तराल वाला जन्म मरण है किन्तु फिर भी वह एक जन्म का ही सिद्ध जीवन काल है। यदि इसकी प्रथम समाधि से पूर्व का समय किसी के सन्तुलन से निर्धारण करे तो बाद की दोनों समाधियों का उन दोनों के अपने पूर्व काल का भी समय छूटता है तथा यदि बीच वाली या उत्तर वाली का काल किसी के सन्तुलन या समसामयिक से सिद्ध का समय निर्धारण करे तो एक प्रथम वाली का, एक उत्तर वाली दोनों में से किसी एक का निर्धारण करोगे तो एक समाधि का ही न्यूनाधिक किसी प्रकार से निर्धारण होगा दो का बरी हो जावेगा एवं इस प्रकार विचित्र शक्ति सम्पन्नों के काल निर्धारण न होकर अन्धे की लाठी के टुल्ल हैं, यदि लग गये तो लग गये नहीं तो फेल तो हैं ही। उक्त सिद्धों की तरह ही सिद्ध दरियावनाथ, सिद्ध खाकनाथ आदि की भी कथायें हैं। ये सब अटक़ल

पच्चु हैं इनसे ईश्वर तुल्य सिद्धों के काल निर्धारण नहीं हो पाते—यह तो बिना जीवनी वाले जन साधारण का ही कहीं किसी के समय का किसी से मेल मिलाकर, कहीं किसी के लेख से उस देश की उस समय की भाषा के साथ किसी अंश में साम्य होने से, उस समय का निर्धारण कर लेना कहीं कथंचित सत्य हो सकता है और अच्छा यह है कि उस जाति या सम्प्रदाय के समुदाय की मौखिकानुपूर्वीश्रुत परम्परा हो या उसके सम्बन्ध में कोई किंवदन्तियां हों तो सिद्ध पुरुषों के सम्बन्ध में सहारा मिल सकता है।

सिद्ध पुरुषों की अन्य नवजात कथा

लेखक—जब मैं नौ वर्ष छः मास की आयु में था तो मुझे एक उन्मत कुत्ते ने काटा था वहीं पास के गाँव में एक प्रज्ञचक्षु मुसलमीन फकीर रहता था वह उन्मत काटे हुए का चिकित्सक था तब मेरा बन्धु मुझे उसके पास ले गया तब उस फकीर ने अपनी विद्या द्वारा जिस रंग के सारमेय (कुत्ता) ने मुझे काटा था उसी रंग के सारमेय के बाल मेरे शरीर में से निकाले अर्थात् कुत्ते के विष को बालों में तबदील कर निकाल दिया, यह वाक्य १९२५ ईसवी का है।

इसके बाद पुनः ७३वीं ईसवी में उन्मत के काटे का मुझे पुनः शक हुआ तो इन्जेक्शन लगवाने लगा तो वे मुझे प्रतिकूल पड़े तब इन्जेक्शन छोड़ पूर्ववत् मुझे बाल निकालने वाले की जिला गुरदासपुर के रत्न ग्राम में सूचना मिली। मैं उसकी ओर चला तो व्यासनद के बेट का रास्ता था जहाँ सवारी कोई नहीं जाती थी, चलते—२ मुझे दिन के ग्यारह का समय हो गया गर्मी भूख प्यास ने मुझे आक्रान्त कर रखा था तब कहीं मार्ग में कोई किसान वृक्ष छाया में बैठ विश्राम कर रहा था तो मैने उसे

पछा कि यहाँ कोई सन्तों का स्थान है क्या? तब वह बोला कलोते गाँव के जो ये पेड़ दीख रहे हैं इन्हीं में सन्तों का मठ है वहाँ चले जाओ। जब मैं जाकर चार दिवारी के गेट के भीतर प्रविष्ट हुआ तो एक कमरे में सर्वप्रथम अड़बग साधु मिला। पारस्परिक नमस्कार के बाद वह मुझसे आने का समाचार ज्ञात कर मुझसे बोला कि छोड़ो कहाँ किसके पास जाओगे। महाराज के धूने से बभूति लेकर खाओ तो ठीक हो जाओगे। तब मैं और आगे स्थान में बढ़ा तो मठाध्यक्ष चार सेवादारों सहित बैठा दृग्गोचर हुआ तब उससे भी पारस्परिक नमस्कार हुआ तो उसने मुझसे पूछ कर सेवादारों से बोलकर मुझे खानपान करवाया । पानाश्न के बाद मैंने अपने आने का समाचार उसे दिया और जिसने मुझे धूने की बभूति खाने को कहा उसकी भी बात मैंने उस स्थानाध्यक्ष से कही कि क्या यह बात ठीक है? और यह धूना किस महात्मा का है? वह बोला कि जो जिस दु:ख का उपाय हो वह करना आवश्यक होता है। यही मैं सोचता तथा चाहता था और यह धूना उस महात्मा का है जिसने इस वट वृक्ष को मिश्री लगाई थी उसका नाम श्रवणनाथ था।

प्रश्न—कितना समय हुआ इस बात को?

उत्तर—पास में बैठा एक पुरुष जो उस समय ६० वर्ष की आयु से कुछ कम ही था वह बोला कि जी हमने बैसाखी वाले दिन लगभग एक डेढ़ बजे स्वयं तोड़कर खाई थी, तब मैं १२—१३ वर्ष का था, यह किस्सा लगभग ईसवी १९१७—१८ का है। यदि आप वह मिश्री देखना चाहो तो ग्राम में एक वृद्धा ब्राह्मणी ने अभी तक कांच के अमृतबान में तभी की रखी हुई है जो उसे देखना चाहे उसे वह दिखाती है। प्रतिदिन

उस मिश्री को धूपित करती है जब मैंने यहाँ तक सुना तो मेरी श्रद्धा खोज और बढ़ी। तब मैंने पूछा—मिश्री लगाई क्यों, कैसे? उत्तर—पंजाब में बैशाख मास की देशी एक तारीख को जगह—जगह बैसाखी के उत्सव होते हैं, जो अब कम होते जा रहे हैं। उस दिन इस स्थान में भी बैसाखी का मेला था और इस स्थान में दो मंजिला एक छोटा सा मकान था। बैसाखी से पूर्व कोई मीठी वस्तु का प्रसाद आने वाले यात्री सेवकों के लिये मकान की दोनों मंजिलों में रखा हुआ था। तब धूने वाले महात्मा श्रवणनाथ ने अपने शिष्य से कहा कि जो भी मेले पर सेवादार यात्री आवें उन सबको प्रसाद दोनों मंजिलों वालों में से देते रहना शिष्य ने स्वीकार किया। मेले के दिन प्रातःकाल से ही आने वाली सभी जनता को प्रसाद देता रहा। जब दिन के एक डेढ़ का समय हुआ तो गुरु के पास और नये यात्री आ गये, तब शिष्य से गुरु बोले इनको भी प्रसाद लाकर दो! तब शिष्य ने गुरु से कहा कि प्रसाद समाप्त हो गया है! तब गुरु जी ने शिष्य से कहा क्या ऊपर से भी समाप्त हो गया है! तब शिष्य ने कहा जी हाँ ऊपर की मंजिल वाला भी समाप्त हो गया है। शिष्य तब वटवृक्ष के नीचे धूने के पास था और धूने के पास बैठे हुए गुरु ने शिष्य को कहा—जहाँ तुम खड़े हो यहाँ देखो ऊपर से भी खत्म हो गया है क्या? तब वट के नीचे गुरु के पास खड़े शिष्य ने जब ऊपर को नजर की तो वट के समस्त पत्ते, फल, लघु शाखायें मिश्री बने शिष्य और समस्त जनता को दिखाई दिये, तब सब जनता टूट पड़ी और तोड़—२ कर ऊपर चढ़कर तथा नीचे से खाने लगी। तब वह पुरुष कहता था कि हमने भी तोड़ी और खाई थी, वह दिन मेले का इस प्रकार व्यतीत हुआ। बाद में कई दिन पर्यन्त लोग आते—जाते महात्मा से पूछने लगे कि महाराज! यह मिश्री

आपने कैसे लगाई तब महात्मा ने सही–२ उन लोगों से कहा कि भर्तृहरि, गोपीचन्द आये थे। हमारे यहाँ मेले पर प्रसाद की कमी देख वे ही अपनी माया वर्ता गये थे। हमने तो कुछ नहीं किया न ही हमारे से ऐसा हो सकता है। इस प्रकार कई दिन तक जनता की पूछताछ होने से श्रवणनाथ ने शरीर का त्याग कर दिया तो आगे और पूछताछ बन्द हुआ।

स्थानाध्यक्ष ने कहा कि यह उनका धूना, यह उनकी समाधि है तब मैंने भी श्रद्धापूर्वक समाधि, धूने को नमस्कार किया तथा धूने से भभूति ले कुछ खाई और स्वांगों में लगाई। इसके बाद जिस सेवादार ने कहा था कि हमने स्वयं तोड़कर मिश्री खाई थी उसके गाँव के पास ही पागल कुत्ते के हकीम का गांव था फिर हम दोनों ही उसके साथ गांव तक गये थे, दूसरे दिन प्रातः नौ बजे उस चिकित्सक ने जो कुछ करना था किया उसको किसी नाथ साधु का वर ही था और उसकी बतलाई हुई विधि द्वारा उसने किया, वह रविवार का दिन था। इस दिन उसके पास और भी कई लोग पागल कुत्ते के काटे हुए आए थे मेरा काम उसने पूर्व ही सबसे पहले कर दिया तो मैं अपने वास को लौट आया और परमेश्वर की कृपा रही।

सारांश–कहने का यह है कि श्रवणनाथ जी को जब १९१७–१८ की सन्धि काल में गोपीचन्द, भर्तृहरि नाथ योगियों के दर्शन हुए जिसको इनके पीछे के वृत्त का कुछ ज्ञान नहीं है वह श्रवणनाथ से उनकी उक्त समय में भेंट हुई तबसे ही गोपीचन्द, भर्तृहरि को श्रवणनाथ के समसामयिक काल का ही ओहदा देने लगे तो देने वाले को कहाँ तक उचित है और जिन्हों के लिए दिया जा रहा है उनके लिए क्या वह ओहदा

योग्य है?

अर्थात् सर्वथा ही अयोग्य ही होगा। श्रवणनाथ के समय में गोपीचन्द भर्तृहरि विद्यमान थे क्योंकि उसको उनके दर्शन हुए केवल इसी अंश को लेकर तीनों के समान काल की सन्तुलना करें जो कि भर्तृ गोपीचन्द की कई सैकड़ों शताब्दियां पूर्व की आयु से अज्ञ है। तो क्या? इसकी गणना भी अज्ञात काल महायोगीश्वरों के वास्तविक काल निर्धारणों में ही होगी क्या? जो सर्वदा असम्भव है। जिसने उनकी पूर्व की सैकड़ों शताब्दियों की आयु का भक्षण कर लिया और साक्षात् सदा शिवरूप गुरु गोरक्षनाथ जी की आयु के भी इसी तरह के कई काल निर्धारण किये गये जो कि ईसवी शताब्दी ५वीं से लेकर ११–१२ तक अगण्य ही हैं।

कई आधुनिक इतिहासज्ञ इससे भी आगे बढ़ चुके हैं एवं कई इतनी शीघ्र गति से उत्तर की ओर चल रहे हैं कि ईसवी दो हजार पूरा होने के बाद उक्त आचार्यों का बाद का समय निर्धारण करने में हो सकता है कि जुट जावें तो क्या यह सही समय का निर्धारण होगा? नितान्त असत्य ही होगा।

विक्रमी सम्वत का प्रारम्भ विक्रमादित्य से मानकर उसका बड़ा भाई भर्तृहरि को गोरक्षनाथ का शिष्य होने से गोरक्षनाथ जी का समय ईसा एवं ईसवी सन् से एक सौ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है किसी के मत से और सुरेशचन्द्र मजुमदार महोदय ने गोरक्षनाथ जी को ईसा से ३०० वर्ष पूर्व होना सिद्ध किया है।[1]

१. मजुमदार पृष्ठ २०० में।

नेपाल के इतिहास में कथन है कि पृथ्वीनारायण शाह को ईसा से २०० वर्ष पूर्व गोरक्षनाथ जी ने खड्ग प्रदान कर उनको नेपाल का राज्य हस्तगत कराया था और वप्पा रावल को भी खडग प्रदान कर राज्य दिलाया था, उस–उस समय के अनुसार गोरक्षनाथ जी शस्त्र ग्रहण कराना भी धर्म रक्षार्थ आवश्यक समझते थे, किन्तु स्वयं शस्त्र न उठाकर संकल्प से ही सब कुछ करते थे एवं ब्रह्माण्ड पुराण तन्त्र महार्णव स्कन्धादि पुराणों में श्री गोरक्षनाथ जी की चर्चायें हैं तथा विभिन्न विद्वानों ने गोरक्षनाथ जी का यथा मति समय दिया है। अब सवाल यह पैदा होता है कि इन सब उक्त महापुरुषों के समय निर्धारण सही कसौटी पर परखे गये हैं क्या? यदि सब ही सही है तो सबका एकमत्य होना भी आवश्यक है किन्तु ऐसा है नहीं। यदि इन सब अन्दाजों में से किसी भी एक का सही है तो वह कौन सा है यह भी अनिर्णीत है। इन सब में से उक्त आचार्यों का निर्धारित काल किसका सही है, इसका कोई उत्तर नहीं है। किन्तु फिर भी उन विद्वानों को मैं धन्यवाद का पात्र समझता हूँ कि जिन्होंने किञ्चित् भी उक्त आचार्यों के सन्दर्भ में अपने मस्तिष्क की सही प्रभा में श्रद्धा से समय दिया है।

अपने लेख पर लेखक का वक्तव्य

मैंने जो लिखा है वह नाथ सम्प्रदाय की गुरु परम्परा की मौखिक प्रणाली द्वारा अनुश्रुत होती आ रही अलिपिबद्ध अव्यक्त सूक्ष्मता जो नाथ सम्प्रदाय का ऐतिहासिक शरीर है, को व्यक्त किया है। वह कुत्रचित् अनेक जनोक्तियाँ के आधार पर एवं स्वयं महादेव के वचनों तथा गर्गमुनि के वचनों के आधार पर और उचित स्वानुभवरूप के आधार पर है।

यथा–सदाशिव आदिनाथ जिनका काल (समय) निर्णय सर्व

देवासुर सिद्ध नरादियों से भी अगम्य अचिन्त्य है।

किन्तु फिर भी मैंने धृष्टता से उस सदा शिव रूप महावधूत शिरोमणि समस्त मायाजाल से अतीत महायोगमाया युक्त सच्चिदानन्द स्वरूप गोरक्षनाथ के सम्बन्ध में प्रयास किया वह दीपक द्वारा श्री सूर्य को उजाला करने का ही प्रयास है। जिसके गुणों का उल्लेख करने को पुष्पदन्त की सूक्ति कहती है कि हे ईश! समुद्र रूप दवात में महापर्वत के समान स्याही को डालकर कल्प वृक्ष की लेखनी बना शारदा हर समय पृथ्वी रूप कागज पर लिखती रहे तो भी आपके गुण अलेख्य अगाद ही रहेंगे।

तो फिर हम जैसे मन्दमति क्या लिखना है यदि आपकी कृपा हो तो कुछ बाँकी टेढ़ी कारें खींच सकता हूँ। आपने अखिल प्राणीवर्ग पर कृपा कर योग प्रचार के द्वारा देवासुर नर नरेन्द्रों के कल्याणार्थ, रूपान्तर कर सदाशिव ही गोरक्षनाथ रूप में स्वयंभू हुए। यथार्थत: आपका काल निर्णय यावत्प्राकृतिक साधनों से अनिर्णीय है। इसी प्रकार आदिनाथ जी के शिष्य श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी का भी समय जो हमने दिया वह भी निमित्त मात्र ही है।

आदि योग युगादि ब्रह्मा सेवते शिव माधवम् इससे ब्रह्मा, शिव, विष्णु भी योग का सेवन करते हैं। इस प्रकार योगाध्यक्ष तथा योग प्रचारक आदिनाथ जी के योग प्रचार के प्रथमोत्तराधिकारी मत्स्येन्द्रनाथ जी ही हैं जिनके काल निर्णय को भी यथार्थत: आदिनाथ जी ही जानते हैं। इत्यादि अन्य सिद्धों का समय भी प्राय: उक्तवत् ही है।

इति रोड़का मुहाना गुरु स्थान के श्री १०८ श्री सूर्यनाथ जी के शिष्य पञ्चालदेशीय मंडलामृतसरान्तरगत ग्राम किरलगढ़ के श्री दुर्गा मन्दिर स्थानाध्यक्ष आई पंथी श्री वीरनाथ द्वारा रचित श्री नाथ चरित में अष्टम पुष्प समाप्त हुआ।

❊ अथ नवम पुष्प ❊

अजपा गायत्री जपादि विधि

हृदयदेश में रहने वाला प्राणवायु हकार से बाहर निकलता है और सकार से भीतर प्रवेश करता है। यही हकार सकारात्मक प्राणवायु अनुस्वावर सहित होने से हंस मन्त्र बनता है अर्थात् जिस समय प्राणवायु बाहर को आता है तो उस समय हकार की सी ध्वनि होती है। अत: उसी समय हकार का ध्यान करना चाहिये। जब प्राणवायु भीतर को जाता तो सकार की ध्वनि करता। इसलिये उस समय सकार का ध्यान किया जाता है। हंस को उल्ट देने से इन अक्षरों से 'सोऽहम्' मन्त्र बनता है। इस भाव को लेकर विवेक मार्तण्ड में कहा है–

[१]हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुन:।
हंस सोहमिमं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।१।।

इस मन्त्र को विधिपूर्वक जपने से जीवात्मा परमात्मा की एकता का बोध होता है। इस मन्त्र को जीव बिना प्रयत्न और गौर के सहज विवशवर्ती हुआ निरन्तर अजपा जाप को जपता रहता है। इसी का नाम प्राणविद्या और महाविद्या है। कहा है कि–

[१]कुण्डलिन्यां समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित्।।२।।

मूलाधार में रहने वाली कुण्डलिनी शक्ति में उत्पन्न हुई और जीव की प्राण शक्ति को धारण करने वाली अजपा नाम की गायत्री ही प्राणविद्या है। क्योंकि प्राणपति के साथ बिना प्रयत्न के ही इसका जप

१– गोरक्ष प० १ श. ४२, ४६

होता रहता है। इसलिये ही इसको मत्स्येन्द्रनाथादि योगाचार्यों ने इसको महाविद्या कहा है जो योगविद्या विशारद गुरु की बताई हुई विधि से इसको जानता है वही माहेश्वरी विद्या के रहस्य को जानता है। इस महत्व को गुरु गोरक्षनाथ जी ने भी कहा है कि—

[१]अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतन्न भविष्यति।।४५।।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।।४४।।

यद्यपि इस हंस मन्त्र का जप जीव को स्वभावसिद्ध है तथापि वह तब तक फलीभूत (फल देने वाला) नहीं होता जब तक विधिपूर्वक उसका ज्ञान नहीं होता तथा उसका संकल्प नहीं किया जाता है। अर्थ—इस अजपा के संकल्प मात्र से योगी सर्वपापापुंज से मुक्त हो मोक्ष लाभ करता है। इस विद्या के समान न कोई विद्या है न कोई जप है न कोई ज्ञान है न होगा। यथा—

[१]षट् शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।४३।।

आज सूर्योदय से एक घड़ी पूर्व दूसरे सूर्योदय से उसी समय तक अर्थात् एक घड़ी पूर्व तक जीव २१६०० इक्कीस हजार छः सौ अजपा मन्त्र जपता है अर्थात् इतने श्वास छोड़ता है यही अजपा गायत्री है जिसके जप का जाप बिना मन वाणी के व्यापार से ही स्वयमेव होता रहता है और समस्त मन्त्रजाप मनोवाणी के प्रयत्न से होते हैं।

१— गोरक्ष पद्धति १ श० श्लोक ४४—४५—४३

इसकी संकल्प विधि

सूर्योदय से पूर्व ही शयन से उठकर स्नान या पञ्चस्नान करके शुद्ध वस्त्रों को धारण कर शुद्धासनासीन हो किञ्चित् यदि धूप भी धूकाले वे तो वर है। अब संकल्प कल्पना इस प्रकार करना कि–

संकल्प–

ॐ अद्येह पूर्वेद्यु: सर्वावस्थास्वहोरात्रचरितनासापुटादिनि:सृतोच्छ्वास नि:श्वासात्मकषट्शताधिकैकविंशति:सहस्रसंख्याकाजपागायत्रीजपं मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरानाहत विशुद्धाज्ञाचक्रब्रह्मरन्ध्रस्थितेभ्यो गणपति ब्रह्मविष्णुरुद्रजीवगुरुपरमात्मभ्य: सिद्धिसावित्री लक्ष्मी गौरी प्राणशक्ति ज्ञानशक्ति चिच्छक्ति समेतेभ्यो यथासंख्यं षट्शतं, षट्सहस्रं, षट्सहस्रं, षट्सहस्रं, सहस्रमेकं सहस्रमेकं सहस्रमेकं अजपा गायत्री जपं प्रत्येकं निवेदयामि इति निवेद्य। पुनरद्य प्रात:कालादारम्य द्वितीयप्रात:कालपर्यन्तं नासापुटादिसर्वावस्थासु निश:वासोच्छ् वासरूपेण जायमानं षट् शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकम जपागायत्रीजपं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमहोरात्रेणाहं करिष्येइति यजमानोजपसंकल्पं कृत्वा स्वकृत्यमाचरेत्।।

इस अजपा के समान जीव ब्रह्म का अभेद कराने वाला और कोई जप साधन नहीं है। जिसके करने का भी कष्ट प्रयत्न नहीं है। बिना संकल्प के यह स्वयमेव होता रहता है। अद्वैतानुभव कराने वाला इसके सदृश अन्य कोई शास्त्र नहीं है और न होगा ही।

[1]प्रत्येकार्थ संख्या जप की

षट्शतानि गणेशस्य षट्सहस्रं प्रजापते:।
षट्सहस्रं गदापाणे: षट्सहस्रं पिनाकिन:।।१।।

सहस्रमात्मलिंगाय सहस्रं गुरुमर्पयेत्।
परात्मने सहस्रन्तु सङ्कल्पविधिरेव च।।२।।

अन्या संकल्पविधि यथा–

(१) चतुर्दल विशिष्ट मूलाधार चक्रस्थायमूषक वाहनाय साङ्गोपाङ्गसहिताय स्वशक्तिसिद्धियुताय श्री महागणाधिपतयेऽजपाजपानांसोऽहमित्येवं रूपाणां षपट्शतानि पाद्यादिकञ्चसमर्पयामि नमः प्रीयताम्।।१।।

(२) **षट्दल**–विशिष्टस्वाधिष्ठान चक्रस्थाय हंसवाहनादि सांगोपांग सहिताय स्वशक्तिसावित्रीयुताय श्री ब्रह्मणेऽजपा जपानां सोऽहमित्येवं रूपाणां षट्सहस्राणि अर्ध्यपाद्यादिकञ्च समर्पयामि नमः प्रीयताम्।

(३) [१]**दशदल**–विशिष्टमणिपूरचक्रस्थाय गरुड़वाहनादि सांगोपांग सहिताय स्वशक्तिलक्ष्मीयुताय श्री महाविष्णवेऽजपाजपानां सोऽहमित्येवं रूपाणां षट्सहस्राणि अर्ध्यपाद्यादिकञ्च समर्पयामि नमः प्रीयताम्।

(४) **द्वादश दल**–विशिष्टानाहतचक्रस्थाय वृषभवाहनाय सांगोपांग सहिताय स्वशक्तिगौरीयुताय श्री महेश्वरायाजपाजपानां सोऽहमित्येवं रूपाणां षट्सहस्राणि अर्ध्यपाद्यादिकञ्च समर्पयामि नमः प्रीयताम्।

(५) **षोडश दल**–विशिष्टविशुद्धचक्रस्थाय सांगोपांग सहिताय प्राणशक्तियुताय श्री स्वजीवात्मनेऽजपाजपानां सोऽहमित्येवं रूपाणांमेकसहस्रं पाद्यादिकञ्च समर्पयामि नमः प्रीयताम्।

(६) **द्विदल**–विशिष्टाज्ञाचक्रस्थाय सांगोपांग सहिताय ज्ञानशक्तियुताय

१–यह सब विभूतियां श्री गोरक्षनाथ ग्रन्थों की हैं गोरक्ष प०प्र०श० ४४, ४५ श्लोकाः पृ० २४

सदाशिवस्वरूपाय गुरुवेऽजपाजपानां सोऽहमित्येवं रूपाणामेकसहस्रद्यादिकञ्च समर्पयामि नमः प्रीयताम्।

(७) **सहस्रदल**—विशिष्टब्रह्मचक्रस्थाय सांगोपांगसहिताय चिच्छक्तियुताय श्री परमात्मनेऽजपाजपानां सोऽहमित्येवं रूपाणांमेकसहस्त्र पाद्यादिकञ्च समर्पयामि नमः प्रीयताम्।

पुनरद्य—प्रातःकालमारभ्य द्वितीयप्रातःकालपर्यन्तं नासापुटादिनिःसृतोच्छ्वासनिःश्वासात्मकं जायमान षट्शताधिकैकविंशतिः सहस्रसंख्याकं अजपागायत्री जपमहोरात्रेणाहं करिष्ये। इति यजमानः संकल्पं कृत्वा स्ववृत्तिमा चरेत्। अर्थ—

१. मूलाधार चक्र—मूलाधार में चार दल वाला कमल है। उसी में त्रिकोणाकार काम पीठ है। जिसके ध्यान मात्र से ही सिद्धों को समस्त पदार्थों की प्राप्ति होती है। वहीं पर अपनी ऋद्धि सिद्धि सहित गणेश जी का निवास है। वहां गणेश जी के लिये छः सौ अजपात्मक श्वासों को अर्पण किया जाता है।

२. स्वाधिष्ठनचक्र—इसी प्रकार लिंग मूल में जो स्वाधिष्ठान चक्र हैं। उस में हंसवाहन तथा स्वशक्ति सावित्री सहित ब्रह्मा जी विराजमान हैं। एदर्थ छः हजार श्वासरूप अजपा मन्त्र अर्पण होता है।

३. मणि पूरक चक्र—नाभि में स्थित मणिपूरक चक्र दशदल वाला कमल है। वह अष्टवलयरूप सर्पाकार नाडी से लिपटा हुआ वहां गरुड़ वाहन सहित स्वशक्तिलक्ष्मी सहित विष्णु जी का निवास है यहां इसके लिये छः सहस्र श्वासरूप अजपा मन्त्र अर्पण करें।

४. अनाहतचक्र—हृदय में अनाहत चक्र है। यहां अनाहत चक्र वाला ऊपर को मुख वाला अठारह दलयुत पद्म है यहाँ वृषभ वाहन तथा

स्वशक्ति भवानी सहित महेश्वर का निवास है। यहाँ छ: सहस्र श्वासरूप अजपा गायत्री मन्त्र अर्पण किया जाता है।

५. **विशुद्ध चक्र**—एवं कण्ठस्थित विशुद्ध चक्र में सोलह दल वाला पद्म है। यहां जीव का निवास है अपनी अज्ञान शक्ति या प्राण शक्ति सहित है इसके अर्पण एक हजार श्वासरूप अजपा गायत्री के मन्त्र अर्पण करें।

६. **आज्ञा चक्र**—भ्रूकुटियों के मध्य में दो दलयुत आज्ञा चक्र हैं यहां ज्ञान शक्ति सहित सदाशिव का वास है। एक सहस्र श्वास मन्त्र जप यहां अर्पण करें।

७. **ब्रह्म चक्र**—एवं ब्रह्मचक्रस्थ मात्रिका वर्ण सहित सहस्त्रदल पद्म है वहां चिच्छक्ति सहित परमेश्वर का निवास है उस सर्वेश्वरार्थ भी एक सहस्र श्वास अजपा गायत्री मन्त्र जप अर्पण करें उक्त संकल्प विधि द्वारा।

१. **प्रत्येक चक्रस्थ कमलों में बीजरूप वर्णों का वर्णन**—प्रथम मूलाधार में चतुर्दल कमल है। उसकी प्रत्येक कर्णिका (पंखड़ी) में व से लेकर स पर्यन्त 'वँ शँ षँ सँ ये वर्ण बीज रूप हैं।

२. **स्वाधिष्ठान चक्र**—दूसरे लिंगमूलस्थ स्वाधिष्ठान चक्र में षड्दल वाला पद्म है। इसके षड्दलों में क्रमश: भ से लेकर वकार पर्यन्त भँ मँ यँ रँ लँ वँ ये छ: मात्रिका बीज वर्ण विराजमान हैं।

३. **मणि पूरकचक्र**—नाभिस्थ मणिपूरचक्र में दशदल वाला पद्म हैं। उसकी प्रत्येक कर्णिका (पखंड़ी) में क्रम से ड से लेकर फ पर्यन्त डँ ढँ णँ तँ थँ धँ नँ पँ फँ ये दश मात्रिका बीज वर्ण सुशोभित हैं।

४. **अनाहत चक्र**—हृदयस्थ अनाहतचक्र में द्वादश दल वाला पद्म

है। उसकी प्रत्येक कर्णिका में यथा क्रम क से लेकर ठ पर्यन्त कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ ये बारह मात्रिक वर्ण हैं।

५. विशुद्ध चक्र—कन्ठदेशस्थ विशुद्ध चक्र में सोलह दल वाला कमल है। उसकी प्रत्येक कर्णिका में यथा क्रम अ से लेकर अः पर्यन्त अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐं ओं औं अँ अः ये षोडश स्वरस्वरूप मात्रिका बीज वर्ण सुशोभित हैं।

६. भ्रूमध्याज्ञा चक्र—एवं भ्रूमध्य में दो दल वाला कमल है उसके दोनों दलों में क्रम से हं क्षं ये दो मात्रिका बीज वर्ण रहते हैं।

७. ब्रह्मरन्ध्र—एवं ब्रह्मरन्ध्र में सहस्त्रदल पद्म है इस प्रकार सकल वर्ण स्थित परमेश्वर को तथा सर्वचक्रस्थ सर्वेश्वर को प्रमाण करता हूँ।

यह पूर्वोक्त मन्त्र योग जब प्राणायाम द्वारा क्रिया रूप में परिणत हो जाता है तब उसे हठ योग कहते हैं। हकार से सूर्यस्वर और ठकार से चन्द्रस्वर ग्रहण होते हैं। चन्द्रस्वर और सूर्यस्वर का सुषुम्णा नाड़ी में मेल होने से 'हठ योग' कहाता है अर्थात् इड़ा पिंगला नाड़ियों के द्वारा सुषुम्णा नाड़ी में प्राण की एकता करता हुआ जो योगी प्राण की गति को स्ववशवर्ती करके परम सदाशिव (परब्रह्म) का ध्यान करता है उस ध्यान की परिपक्वता का नाम हठ योग है। यह सब अजपा गायत्री वर्णन योगाचार्य भगवान गुरु गोरक्षनाथ कृत गोरक्षपद्धति तथा सिद्धसिद्धान्त पद्धति में से उद्धृत है।

इस शरीर मकान में कौन–२ सी वस्तुयें हैं

उनके सामान्य परिणाम का निरूपण करते हैं। इस में साढ़े तीन पल वीर्य, बीस पल रक्त, ग्यारह पल मेद, दश पल मज्जा, शतपल मांस, दशपल पित्त, बीस पल उष्मा। बीस पल वायु रहता है। यहां यद्यपि

वायु और उष्मा में विशेषत: स्थूल दृष्टि में इनमें गुरुत्व धर्म दृग्गोचर नहीं होते जिन्हों का पलादि द्वारा मान किया जा सके। तथापि जिस परिमाण या यन्त्र विशेष से उष्मा और वायु का माप (मान) करते हैं यथा थर्मामीटर है एवं प्रकार के किसी यौगिक माप से माप कर ही आचार्य ने कहा है यथा ऋतम्भरा प्रज्ञारूपी यौगिक माप ज्ञान हैं। जिन्हें योगी जान सकते हैं तथा तीन सौ ६० अस्थियां इनसे आधे इनके जोड़ हैं एवं साढ़े तीन करोड़ रोम तथा रोम कूप हैं। यह सब माता–पिता के रज वीर्य का ही परिणाम प्रसार है। यह शरीर दुर्ग वातपित्त कफ रस रुधिर मांस मेद अस्थि मज्जा शुक्र इन दश धातुओं से निर्मित है यह पिण्ड वर्णन है।

पिण्ड का विचार

१. मूलाधारचक्र—इस शरीर में नौ चक्र हैं उनमें भी गुदा के दो अंगुल ऊपर और लिंग से दो अंगुल नीचे चार अंगुल परिमाण मूलाधार चक्र है। उसी आधार में तीन बार लिपटा हुआ गोलाकार त्रिकोण भगमंडल के सदृश और परब्रह्म प्राप्ति का हेतु ब्रह्मचक्र है। इसके निकट कुछ ऊपर मूलकन्द है। वहां वह्नि के आकार वाली देदीप्यमान शक्ति का ध्यान करें वहीं त्रिकोणात्मक कामरूप पीठ है। इस कामरूप पीठ के ध्यानमात्र से सर्वेष्टसिद्धि होती है। अत: इसका कामपीठ यह नाम सार्थक ही है।

२. स्वाधिष्ठान चक्र—स्वाधिष्ठान के पीछे की ओर मुख वाले प्रवाल (मूगें) के अग्रभाग सदृश शिवलिंग है उसका ध्यान करने से जगदाकर्षण की सामर्थ्य होती है।

३. नाभिचक्र—इसी को मणिपूरक भी कहते हैं। यह सर्प के सदृश नाड़ी को चारों ओर से पांच लपेटों से वेष्टित गोलाकार है इसमें प्रात:काल के करोड़ों सूर्यों के समान जाज्वल्यमान कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करने से सर्वसिद्धियां प्राप्त होती है। कुण्डलिनी को मध्यमा शक्ति भी कहते हैं। क्योंकि मूलाधारस्था सूक्ष्मा कुण्डलिनी शक्ति की ही यह अवस्था विशेष है। अत: इसका नाम मध्यमा शक्ति हुआ। इसका ध्यान चित्त को सत्त्व गुण में परिवर्तन करता है।

४. हृदय चक्र—इसको अनाहत चक्र कहते हैं इस अष्ट दलयुत अधोमुख कमल के मध्या में स्थित कर्णिका में शिवलिंग तुल्य ज्योति के ध्याता की सर्वेद्रिन्यें वशवर्ती होती हैं।

५. कण्ठ चक्र—यह चार अंगुल विस्तार वाला है इस चक्र के बाईं ओर ईड़ा नाम की और दायीं ओर पिंगला नाम की क्रमश: सूर्य–चन्द्र रूपिणी मूलकन्द से प्रकट होकर तत्तत्स्थानों में से होती हुई यहाँ आकर निकली है। इन दोनों नाड़ियों के मध्य में श्वेतवर्णा सुषुम्णा नाड़ी का ध्यान करे जो ब्रह्मरूपा है इस सुषुम्णा का नाम ही अनाहत कला है। इसके ध्यान से अनाहत की सिद्धि तथा सर्वमानसिक संकल्प पूर्ण होते हैं।

६. तालुचक्र—यहाँ सहस्रदल स्थित चन्द्रमण्डल से अमृत बिन्दु झरती है। इस अमृत बिन्दु का प्रवाह तालु की एक खास नाड़ी से होता है। वहीं पर लिंगाकार घण्डिका के मूल से लेकर तालु पर्यन्त राजदन्त (शंखनी विवर) नामक बिल है। क्योंकि राजदन्त बिल में ही शंखनी नाड़ी का सम्बन्ध है। यहीं दशवें द्वार का मार्ग है। यही शून्य अर्थात् निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करे इस शून्य के ध्यान से चित्तलय होता है।

७. **भ्रूमध्यचक्र**—यही आज्ञाचक्र है इस भ्रूचक्र के मध्य में दीप शिखा के आकार वाला अंगुष्ठपरिमाण ज्ञाननेत्र है वहीं इस ज्ञान नेत्र का ध्यान करे इस ध्याता की वाक् सिद्धि होती है जो कहता है वह सत्य हो जाता है।

८. **निर्वाणचक्र**—यही ब्रह्मचक्र या ब्रह्मरन्ध्रचक्र है। इस आठवें ब्रह्मरन्ध्र में सुई के बराबर धूम शिखा वाला निर्वाण चक्र है। वहां उस निर्वाण चक्र का ध्यान करने से मोक्ष होता है। वहीं पर जालन्धर पीठ है।

९. **आकाशचक्र**—यह आकाश चक्र है इसके सहस्र दल कमल के ऊपर मध्यभाग में सोलह दल सहित कमल है इसका मुख ऊर्ध्व हैं। इसके मध्य की दण्डी त्रिकोण है। उस त्रिकोणाकार षोडशदल कमल से ऊपर परम उत्कृष्ट निराकार शक्ति का ध्यान करे यह ध्यान सर्वेच्छापूरक है। इसका नाम पूर्ण गिरि पीठ है। यह नवचक्र वर्णन है।

नव चक्र संग्रह—मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिचक्र, हृच्चक्र, कण्ठचक्र, तालुचक्र, भ्रूमध्य चक्र, ब्रह्मरन्ध्र चक्र, आकाशचक्र ये नौ हैं।

नाड़ियों के द्वार तथा नाड़ियों का वर्णन—लिंग मूल से ऊपर नाभि से नीचे पक्षी के अण्डे के समान समस्त नाड़ियों का उत्पत्ति स्थान मूलकन्द है। उस मूलकन्द से बहत्तर ७२ हजार नाड़ियां उत्पन्न होकर सर्व शरीर में फैल रही हैं। सरल टेड़ी मेड़ी गति से ही सर्व शरीर हैं। इनमें से भी बहत्तर ७२ नाड़ियां मुख्य हैं पुन: उनमें भी प्राण वायु का जिन द्वारा अधिक संचार होता है ऐसी इड़ा पिंगलादि दश नाड़ियां प्रधान हैं। इनमें से भी जिसका सुषुम्णा में से होकर प्राण वायु (जीव) निकलता है उसकी श्रेष्ठगति (ब्रह्मलोक) तक में होती है व यथेशेच्छानुसार जीवगति होती है।

इड़ा पिंगला—इड़ा पिंगला चन्द्र सूर्य नाम की दोनों नाड़ियां मूलकन्द से प्रकट होकर क्रम से नासिका के बाम दक्षिण द्वारों से बहती हैं। दोनों के मध्य सुषुम्णा नाम की ब्रह्मनाड़ी जा रही है। वह भी मूलकन्द से निकलकर मूलाधार चक्रों में होती हुई मेरु दण्ड द्वारा तालुमार्ग से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त बहती है। इस मूलकन्द से निकल कर उन—उन स्थानों में होती हुई सरस्वती नाम्नी नाड़ी मुखद्वार में बहती है और मूषा अलम्बूषा नाम की नाड़ियां मूलकन्द से निकल कर उन—२ स्थानों में होती हुई क्रम से वाम ओर दक्षिण कर्ण द्वारों में बहती है। एवं गान्धारी और हस्ती जिह्विका नाम की नाड़ियां भी मूलकन्द से निकल कर तत्तत् स्थानों में होती हुई क्रमशः वाम दक्षिण नेत्र द्वारों में बहती हैं एवं कुछ और प्रधान नाड़ियां मूलकन्द से निकल कर गुदाद्वार में बहती हैं शंखिनी मूलकन्द से निकलकर लिंगद्वार में बहती है। यही मेरुदण्ड से ब्रह्मरन्ध्र तक बहती है एवं मुख्य दश नाड़ियां दशों द्वारों में बहती हैं। सैंकड़ों सूक्ष्म नाड़ियां रोम कूपों में बहती है।

शरीर में पांच प्रधान पांच अप्रधान दश वायु रहते हैं

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उद्दानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः।।१।।

हृत में प्राण, गुदा में अपान नाभिदेश में समान, उद्दान कण्ठ देश में व्यान सर्व शरीर में रहता है। ये पांच प्रधान वायु यथोक्त स्थानों में अपने—२ कार्यों में रत है।

अमुख्य—देवदत्त जृम्भा कर्ता है। नाग सर्वांग चालक है। कूरम

कम्प और नेत्र खोलता है। कृकल–उद्गारकर क्षुत्कारक है। धनञ्जय–नादघोषक है।

योग साधन में शुभाशुभ का ग्रहण त्याग

सत्व रजः तमः काल जीव ये कुल पंचक कहाते है और मन बुद्धि इन्द्रियां आदि के संचालन में इनकी प्रधानता रहती है। इसलिये इनको कुल (प्रधान) कहते हैं। सत्त्व गुण का कार्य–दण्डनीय को दण्ड देने की शक्ति होते हुए भी क्षमा करना है। धर्म–सुख विशेषजनक धर्म है। ध्यानोपासना आदि कर्म क्रिया है, परलोक आदि की धारणा श्रद्धा है। असदृस प्रेम–भक्ति है। रजोगुण के कार्य–भावी फल की आशा से शुभ देशकाल का विचार न कर धनादि का दान देना रजो गुणी है। सुन्दर रूप सुगन्ध स्त्री आदि विषयों में रमण करना भोग है। बहुमूल्य चमकीले वस्त्राभूषण धारण कर शरीर को सुशोभित करना शृंगार है केवल स्वसुखार्थ उपयोगी वस्तुओं का चय करना स्वार्थ संग्रह यह सब रजो गुण है। तमः–विवादः कलहःशोकों वधो वञ्चनमितिपंच गुणः तमः। ये पांच गुण तमो गुण के हैं।

व्यक्ति पञ्चक

इच्छा क्रिया माया प्रकृति वाक् ये व्यक्ति पञ्चक हैं।

इच्छा–के पांच गुण उन्माद=पागल, पूर्व कर्म संस्कारों द्वारा जिस स्वकर्तव्य में शरीरादि को लगया जावे वह वासना है। वस्तु विशेष की चाहना ही वांच्छा है। इष्ट प्राप्ति अर्थ और अनिष्ट निवृत्यर्थ जो निरवच्छिन्न चित्तैकतानता है वही चिन्ता है। चेष्टा–जो शरीरादि का व्यापार है वही चेष्टा है। ये इच्छा के पांच गुण हैं।

क्रिया के पांच गुण व अवस्थायें

संसारिक व्यवहार में स्मृति ज्ञान के उत्पादक व्यापार को स्मरण कहा जाता है। व्यापारजनक को उद्योग कहा है घट पटादि कार्य हैं। निश्चयात्मिकाबुद्धि से जन्य ज्ञान ही निश्चय है। अपनी कुल परम्परानियम के पालन में मनोवृत्ति ही स्वकुलाचार है। ये ५ क्रिया के गुण हैं।

माया के पांच गुण

मद–अभिमान, मैं धनाड्य हूँ। मेरे समान कौन बलिष्ठ जवान है यह अविवेक, मद है। दूसरे की उन्नति को सहन न करना मात्सर्य है।

दम्भ–करना कुछ, दिखाना कहना कुछ, दम्भ है। कृत्रिमता–बनावट पना असत्य–मिथ्याभाषण ये पांच गुण माया के हैं।

प्रकृति के पांच गुण

मूल–आशा तृष्णा स्पृहाकांक्षा मिथ्येति पञ्च गुणा प्रकृतिः। आशा–आगामी वस्तु की इच्छा है निर्वाहार्थ पर्याप्त वस्तु के होने पर भी और–२ चाहना ही तृष्णा है। यह वस्तु मुझे मिल जावे यह चाहा स्पृहा है। यह वस्तु सदा मेरे पास बना रहे यह चाहना कांक्षा है। असम्भव की चाहना ही मिथ्या है।

पञ्चगुणा वाक्

मूल–परा वाक् पश्यन्ती मध्यमा वैखरी
मातृकेति पञ्च गुणा वागिति।।६१।।

वाणी के पांच गुण–'परा, यह वाणी मूलाधार चक्र में रहती है वहां मन की गति नहीं है। पश्यन्ती वही वाणी जब नाभि प्रदेश में आकर स्थूल वर्णरूप को धारण करती है। तब उसका नाम पश्यन्ती होता है और इसके साथ मन का सम्बन्ध रहता है।

मध्यमा—इसके उपरान्त वही वाणी हृदय में स्थूल होती हुई जब अकारादि वर्ण समुदाय पदों को धारण करती है तब उसका नाम मध्यमा होता है।

वैखरी—वही वाणी जब मस्तिष्क से लौट कर जब कण्ठ तालू आदि स्थानों में टकराती है तब उससे प्रकट होने वाले शब्द को बैखरी कहते हैं।

मातृका—अकारादि वर्णों में शिवरूप मकार के अनुस्वार होने से अँ आँ इँ इत्यादि बीजमन्त्र रूप जो वर्ण माला है। वही मातृका वाक् है। यह व्यक्ति पञ्चक का वर्णन है।

प्राणायाम विधि

समतल भूति में प्रथम कुशा बिछाकर ऊपर वस्त्र आदि बिछावें। सिद्धादि आसनों से बैठकर अपने गुरु और इष्ट का ध्यान तथा प्रणाम कर भ्रूमध्य में दृष्टि टिका कर अभ्यास करे। इड़ा पिंगला नाड़ियों में वैसे तो हर समय प्राणों की स्थूल गति होती रहती है। किन्तु प्राण की सूक्ष्म अवस्था बनाने तथा सुषुम्णा नाड़ी में संचार करने के लिये रेचक पूरक कुम्भक तथा संघट करण अर्थात् वायुओं को योग क्रियाओं की सहायता से प्राणायाम के द्वारा परस्पर मिलाने से ये चार प्रकार के प्राणायाम हैं। पेट में पूरित निःश्वास वायु को धीरे—धीरे बाहर निकालने को रेचक प्राणायाम कहते हैं। बाह्य वायु को शान्त चित्त से भीतर मन्द—२ गति से पूरने को पूरक कहते हैं और उदर में पूरित वायु को घटवत स्थिर करने को कुम्भक कहते हैं। तथा योग क्रिया कौशलता से प्राण अपान को मिथः मिलाने को अथवा अकस्मात् प्राण गति का विच्छेद करने को संघटकरण प्राणायाम कहते हैं यह चतुर्थ प्राणायाम का लक्षण है। प्राणायाम का

प्रारम्भ इस प्रकार शुरू में करें कि नासिका के दक्षिण छिद्र को दायें हस्तांगुष्ठ से बन्द कर नाक के बायें छिद्र से वायु को धीरे–२ भीतर भरे तदनन्तर दूसरे नासिका पुट को भी उसी हाथ की तर्जनी से बन्द कर यथा शक्ति प्राण को शरीर में धारण करे पश्चात् अंगुष्ठ को ढीला कर धीरे–२ वायु को दायें छिद्र से निकालें इसी प्रकार सूर्य स्वर से रेचन करे एवं बारम्बार अभ्यास करें एक ओ३म् के उच्चारण काल को मात्रा कहते हैं एवं जितनी देर में बारह ओ३म् कारों का उच्चारण स्वभाविक हो तावत्पूरक करे तथा सोलह ओंकारों के उच्चारण समय पर्यन्त कुम्भक करे और दश ओङ्कार के उच्चारण काल पर्यन्त रेचक होता है। तब इन तीनों को मिलाकर साधारण प्राणायाम होता है। यही जब द्विगुण मात्रा हो जाता है तो मध्यम प्राणायाम होता है एवं त्रिगुण बढ़कर होने से उत्तम प्राणायाम होता है।

प्रकार दर्शन तीनों का

मात्रा तक	मात्रा तक	मात्रा तक
कनिष्ठ प्राणायाम पूरक १२	कुम्भक १६	रेचक १०
मध्यम प्राणायाम पूरक २४	कुम्भक ३२	रेचक २०
उत्तम प्राणायाम पूरक ३६	कुम्भक ४८	रेचक ३०

प्रथम प्राणायाम में शरीर में पसीना आता है मध्यम में कम्पन होता है जब उत्तम प्राणायाम होता है तब अभ्यासी का आसन भूमि से ऊपर उठने लगता है कफाधिक्य वाले को नेति धोती षट्कर्म करके अभ्यास में बैठना चाहिये। यह प्राणायाम महारण्य पापरूप इन्दन को दग्ध करने वाला दावानल है। ब्रह्मादि देवों ने भी इसका यथावत् सेवन

किया। यह पावन करने में सब तपोदान जप यज्ञादियों का अतिक्रमण कर जाता है और अनेक काम क्रोधादि दुष्टग्रहों से व्याप्त संसार सागर को पार करने का महासेतु है। सर्वेन्द्रियों को इन्द्रियार्थों से रोक कर स्वात्मरूप लक्ष्य में मन सहित लगाना ही प्रत्याहार है। यह समस्त भूत भौतिक प्रपञ्च सर्वगात्मा से अभिन्न स्वात्मरूप को जलतरंगवत् स्वात्मा में धारण करना धारणा है। सर्व स्वात्मरूप ही है यह समदर्शी लक्ष्य ही ध्यान का लक्षण है। योग का अन्तिमांग समाधि का संक्षेप कहते हैं। सर्व पदार्थों में समानावस्था अर्थात् आत्मस्वरूप देखना तथा समाधि समय में अन्य व्यापारादि का अभाव हो और जिस अवस्था में अनायास ही अखण्डात्मस्वरूप में स्थित हो उसी अवस्था का नाम उन्मनी और सहजा अवस्था है यही सामान्य समाधि का लक्षण है। वह सम्प्रज्ञात असम्प्रज्ञात रूप से दो प्रकार की है। यावत्समाधि में ध्याता ध्यान ध्येय की त्रिपुटी आभासती है। तावात्=तब तक उसको सविकल्प, या सबीज कहते हैं। यह धारणा ध्यान की परिपक्वस्था में जाकर सिद्ध होती है। जब उक्त तीनों का पृथग्भान न होकर केवल ध्येयकार वृत्ति ही हो तब यह निर्विकल्प, निर्बीज, असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है इसी की परिपक्वस्था को शून्य समाधि भी कहते हैं एवं जड़ समाधि भी कहते हैं। समाधि जब सिद्ध होती है तब जाग्रित अवस्था में भी उस योगी की समाधि सी ही लगी रहती है। तब शरीर में योगी को वंशी वीणादि के अलौकिक शब्दों के सुनने से प्राण मन भी नाद में ही लीन सा रहता है वह समाधि भी नाद के आश्रित होकर रहती है। उस समय अनायास समाधि लग जाती है।

अथ चतुर्थ उपदेश

जीव का शिव शक्ति के साथ ज्ञान पूर्वक अभेद होना ही समरस रूप मोक्ष कहाता है। वही मोक्ष यहां लक्ष्य है उस मोक्ष की प्राप्ति का साधन यह हठ योग है। जो परम शिव की निजाशक्ति है वही महाप्रलय काल में अकुला नाम से प्रसिद्ध होती है। यही सृष्टि उत्पत्ति काल में प्राणि कर्मों के साथ मिलकर पर अपर सूक्ष्मादि भेद से कुल (व्याप्त) रूप धारण करती है। यही आज्ञावती निजा आदि नामों से प्रसिद्ध है। परम सदाशिव से अभिन्न शक्ति ही महाप्रलय में अकुलावस्था युक्त कहाती है क्योंकि उस समय नाम रूपात्मक जगत का उपसंहार कर परमतत्त्व शिव में ही स्वयं भी मिल जाती है अतएव वह अकुल कहाती है। सृष्टि उत्पत्ति के समय प्राणि कर्मों के साथ मिलकर पर अपर सूक्ष्मादि भेद से कुल (व्यक्त) रूपावस्था को धारण करती है। सकल विश्व को रचती हुई तब वही निजाशक्ति कुल कहाती है एवं लय उत्पत्ति दोनों से युक्त हुई कुल अकुल नाम रूप को धारण करती रहती है। उक्ताख्यान का तात्पर्य यह हुआ कि न वह द्वैत रूप कुल ही है और न वह अद्वैत रूप अकुल ही है। यथा–जल का स्वकार्य की अपेक्षा तरंग फेन हिम बुद्‌बुदा आदि नाम मात्र ही है वस्तुत: जल ही है एवं द्वैत अद्वैत दोनों से रहित सर्वाधिष्ठान पर अद्वैत रूप एक शिव ही सत्य है। इस यथार्थ अभेद के रहस्य को ही समरस सिद्धों की वाणी में कहा गया है। निजा शक्ति से युक्त ही परब्रह्म महेश्वर सर्वकार्यकारणार्थ समर्थ होता है न एकाकी निजाशक्ति सम्पन्न ही सर्व संसार का साक्षी है। यथोक्त है कि–

शिवस्याभ्यन्तरे शक्ति: शक्तेरभ्यन्तर: शिव:।
अन्तरं नैव जानीयाच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।२६।।

कूटस्थ असंग शिव सर्वत्र व्यापक रूप से विराजमान है। उसकी चिद्रूपाशक्ति विश्व को धारण करने वाली भी व्यापक ही है। शिव में शक्ति है और शक्ति में शिव है ये दोनों ही चिद्रूप तत्त्व हैं नित्य सम्बन्ध वाले अर्थात् अभिन्न सम्बन्ध वाले हैं चन्द्र चन्द्रिका की तरह। वस्तु तत्त्व प्रकाश में कोई अन्तर नहीं है। केवल कूटस्थ असंग चेतन शिव है। संकोच विकास शालिनी चिद्रूपाशक्ति है एवं कूटस्थत्व संकोचत्व विकाशशालित्वधर्मो को लेकर व्यवहारिक भेद भले रहे परमार्थत: शिवशक्ति में कोई भेद नहीं क्योंकि दोनों चिद्रूप व्यापक नित्य सम्बन्ध वाले हैं।।२।३०।२६।

परमपदरूपात्मतत्त्व

जो तत्त्व मनोबुद्धि वाणी हेतु दृष्टान्त ऊहापोह खण्डन मण्डन तर्क वितर्क आदि से र्निमुक्त है उस निरुपाधि परमपद को केवल परमपदनिष्ठ अवधूत गुरुदेव की कृपा से सम्यक् निर्भय पूर्वक जान सकता है। वह व्यापक स्वयं ज्योति परमपद समाधिजन्य स्वसंवेद्य साक्षात्कार से ही गम्य है यह सिद्धान्त वेद शास्त्रों और सिद्धों में प्रसिद्ध है। जिस समय सिद्ध गुरु परमपद के उपाय भूत योगमार्ग को दिखाता और सिखाता है व्यापक तत्त्व का बोध कराता है। उसी समय सिद्ध गुरु की कृपा से स्वानुभव जानने योग्य अखण्ड व्यापकात्मा का साक्षात्कार और सकल सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है यहां विशेष ज्ञातव्य है कि शिक्षा और कृपा त्रिधा होती है।

१. औपदेशिक, २. करुणावालोकन, ३. शक्तिपात ये तीन हैं। प्रथम द्वितीय शिक्षा और कृपा हर एक विद्वान दे सकता व कर सकता

है। किन्तु तीसरी शक्तिपात रुपिणी कृपा सिद्ध और ईश्वर बिना अन्य की शक्ति से बाहर है। अत: मोक्षलाभार्थ सिद्ध गुरु करुणामय की आवश्यकता है। अजपा गायत्री से लेकर यहां तक जो कुछ उल्लेख है वह महायोगेश्वर श्री गोरक्षनाथ के मुखार्विन्द से नि:सृतसिद्ध–सिद्धान्त पद्धति से तथा अन्य इन्हों के ग्रन्थों से उद्धृत लेख है।

पूर्ण गुरु द्वारा योग साधन की महत्ता और समयानुसार फल

प्रथम वर्ष में–योगाभ्यासी का शरीर निरोग सर्वप्रिया होता है और देवता भी उसके दर्शनाभिलाषी होते हैं।

दूसरे वर्ष में–आत्मानन्द में मग्न हो अपने जीवन के सफल होने से कृतकृत्य हो जाता है। पशु पक्षियों की वाणी जानने लग जाता है।

तीसरे वर्ष में–इस अभ्यासी का शरीर देव तुल्य हो जाता है सर्प व्याघ्रादियों से अवध्य हो जाता है।

चौथे वर्ष में–वह अभ्यासी भूख प्यास सर्दी गर्मी आदि द्वन्द्वों से रहित हो दूर का शब्द सुनने लगता है।

पांचवे वर्ष में–वचन सिद्धि और परकाय प्रवेश की शक्ति भी योगाभ्यासी में हो आती है।

छठे वर्ष में–उसके शरीर पर तलवारादि का वार भी आघात नहीं कर सकता यहां इन्द्र का वज्र भी व्यर्थ हो जाता है।

सातवें वर्ष में–वह योगाभ्यासी धरा को छोड़कर आकाश में वायु के समान वेगवान होकर भ्रमण कर सकता है और दीर्घदर्शी हो जाता है।

आठवें वर्ष में–अणिमादि सिद्धियों से सम्पन्न हो जाता है।

नवमें वर्ष में—बज्र समदेह सर्व दिशाओं में गतिमान हो जाता है आकाश गति में पूर्ण समर्थ हो जाता है।

दशमें वर्ष में—यथेच्छया वायु से भी अधिक वेगवान होकर जहाँ चाहे शीघ्रातिशीघ्र जा सकता है।

ग्यारहवें वर्ष में—योगाभ्यासी सर्वज्ञ सर्व सिद्धियों से युक्त सत्य संकल्प हो जाता है।

बाहरवें वर्ष में—यह योगाभ्यासी शिव जी वत् स्वयं ही सकल विश्व का कर्ता हर्ता हो जाता है। भगवान भैरव की तरह तीनों लोकों में पूजित होता है। यह यौगिक ग्रन्थों में स्वयं भगवान आदिनाथ शिव ने योगाभ्यासी की महिमा के विषय में कहा है।

सिद्ध गुरुओं की वंश परम्परा का वर्णन

मूल—गुरुकुल सन्तानं पंचधा प्रोक्तम्, आई सन्तानं बिल्वेश्वर सन्तानं विभूति सन्तानं नाथ सन्तानं योगीश्वर सन्तानं, चेत्येषामपि सन्तानानां पृथक् पृथग् वैशिष्ट्यं वर्तते। यह सि० सि० प० पंचमोपदेश का ४६ वां गद्य वा मन्त्र है। यहां योग विद्या के प्रचारक सिद्ध गुरुओं की वंश परम्परा का वर्णन करते हैं। वंश दो प्रकार का होता है एक जन्म से और विद्या से, जन्म वंश का सम्बन्ध गृहस्थाश्रम से होता है और अवधूत योगमार्ग में केवल विद्याकृत सम्बन्ध ही वंश का होता है। अत: अवधूत नाथ योगमार्ग में दीक्षित शिक्षित योगी का नाद से सम्बन्ध होता है बिन्दु से नहीं क्योंकि जब मुमुक्षु नाथसिद्ध सम्प्रदाय में प्रविष्ट होकर गुरुमन्त्रादि से दीक्षित होता है तभी से वह नाद का योगी कहाता है। इसका अभिप्राय यह है कि जो नाद शक्तिसम्पंन्न परब्रह्म

परापश्यन्ती आदि क्रम से समस्त ऋग्वेदादि सृष्टि और भूतादि अर्थ सृष्टि का कारण है। वही परमनाथ तत्त्व तुम हो अतः योग समाधि द्वारा अपनी नाद शक्ति को अभिव्यक्त कर स्वाखण्डस्वरूप में प्रतिष्ठित हो तुम काल का भी काल परमनाथ हो इत्यादि उपदेशामृत से आचार्य गुरुदेव शिष्यों को सम्बोधित कर उन्हों के दीन भाव को दूर कर सबलनाथ नाम से अलंकृत कर देते हैं। यह प्राचीन प्रणाली गुरुवंश नाम की पांच प्रकार की हैं।

प्रथम सन्तान—'आई, यह नाम नाथ मार्ग में जगदम्बा भवानी का है और इसी को उदयनाथ (आईनाथ) भी कहते हैं और आई यह नाम विमलाशक्ति का भी है और शैव शाक्तों में यावज्जगदम्बा भवानी की रूपान्तर देवी शक्तियां हैं उन सबका भी वाचक है और उदयनाथ शिष्य (सन्तान परम्परा) का भी आई यह नाम है।

द्वितीय सन्तान—विल्वेश्वर गुरु की दूसरी परम्परा है। यद्यपि ये स्वयं वस्त्र रहित दिगम्बर होते हैं वस्त्र धारण नहीं करते तथापि अपने उपदेशामृत से अन्य पुरुषों को श्रद्धालु अधिकारी बनाकर उन्हों के कल्याणार्थ उन्हें दीक्षित करते हैं। वे विल्वेश्वर वंश की परम्परा के कहाते हैं।

तीसरी सन्तान—तीसरी परम्परा उन सिद्ध गुरुओं की जो विभूति धारण करते और कराते हैं। जिन्होंने सम्यक् योग साधन कर अणिमादि विभूतियों को भी धारण किया है उनकी शिष्य परम्परा उनकी विभूति सन्तान कहाते हैं क्योंकि गुरुओं ने उनको भी भस्मी रूपी विभूति और अणिमादि विभूतियों से सम्पन्न कर दिया होता है।

चतुर्थ सन्तान—चौथी परम्परा नाथ योग के सिद्ध गुरुओं की है जो समस्त प्रपंचों से अतीत नाथ तत्त्व की दीक्षा से दीक्षित शिष्य नाथ सन्तान कहाते हैं।

पांचवी योगीश्वर सन्तान—पांचवी योगीश्वर परम्परा में व्यापक असंग अलख निरंजन तत्त्व स्वरूप में प्राप्त होने को योगी गुरु शिष्यों की योग्यतानुरूप जो सदुपदेश देते हैं। ऐसे शिष्य योगीश्वर सन्तान के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन पांचों की परम्परा में पृथक्–२ विशेषता है। यथार्थ में संसार की समस्त वस्तु पंचभूत भौतिक से निष्पन्न हैं। इसलिये आचार्य गुरु गोरखानाथ जी ने सि० सि० प० में प्रत्येक वस्तु को पांच–२ प्रकार से ही निरूपण किया है। यह कथन आत्मा से भिन्न का है आत्मा तो केवल अखण्ड है।

पञ्च अवस्थायें सप्त भूमिकाओं का निरूपण

जाग्रतस्वप्न सुषुप्ति तुर्या (निर्विकल्प समाधि) और तुर्यातीत (मोक्ष) ये पांच अवस्था लक्षित होती हैं और योग ज्ञान की सप्त भूमिका होती हैं।

१. नित्य अनित्य वस्तु के विवेक पूर्वक तीव्र मुमुक्षा को योग की शुभेच्छा नाम की प्रथम भूमिका है। २. गुरु के पास योग दीक्षा लेकर उपनिषदों योग शास्त्र को श्रवण मननात्मक करना विचारणा नाम की दूसरी भूमिका है। ३. मानसिक संकल्प विकल्पों के प्रवाह को आसन प्राणायामादि द्वारा आत्मा में विलय कर केवल आत्मरूप के ग्रहण में तत्पर होना तनु मानसा नाम की भूमिका है। ये तीनों जाग्रत् भूमिका कहाती हैं क्योंकि इनमें भेदरूप जगत्प्रतीत होता है। ४. जब इन तीनों

से ऊपर की भूमिकाओं में मन शुद्ध हो जाता है तब योगी को (अहं ब्रह्मास्मि मैं ब्रह्म हूँ एवं अभेदात्मक द्रष्टा हो जाता है। आत्म बोधिका में जब अनात्म प्रपञ्च को स्वप्नवत् देखता है तब यह सत्त्वापत्ति नाम की चतुर्थ भूमिका होती है। आत्मा से भिन्न इसमें स्थित समस्त प्रपंच को स्वप्नवत् देखता है इसलिये इसको स्वप्नावस्था भी कहते हैं। उक्त तीनों भूमियों के सिद्ध होने के बाद ही इसका नम्बर आता है। यह सत्त्वापत्ति नाम की चतुर्थ भूमिका है। ५. यहाँ से अग्रिम तीनों भूमिका जीवन मुक्त की ही हैं। इस भूमिका में जब सिद्धियों का प्रभाव होता है तब उनमें आसक्त न होकर के तब असंसक्ति नामिका पाँचवीं भूमिका सिद्ध होती है। इसको सुषुप्तिवत् भी कहते हैं। ६. इसमें स्थित ब्रह्म से भिन्न भावना न कर ब्रह्मवित् श्रेष्ठ योगनिद्रा में निरत ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है यह अवस्था कतिपयाश में प्रगाढ़ निद्रा के समसामयिक होती है। इसमें पहुँच कर अन्य सिद्ध के बोधन से ही समाधि से व्युत्थित होता है तब योगी ब्रह्मविद् वरीयान कहाता है। यही पदार्थ भाविनी छठी भूमिका है। यही प्रकाढ़ निद्रा भी कही जाती है। ७. यह तुर्यगा है इसमें स्थित योगी दूसरे के व्यापार से भी व्युत्थित (जाग्रित) नहीं होता इसमें योगी पहुँचकर निमेषोन्मेष व्यापार आदि करता या न करता हुआ विदेहमुक्त ही है यह ब्रह्मविद् वरिष्ठ है। यह सर्व योग भूमिकाओं की चरम सीमा है तथा मनोवाणी से अगोचर है।

गुरु कीदृश भवितव्य

जो स्वयं समर्थ हो शिष्य का हितेच्छुक हो ऐसे गुरु की शिक्षा शीघ्र ही संसार सागर से पार कर देती है किन्तु शुष्क तर्क वागाडम्बर द्वैत शास्त्र दृष्टि अनुमान तथा निष्फल आत्मशून्य वाद से भ्रम में डालने वाला

गुरु सर्वथा त्याज्य है। यथा—गुरु गोरक्षनाथ जी ने कहा है कि—

[1]ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्योमिथ्यावादी विडम्बक:।
स्वविश्रान्तिं न जानाति परेषां च करोति किम्।।

जो आत्म ज्ञान से वंचित है और दूसरे को भी वंचित करने वाले है। मिथ्यावादी बहिर्मुख स्वशान्ति से रहित है। वह शिष्य को कैसे कल्याण भागी बना देगा। इसमें आचार्य गुरु गोरक्षनाथ जी दृष्टान्त देते हैं। कि—

[2]शिलया किं परं पारं शिलासंग: प्रतार्यते।
स्वयं तीर्णो भवेद्योसौ परान्निस्तारयत्यलम्।।

यथा शिला शिलासमुदाय को नदी पार ले जाने को समर्थ नहीं हो सकती वैसे ही ज्ञान हीन असमर्थ गुरु संसार सागर चौरासी चक्र से पार नहीं कर सकता। करुणामय सिद्ध योगी सद्गुरु ही वरेण्य है।

[1]तारयत्येव दृक्पातात् कथनाद्वा विलोकनात्।
तारिते स्वपदं धत्ते स्वस्व मध्ये स्थिरो भवेत्।।१।

१ स्वस्वमध्ये=स्वस्वरूप परमात्मनि÷साक्षात् शिवस्वरूपों भवेत एवं उक्त त्रिकालदर्शी समर्थ गुरु को त्रिकाल प्रणाम करे श्रद्धा भक्ति से सेवा कर अपने पर कृपा करने की प्रार्थना करे।

मूल—[3]किमत्र बहुनोक्तेन शास्त्रकोटिशतेन च।
दुर्लभाचित्तचिश्रान्तिर्विना गुरुकृपां पराम्।।८१।।

---

१. पंच० उ० श्लो० ७३ सि० सिद्धान्त पद्धति।
२. पंचम उ० श्लो० ७४ सि० सि० पद्धति
३. सि० स० प० का पंचम उ०। श्लो० ८१

[१]चित्त विश्रान्तिलब्धानां योगिनां दृढ़चेतसाम्।
स्वस्वमध्ये निमघ्नानां निरुत्थानं विशेषतः॥८२॥

आत्मानन्द में निमग्न योगीराजों का अविद्या रूपी निद्रा से जागरण होता है अर्थात् अनादि काल से अज्ञान रूपी निद्रा में सोया हुआ जीव ईश्वर गुरु कृपा से जगाया जाता है।

अवधूत का वेश और चिन्ह

[२]शं सुखं खं परब्रह्म शंखं संघटनाद् भवेत्।
सिद्धान्तों धारितो येन सोऽवधूतोऽभिधीयते॥६॥

'शं' यह सुख का वाचक 'खं' यह (अपने अखण्ड ज्ञान स्वरूप) परब्रह्म का वाचक है। इन दोनों का योग होने से शंख शब्द बनता है इस शंखरूपी बाह्य चिन्ह को धारण करने वाला अवधूत कहा जाता है। परमात्मज्ञान स्वरूप पौवे हैं जिसके पैरों में। अनाहद नाद का उपलक्षक मृग चर्म धारण किया है जिसने परासंवित् रूप सेहली (यज्ञोपवीत) है जिसके गले में, कटि में जिसने मेखला (आडबन्द) रूप निवृति को धारण करने वाला जो काम क्रोधादि विकारों से निवृत है स्वात्मस्वरूप में जो स्थित है चित्प्रकाशानन्द स्वरूप दोनों कुण्डल हैं जिसके कानों में वह अवधूत है।

मुद्रा का निरूपण गुरु गोरक्षनाथ जी करते हैं

मुद् मोदे तु रा दाने जीवात्मपरमात्मनोः।
उभयो रेकसंवित्तिर्मुद्रेति परिकीर्तिता॥३०॥

१. सि० स० प० का पंचम उ०। श्लो० ८२
२. सि० सि० प० का छठा उ० श्लो० ६

मोदते देवसंघाश्च द्रवन्तेऽसुरराशयः।
मुद्रेति कथिता साक्षात्सदा भद्रार्थदायिनी।।३१।।

मुद्रा में दो शब्द हैं मुद् (आनन्द) और रा इसका अर्थ है देना। दोनों के मेल से मुद्रा बनता है और जीवात्मा परमात्मा दोनों की ऐक्य रूप संवित्ति ही मुद्रा है यह गुरु गोरक्षनाथ जी ने स्वयं अर्थ कहा है। मुद्रा (बाह्य चिन्ह के रूप में योगी कानों में धारण कर देवताओं को प्रसन्न कर उनके प्रिय होते हैं और असुर भयभीत हो दूर होते हैं यही मुद्रा महामुद्रादि की द्योतिका भी है।

सिद्धमत (नाथमत) का आश्रय

वेदान्ती बहुतर्ककर्कशमतिर्ग्रस्तः परंमायया।
भाट्टाः कर्मकलाकुला हतधियो द्वैतेन वैशेषिकाः।।
अन्ये भेदरता विवादविकलाः सत्तत्त्वतो वञ्चिता–
स्तस्मात्सिद्धमतं स्वभावसमयं धीरः सदा संश्रयेत्।।७३।।

(महायोगेश्वर श्री गोरक्षनाथ जी ने सिद्धान्तमत–योगमत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया सिद्ध मत वरेण्य पर निरूपण किया) वेदान्ती–कर्मोपासना का त्याग और द्वैत खण्डन बाग्जाल में ही इनकी मतिनिरूद्ध रहती एवं पूर्व मीमांसक कर्मफलों में डूबे रहते हैं। वैशेषिक लोक द्वैतचक्र में भ्रमित रहते हैं। अन्य विद्वान वाद विवाद से विकल भेदभाव में रत हुए अपने ध्येय तत्त्व से वंचित रह जाते हैं। इसलिये धीर बुद्धिमानों को उचित है कि जो सफलमनोर्थ सिद्ध मार्ग है उसका आश्रय लें।

सांख्या वैष्णववैदिका विधिपरा: संन्यासिनस्तापसा:,
सौरा वीरपरा: प्रपञ्चनिरता बौद्धा जिनश्रावका:।
एते कष्टरता वृथा पथगता: सत्तत्त्वतो वञ्चिता–,
स्तस्मात्सिद्धमतं स्वभावसमयं धीर: सदा संश्रयेत्॥७४॥

सांख्य दर्शन में निष्ठा रखने वाले, वैष्णव वैदिक आचार विचार में प्रवृत्त, संन्यासी, तपस्वी, सूर्योपासक, वीरशैव सांसारिक विषय प्रपञ्च में प्रवृत्ति वाले बौद्ध, जैन आदि स्वसंवेद्य परमात्मा स्वरूप से वंचित होकर प्रपंच जाल में ही उलझे रहते हैं। इसलिये मुमुक्षु को सिद्ध मत का अनुगमन करना वर है। यह सि० सि० प० का प्रसाद ही स्वल्प मात्रा में दिखाया जो विविध विषयक है।

इति हरियाणा प्रदेशस्य अस्तल बोहर महामठ की उपशाखा रोड़ का मुहाना गुरुस्थान के नाथयोगी श्री श्री अनन्त श्री श्री सूर्यनाथ जी के शिष्य पञ्चालदेश के जि० अमृतसर में ग्राम किरलगढ़ दुर्गा मन्दिर स्थानाध्यक्ष आई पन्थी योगी वीरनाथ द्वारा रचित श्रीनाथचरित में नवम पुष्प समाप्त।

इति श्री नाथचरित सम्पूर्ण हुआ।

–लेखक श्री वीरनाथ जी

अखिल भारतवर्षीय अवधूत भेष बारह पंथ योगी महासभा

पुस्तक प्राप्ति स्थान–

श्री गुरु गोरक्षनाथ मन्दिर (अखाड़ा)

अपर रोड, हरिद्वार-249401 (उत्तराखण्ड) फोन : 01334-226583

Website : http://.yogigorakshnath.org, E-mail : yogivilasnath12@gmail.com

सिद्ध योगी बाबा मस्तनाथ आश्रम

मठ अस्थल बोहर, तह॰ जिला–रोहतक (हरियाणा) फोन : 01262–215718

नाथ सम्प्रदाय के उत्कृष्ट प्रकाशन

	पुस्तक सूची (हरिद्वार से प्रकाशित)	लेखक/संचालक	मूल्य
1.	श्री नाथ रहस्य (खण्ड-1, 2, 3) (सम्पूर्ण शाबर मन्त्र तन्त्र नित्यकर्म इत्यादि विधि विधान का विवरण ग्रंथ (हिन्दी)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	250/-
2.	श्री नाथ रहस्य (खण्ड-4) श्री नाथ सिद्धों की शंखढाल (योगमाया पूजन पद्धति का विस्तृत विवरण) (हिन्दी)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	250/-
3.	श्री नाथ रहस्य (खण्ड-1,2,3) (अंग्रेजी अनुवाद)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	400/-
4.	श्री नवनाथ (हिन्दी) (चरित्र दर्शन एवं साक्षात्कार विधि तथा अपेक्षित कार्य पूर्ति-विधि)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	65/-
5.	श्री नाथ सिद्ध कवचम् (हिन्दी) (अपेक्षित कार्य सिद्धि एवं सुरक्षा कवच के लिये पाठ हवन के विधान)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	45/-
6.	श्री नाथ सिद्ध कवचम् (अंग्रेजी)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	125/-
7.	श्री नाथ सिद्ध पाठ (नाथ सिद्ध पाठ, गोरक्षनाथ तंत्र-मंत्र शबदी आरती, भजन इ. विधि विधान सहित)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	35/-

पुस्तक सूची (हरिद्वार से प्रकाशित)		लेखक/संचालक	मूल्य
8.	श्रीनाथ सम्प्रदाय के तीर्थ स्थल (प्राचीन भर्तृहरि गुफा महात्म्य)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	250/-
9.	श्री गोरक्ष नाथ सिद्ध चालीसा (सरल हिन्दी अनुवाद स्तुति एवं आरती विधि सहित)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	10/-
10.	श्री गोरक्ष तंत्रम् (सरल हिन्दी अनुवाद तंत्र-मंत्र विधि)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	80/-
11.	श्री नाथ सिद्धों की ॐकार सिद्धि (उपासना-साधना)	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	80/-
12.	श्री नाथ सम्प्रदाय आरती-भजन संग्रह	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	45/-
13.	ॐ शिवगोरक्ष व्रत कथा	महन्त डॉ. योगी विलासनाथ	15/-
14.	श्री नाथ सिद्धों के मंत्र-तत्र टोटके	महावीर सैनी (गुरु महन्त डॉ. योगी विलासनाथ)	160/-
15.	योगी सम्प्रदाय नित्यकर्म संचय	योगी भंभूलनाथ जी	40/-
16.	गोरक्ष स्तवांन्जलि	योगी भंभूलनाथ जी	20/-
17.	श्री गोरक्ष सहस्त्र नाम स्तोत्र	योगी भंभूलनाथ जी	36/-
18.	शब्दावली व भजन	योगी भंभूलनाथ जी	50/-
19.	अनुभव भजन माला	भोलानाथ जी योगी	60/-
20.	श्री नाथ चरित्र	योगी वीरनाथ जी	140/-
21.	श्री बाबा मस्तनाथ चरित्र	योगी शंकरनाथ जी	100/-
22.	अस्थल बोहर मठ का संक्षिप्त इतिहास	योगी शंकरनाथ जी	100/-
23.	श्री बाबा मस्तनाथ कथा	रामेश्वरनाथ जी	70/-
24.	चन्द्रावतार सिद्ध चौरंगीनाथ (पूरण भगत)	शिवानी शर्मा	35/-
25.	दिव्य भूमि मठ अस्थल बोहर एवं पूजनीय गुरुदेव	शिवानी शर्मा	100/-

पुस्तक सूची (हरिद्वार से प्रकाशित)	लेखक/संचालक	मूल्य
26. श्री सिद्ध बाबा मस्तनाथ चालीसा	शिवानी शर्मा	10/-
27. श्री बाबा मस्तनाथ सहस्त्र नाम	शिवानी शर्मा	20/-
28. श्री मस्तनाथ चरितम् (बड़ी)	डॉ. सौभाग्यवती नान्दल	100/-
29. श्री मस्तनाथ चरितम् (छोटी)	डॉ. सौभाग्यवती नान्दल	30/-

पुस्तक सूची (गोरखपुर से प्रकाशित)	लेखक/संचालक	मूल्य

उप कार्यालय-गोरक्षनाथ मन्दिर, गोरखपुर

फोन : 0551-2255453, 2255454, 2255455

30. गोरखबाणी	रामलाल श्रीवास्तव	50/-
31. गोरख चरित्र	रामलाल श्रीवास्तव	30/-
32. गोरख दर्शन (हिन्दी फिलॉसफी)	अक्षय कुमार बेनर्जी	90/-
33 गोरख दर्शन	विजय पाल	50/-
34. श्री नाथ सिद्ध चरितामृत	रामलाल श्रीवास्तव	30/-
35. गोरक्षनाथ एवं उनकी परंपरा का साहित्य	डा. दिवाकर पाण्डेय	40/-
36. आदर्श योगी	अक्षय कुमार बेनर्जी	25/-
37. योगासन	रामलाल श्रीवास्तव	30/-
38. सिद्ध सिद्धान्त पद्धत	रामलाल श्रीवास्तव	35/-
39.गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह	रामलाल श्रीवास्तव	40/-
40. हटयोग प्रदीपिका	रामलाल श्रीवास्तव	35/-
41. योग बीज	रामलाल श्रीवास्तव	15/-
42. नाथ योग	अक्षय कुमार बेनर्जी	15/-
43. अमनस्क योग	अक्षय कुमार बेनर्जी	20/-
44. गोरक्ष पद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	20/-
45. गोरक्ष शतक	रामलाल श्रीवास्तव	20/-
46. वैराग्य शतक	रामलाल श्रीवास्तव	20/-
47. गौरक्ष वैदिक पूजा पद्धत	वेदाचार्य रामानुज त्रिपाठी	20/-

पुस्तक सूची (गोरखपुर से प्रकाशित)	लेखक/संचालक	मूल्य
48. विचार दर्शन (युग पुरुष महन्त दिग्विजय नाथ...ने कहा)	योगी आदित्यनाथ	20/-
49. प्रताप असी बावणी (कविता संग्रह)	मनोहर द्विवेदी	15/-
50. योगवाणी अंक (गोरखबाणी)	गोरखनाथ मन्दिर	25/-
51. योगवाणी (गोरक्ष चरित्र दर्शन)	गोरखनाथ मन्दिर	15/-
52. योगवाणी (नाथ सिद्ध चरित्रांक)	गोरखनाथ मन्दिर	40/-
53. योगवाणी (शिव संहिता)	गोरखनाथ मन्दिर	25/-
54. योगवाणी (सिद्ध दर्शन)	गोरखनाथ मन्दिर	15/-
55. योगवाणी (नाथ तीर्थ स्थल)	गोरखनाथ मन्दिर	25/-
56. योगवाणी (नाथ सिद्ध बानी)	गोरखनाथ मन्दिर	25/-
57. योगवाणी (गोरक्ष सिद्धान्त)	गोरखनाथ मन्दिर	25/-
58. योगवाणी (गोरक्ष ग्रन्थावली)	गोरखनाथ मन्दिर	25/-
59. योगवाणी (मत्स्येन्द्रनाथ अंक)	गोरखनाथ मन्दिर	25/-
60. योगवाणी (सर्व धर्म समभाव)	गोरखनाथ मन्दिर	25/-
61. योगवाणी (राष्ट्रीय एकता)	गोरखनाथ मन्दिर	25/-
62. योगवाणी (विशेषांक 1994)	गोरखनाथ मन्दिर	15/-

श्री नाथ सिद्ध यन्त्र
(विधि विधान द्वारा सिद्ध किये हुये)

साईज	ताम्बा (मूल्य)	तांबा (सिल्वर पॉलिश) मूल्य
3× 3 इंच	50/-	60/-
5×5 इंच	70/-	80/-
7×7 इंच	90/-	110/-
9×9 इंच	300/-	325/-
12×12 इंच	425/-	450/-

कैमरा फोटोग्राफ

गुरु गोरक्षनाथ, बाबा मस्तनाथ, बाबा सुन्दरनाथ, बाबा बालकनाथ, रतननाथ, नवनाथ, भैरव, ज्वालाजी, मृत्युंजय आदि सभी नाथ सम्प्रदाय-प्रासंगिक (चरित्रनुरुप) कैमरा फोटो।

साईज	कैमरा फोटो	लेमिनेटेड फोटो फ्रेम
छोटे फोटो P / C = 5 " X 3.5"	5/-	-
बड़े फोटो B / C = 7 " X 5"	10/-	35/-
नवनाथ स्वरुप B / C = 7 " X 5"	10/-	35/-
आगे आगे गोरख जागे BB / C = 10 " X 5"	25/-	
बड़ा फोटो B,B,B / C = 10 " X 8 "	35/-	-

MP3-DVD-VCD (सी.डी.)

		MP3	DVD VCD
अमृतांजलि (भाग-1+2) (गोरक्ष चालीसा, चौरासी सिद्ध, चालीसा, ज्ञान गुदडी, भजन इत्यादि)	गायक-सोमनाथ शर्मा भजन रचना-योगी विलासनाथ	80/-	100/-
श्री नाथ सिद्ध पाठ भजन (भाग-1+2)	रचना-योगी विलासनाथ	80/-	100/-
श्री गोरक्ष वन्दना, भजन	रचना-योगी विलासनाथ	40/-	50/-

कैलेण्डर फोटो

विवरण	साईज	कैलेण्डर फोटो	लेमिनेटेड फोटो फ्रेम
गुरु गोरक्षनाथ जी (मृगस्थली)	20 " X 14 "	25/-	160/-
गुरु गोरक्षनाथ जी (ब्रह्माण्ड)	22 .5" X 17. 5 "	25/-	160/-
गुरु गोरक्षनाथ जी (मृगस्थली)	14 " X 9 "	15/-	80/-
गुरु गोरक्षनाथ जी (मृगस्थली)	10 " X 7 "	10/-	40/-
गुरु गोरक्षनाथ जी (मृगस्थली)	7 " X 5 "	5/-	25/-
आगे-आगे गोरख जागे	16.5 " X 39. 5 "	30/-	225/-
बाबा मस्तनाथ जी	7 " X 5 "	3/-	25/-
बाबा मस्तनाथ जी	30 " X 17 "	10/-	-
श्री नवनाथ स्वरुप दर्शन	22 .5" X 17. 5 "	25/-	225/-
पोस्टकार्ड साईज फोटो	5" X 3.5"	3/-	-

यन्त्र- (आर्ट पेपर पर रंगीन प्रिन्टेड)

यन्त्र विवरण	आर्ट पेपर पर प्रिन्टेड	लेमिनेटेड फोटो फ्रेम
श्री नाथ सिद्ध यन्त्र	10/-	70/-
सर्वतो महारुद्र नवनाथ चौरासी सिद्ध यन्त्र	10/-	70/-
श्री नाथ सिद्ध योगिनी यन्त्र	10/-	70/-
धरत्री गायत्री यन्त्र	10/-	70/-
उपरोक्त चारों यन्त्रों का सैट	40/-	300/-

कैसेट

गुरु गोरक्षनाथ चालीसा (भाग 1)	गायक - सोमनाथ शर्मा	30/-
चौरासी सिद्ध चालीसा (भाग 2)	गायक -सोमनाथ शर्मा	30/-
श्रीनाथ सिद्ध पाठ (भाग 1)	रचना-योगी विलासनाथ, गायक- अभिजीत	35/-
श्रीनाथ सिद्ध पाठ (भाग 2)	रचना-योगी विलासनाथ, गायक- अभिजीत	35/-
श्री गोरक्ष वन्दना (भाग 1)	रचना-योगी विलासनाथ, गायक- अभिजीत	35/-
श्री गोरक्ष वन्दना (भाग 2)	रचना-योगी विलासनाथ, गायक- अभिजीत	35/-
बाबा मस्तनाथ चमत्कार एवं महिमा भजन(1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 भाग)		प्रत्येक 25/-
अन्य नाथ सम्प्रदाय की भजन कैसेटें		35/-

लॉकेट, चाबी-छल्ले, कुण्डल इत्यादि

विवरण	मूल्य
लॉकेट (गुरु गोरक्षनाथ जी एवं बाबा मस्तनाथ जी के)	5/-, 10/., 20/-, 25/-, 30/-
गुरु गोरक्षनाथजी एवं बाबा मस्तनाथजी के फोटो युक्त चाबी छल्ले एवं लॉकेट	10/-, 15/-, 20/-, 30/-
(नादि पवित्री, चन्दन लकड़ी, शीशे, पीतल, तांबे, प्लास्टिक इत्यादि)	10/-, 20/-, 25/-, 40/-, 60/-
कुण्डल शीशा तथा रंगीन प्लास्टिक में	25/-, 30/-, 40/-
कुण्डल तारा मण्डल, चाइनीज बिलौरी पत्थर के	1500/-, 1800/-
आदि धातुओं में तथा रुद्राक्ष माला, कड़े इत्यादि	200/-, 500/-, 800/-, 1000/-
शंख (दक्षिण मुखी) प्रिन्टेड गोरक्षनाथ जी के चित्र	250/-
कौड़ी के ऊपर प्रिन्टेड गुरु गोरक्षनाथ जी के चित्र	50/-

मूर्तियाँ (धातु में)

	नाम	साईज	वजन	मूल्य पीतल	मूल्य ब्रास (पीतल की पालिश)
1.	गुरु गोरक्षनाथजी पद्मासन में बैठी (मृगस्थली)	9 "	2 Kg	1100/-	800/-
2.	गुरु गोरक्षनाथजी पद्मासन में बैठी (मृगस्थली)	6 "	1 Kg.	800/-	700/-
3	आगे आगे गोरख जागे गोरक्षनाथ चलते हुये (खड़ी)	10 "	1.300gm.	1100/-	800/-
4.	आगे आगे गोरख जागे गोरक्षनाथ चलते हुये (खड़ी)	6 "	600gm.	800/-	
5.	बाबा मस्तनाथजी (बैठी) पद्मासन में	9 "	2 Kg.	1100/-	800/-
6.	बाबा मस्तनाथजी (बैठी) पद्मासन में	6 "	1 Kg.	800/-	700/-

शीशे के फ्रेम, मन्दिर

विवरण	मूल्य
गुरु गोरक्षनाथ तथा बाबा मस्तनाथ जी के फोटो शीशा फ्रेम (3×2 इंच, 5×3.5 इंच, 7×5 इंच)	25/–, 50/–
गुरु गोरक्षनाथ एवं बाबा मस्तनाथ जी के शीशा मन्दिर (बिजली) लाइट वाले	100/–, 200/–, 250/–, 500/–
गुरु गोरक्षनाथ एवं बाबा मस्तनाथ जी के फोटो शीशा फ्रेम (गाड़ियों में बैटरी चालित, लाईट वाले)	150/–

(मूल्य सूची में समयानुसार परिवर्तन सम्भव है।)

नोट - मूल्य + पार्सल खर्च मनीऑर्डर या संस्था के नाम D. D. भेजने पर साहित्य पोस्ट द्वारा V.P. L., V.P.P. से भेजा जायेगा।

अधिक मात्रा (थोक) में साहित्य का आर्डर भेजने पर छूट प्राप्त करें।

सम्पर्क - महन्त डॉ. योगी विलासनाथ-मो.: 09412072703

पश्चिम

दक्षिण

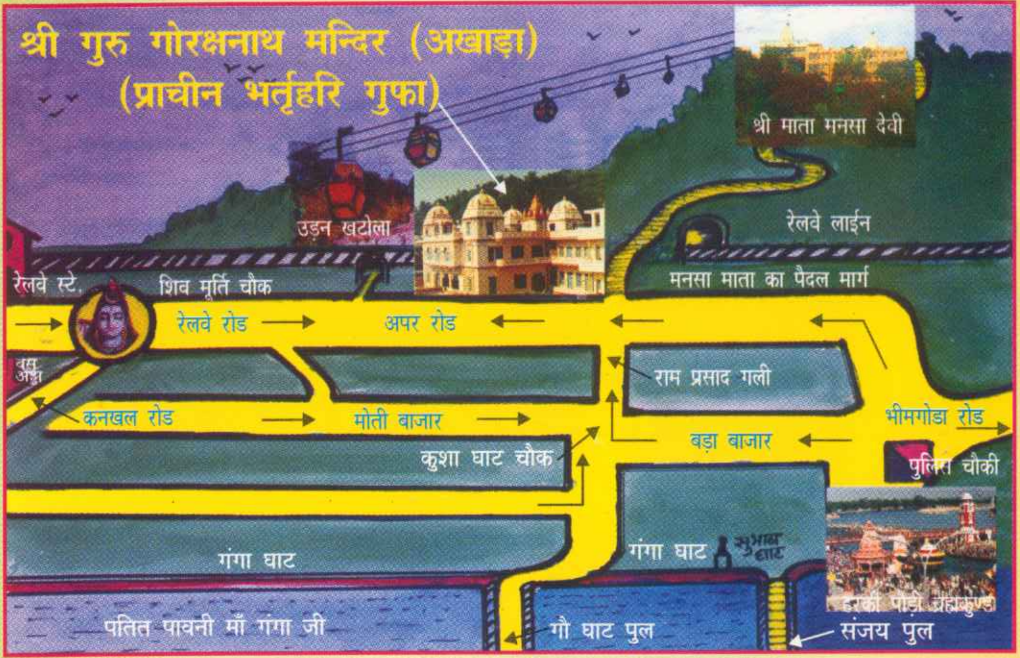

उत्तर

पूर्व

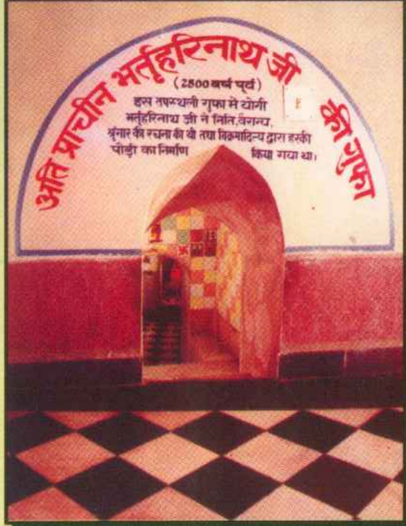

श्री गुरु गोरक्षनाथ मन्दिर तथा श्री भर्तृहरि जी की प्राचीन गुफा

राजा भर्तृहरि नीति, वैराग्य, श्रृंगार तीनों के रचियता थे। श्री योगाचार्य गुरु गोरक्षनाथ जी महाराज के शिष्य हुए। उज्जैन-मालवा राजधानी छोड़कर श्री गंगा भागीरथी के तट पर हरिद्वार में श्री गुरु गोरक्षनाथ मन्दिर में गुफा का निर्माण करके यहाँ तपस्या की थी। उस समय से यह मन्दिर व गुफा यहाँ विद्यमान है। राजा विक्रमादित्य ने भर्तृहरि के नाम से हर की पैड़ी का निर्माण किया था।

नोट :-हरिद्वार में तीर्थ यात्रा पर आने वाले भक्तजन इस प्राचीन गुफा के दर्शन करके पुण्य लाभ प्राप्त करें।

मुद्रक-शिव शक्ति प्रिन्टर्स, पालीवाल धर्मशाला, अपर रोड, हरिद्वार फोन :